DUE DATE SLIP

GOVT. COLLEGE, LIBRARY

KOTA (Raj.)

Students can retain library books only for two weeks at the most

BORROWER'S No	DUE DTATE	SIGNATURE

मानस-कौमुदी

फादर डॉ० कामिल बुल्के
एम० ए०, डी० फिल्०
तथा
डॉ० दिनेश्वर प्रसाद
एम० ए०, डी० लिट्०

अनुपम प्रकाशन

प्रकाशक
अनुपम प्रकाशन
पटना—४

©
प्रथम संस्करण सन् १९७९ ई०

मूल्य पचपन रुपये
छात्र-संस्करण बीस रुपये

सर्वाधिकार लेखकद्वय

मुद्रक
मोहन प्रेस
पटना ८०००४

मानस के पाठकों को

भए, जे अहहिं, जे होइहहिं आगें

अनुक्रम

प्राक्कथन	१
भूमिका	३
मानस का संक्षिप्त व्याकरण	३५
रामचरितमानस की विषय सूची	६३
मानस कौमुदी की विषय-सूची	६९
मानस कौमुदी	१-२५५
परिशिष्ट	२५६-२६९

प्राक्कथन

'मानस-कौमुदी' रामचरितमानस के चुने हुए डेढ सौ प्रसगो का संकलन है। इन प्रसगो मे मानस के सबसे कवित्वपूर्ण भागो मे से अधिकतम का समावेश हो गया है तथा प्राय वे सब अश आ गये हैं, जो मानसकार की विचारधारा का प्रतिनिधित्व करते हैं। प्रसगो के मूल क्रम मे कही कोई परिवर्तन नही किया गया है और उनसे सम्बद्ध जो बन्द रखे गये हैं, वे, थोडे-से उदाहरणो को छोड कर, पूरे हैं। कथा के प्रवाह को बनाये रखने के लिए छूटे हुए अशो की विषयवस्तु को सक्षिप्त सूचना कोष्ठको मे गद्य मे दे दी गयी है। इससे पाठको को मानस की पूरी वस्तु के साथ उसके सर्वोत्तम अशो की जानकारी उसके प्राय एक-तिहाई आकार के प्रस्तुत सकलन से हो जायेगी।

हम यह जानते हैं कि किसी रचना का सक्षेप उसके पूर्ण रूप का स्थान नही ले सकता, अतएव उस दृष्टिकोण का उल्लेख आवश्यक है, जिससे प्रेरित हो कर हमने मानस को 'मानस-कौमुदी' का रूप दिया है। हमने अनुभव किया है कि मानस की लोकप्रियता आधुनिक दृष्टि से शिक्षित कहे जाने वाले लोगो के बीच घटती गयी है। साहित्य विषय का अध्ययन करने वाले लोगो मे भी ऐसे व्यक्ति कम हैं, जिन्होने सम्पूर्ण मानस पढा है। जो व्यक्ति इसे पढना चाहते हैं, उन्हें पूरी पुस्तक पढने का साहस नही होता। रचना का विस्तार उनके मार्ग मे बाधक प्रमाणित होता है। इसकी लोकप्रियता की एक अन्य बाधा —सम्भवत निर्णयात्मक बाधा—इसकी भाषा है। आज के हिन्दी-पाठको के लिए हिन्दी का प्रधान अर्थ खडी बोली है। अतएव, जो अवधी या ब्रज-क्षेत्र के नही हैं, इन भाषाओ मे लिखा हुआ साहित्य उनकी समझ के दायरे से बाहर पड़ता जा रहा है। तीसरा बाधक कारण यह धारणा है कि मानस मध्ययुगीन विचारधारा का प्रतिनिधित्व करने वाली, अत: अनाधुनिक रचना है, जिसे पढे बिना भी काम चल सकता है। ऐसा समझा जाने लगा है कि वर्णाश्रम धर्म, नारी-निन्दा आदि मूल्यहीन विश्वासो के सिवा इसमे ऐसा कुछ भी नही है, जिसे आज का मनुष्य अपने लिए प्रेरणाप्रद समझे।

हमने मानस-कौमुदी के माध्यम से इन सभी बाधाओ को यथासम्भव दूर करने का प्रयत्न किया है। हमने न केवल मानस को एक-तिहाई आकार मे प्रस्तुत किया है, वरन् आवश्यक सीमा तक विराम, योजक और उद्धरण-चिह्नो का समावेश

कर मूल पंक्तियों के अर्थ को सरल रूप में ग्राह्य बनाने का प्रयत्न भी किया है। हमने पाद टिप्पणियों में बहुत-से कठिन शब्दों का अर्थ दे दिया है और रचना की भाषा के स्वरूप को स्पष्ट करने हेतु उसका संक्षिप्त व्याकरण भी प्रस्तुत किया है। हमारा विश्वास है कि व्याकरण में दी गयी सूचनाओं की जानकारी के बाद मानस की भाषा की पहचान कठिन नहीं रह जायेगी। हमने भूमिका में मानस से सम्बद्ध आवश्यक प्रसंगों का उल्लेख किया है, जिससे पाठक इस महान् कृति को सही परिप्रेक्ष्य में रख कर देख सकेंगे और यह अनुभव कर सकेंगे कि यह एक निरन्तर सार्थक रचना है।

कहने की आवश्यकता नहीं कि 'मानस-कौमुदी' भारत तथा बाहर के विश्वविद्यालयों में हिन्दी का अध्ययन करने वाले छात्रों के लिए भी उपयोगी प्रमाणित होगी। विश्वविद्यालयों की अवर-स्नातक और स्नातकोत्तर कक्षाओं में मानस के किसी विशेष काण्ड—सामान्यतः बालकाण्ड या अयोध्याकाण्ड—का अध्यापन होता है और कभी-कभी बालकाण्ड, अयोध्याकाण्ड और उत्तरकाण्ड के चुने हुए प्रसंगों का भी। इससे छात्रों के मन में न तो मानस की पूरी विषयवस्तु की कोई स्पष्ट धारणा बन पाती है और न इसके कवित्व की विविधता का बोध उत्पन्न होता है। 'मानस-कौमुदी' की विशेषता यह है कि इसमें मानस के लगभग अयोध्याकाण्ड-जैसे आकार में दोनों अभावों की पूर्ति हो जाती है।

हम यह आशा करते हैं कि 'मानस-कौमुदी' न केवल छात्रों के लिए उपयोगी सिद्ध होगी, वरन् इससे आज का शिक्षित-समुदाय मात्र लाभान्वित होगा। हमारा मुख्य उद्देश्य आधुनिक मानस के साथ मानस के टूटते हुए सम्बन्ध को फिर से जोड़ना है और उसमें यह बोध उत्पन्न करना है कि इसका कवित्व इतनी उच्च कोटि का है कि वह किसी भी युग में बासी नहीं पड़ेगा तथा इसकी जीवनदृष्टि, अपनी युगीन सीमाओं के बावजूद, इतनी मूल्यवान् है कि वह हमें आज भी प्रेरित कर सकती है।

'मानस-कौमुदी' की सबसे बड़ी सार्थकता यही हो सकती है कि यह अपने पाठकों को सम्पूर्ण रामचरितमानस के अध्ययन के लिए प्रेरित करे, लेकिन जो किन्हीं कारणों से सम्पूर्ण मानस नहीं पढ़ सकते तथा संक्षेप में उसकी समग्रता की जानकारी और आस्वाद ग्रहण करना चाहते हैं, उनके लिए इसकी सार्थकता स्वतः स्पष्ट है।

रांची : २० फरवरी, १९७८

भूमिका

कामिल बुल्के
दिनेश्वर प्रसाद

१. रामकथा की परम्परा :

बृहद्धर्मपुराण मे वाल्मीकिरामायण के विषय मे यह कहा गया है कि सभी काव्य, इतिहास और पुराण-ग्रंथो का आधार यही रचना है . रामायणमहाकाव्यमादौ वाल्मीकिना कृतम् । तन्मूलं सर्वकाव्यानामितिहासपुराणयो (पूर्वभाग, २५/२८) ।

इसमे सन्देह नही कि व्यास और वाल्मीकि ने न केवल भारत, वरन् समस्त दक्षिणपूर्व एशिया के साहित्य को गम्भीरता से प्रभावित किया है। हिन्दी की सबसे महान् और उत्तर भारत की सबसे लोकप्रिय रचना रामचरितमानस वाल्मीकि-रामायण से आरम्भ होने वाली रामकाव्य-परम्परा की ही एक कड़ी है। अतएव, मानस की बहुत-सी विशेषताओ को तब तक अच्छी तरह नही समझा जा सकता, जब तक इसे रामकाव्य की परम्परा मे रख कर नही देखा जाता।

सदियो से यह बात प्रसिद्ध है कि वाल्मीकिरामायण रामकथा का सबसे पहला महाकाव्य है। लेकिन, इस बात के बड़े स्पष्ट प्रमाण मिलते हैं कि यह कथा जन-साधारण के बीच वाल्मीकि से पहले ही प्रचलित थी। यह गाथाओ या गीतो के रूप मे सुनी-सुनायी जाती थी और इस प्रकार इसका स्वरूप आख्यानकाव्य का था। बौद्ध त्रिपिटक, महाभारत और वाल्मीकिरामायण के अनुशीलन से पता चलता है कि राम-सम्बन्धी आख्यानकाव्य की उत्पत्ति वैदिक काल के बाद, लेकिन चौथी शताब्दी ई० पू० से कई शताब्दियो पहले हुई। वैदिक साहित्य मे रामकथा के जिन पात्रो के नाम मिलते हैं, वे हैं—इक्ष्वाकु, दशरथ, राम, अश्वपति, जनक और सीता। वहाँ चार व्यक्तियो का नाम राम है जिनमे से एक राजा है और तीन ब्राह्मण। वैदिक साहित्य मे न तो इन नामो के पारस्परिक सम्बन्ध का उल्लेख हुआ है और न इनके सन्दर्भ मे रामकथा का कोई निर्देश मिलता है। उसमे जनक और सीता की चर्चा बार-बार हुई है, लेकिन दोनो के पिता-पुत्री-सम्बन्ध की ओर कही भी संकेत नही किया गया है। अतएव, इन नामो के आधार पर अधिक-से-अधिक यही कहा जा सकता है कि ये वैदिक काल मे भी प्रचलित थे, लेकिन यह निष्कर्ष नहीं

निकाला जा सकता कि रामकथा का स्रोत वैदिक साहित्य है। वैदिक साहित्य के रचना-काल में रामकथा-सम्बन्धी गाथाओं की खोज सन्देहजनक ही मानी जा सकती है।

पिछली शताब्दी में डॉ० वेबर नामक विद्वान् ने इस मत का प्रतिपादन किया कि रामकथा का मूल रूप दशरथजातक में सुरक्षित है। दशरथजातक में राम और रावण के युद्ध का उल्लेख नहीं है। डॉ० वेबर का अनुमान है कि सीता-हरण और उसके कारण होने वाले युद्ध की कथा का मूल स्रोत होमर का महाकाव्य 'इलियड' है, जिसमें पेरिस द्वारा हेलेन के अपहरण और ट्राय के युद्ध का वर्णन मिलता है। डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी ने हाल में डॉ वेबर के इस मत का समर्थन किया है। लेकिन, दशरथजातक मे प्राप्य रामकथा की अन्तरंग परीक्षा के बाद इसमें सदेह नही रह जाता कि इसका कथानक मौलिक न हो कर वाल्मीकि की रामायणीय कथा का विकृत रूप है। इसका मुख्य अंश गद्य में है, जो अपेक्षाकृत अर्वाचीन है। इसका पद्यभाग बौद्ध त्रिपिटक की गाथाएँ हैं, जो तीसरी शताब्दी ई० पू० में मगध देश में पाली-भाषा में लिपिबद्ध की गयी थी। इसके विपरीत, इसका गद्यभाग गाथाओं के, आठ शताब्दियों बाद मौखिक परम्परा के आधार पर लिपिबद्ध किया गया था।[1]

एक दूसरे विद्वान् डॉ० हरमन याकोबी ने वाल्मीकिरामायण के दो प्रधान स्रोत माने हैं। उनके अनुसार अयोध्याकाण्ड का कथानक ऐतिहासिक घटनाओं पर आधारित है, लेकिन दण्डकारण्य और लंका की सामग्री वैदिक साहित्य के कुछ पात्रों के चरित्र-चित्रण के विकास से सम्बद्ध है। किन्तु डॉ० याकोबी अपने द्वारा उल्लिखित वैदिक पात्रों के चारित्रिक विकास-क्रम का निर्धारण करने में असमर्थ रहे हैं। पुनः, वाल्मीकिरामायण के मूल रूप की परीक्षा करने पर यही प्रमाणित होता है कि उसके अयोध्याकाण्ड तथा शेष कथानक में कोई मौलिक अन्तर नहीं था। उसके मूल रूप के कथानक की घटनाएँ पूरी तरह स्वाभाविक थीं और उनमें कहीं भी अतिलौकिकता का समावेश नहीं हुआ था।

राम-सम्बन्धी प्राचीन गाथा-साहित्य का आरम्भ ऐतिहासिक घटनाओं के आधार पर हुआ होगा। रामकथा के मूल स्रोत के सम्बन्ध में प्रचलित विभिन्न धारणाओं

---

१. दशरथजातक और रामकथा-सम्बन्धी अन्य सामग्री तथा रामचरितमानस के कथानक के स्रोतों की विस्तृत जानकारी के लिए रामकथा (फादर कामिल बुल्के) का तीसरा संस्करण (हिन्दी-परिषद्, इलाहाबाद - विश्वविद्यालय, सन् १९७१ ई.) देखिये।

की अप्रामाणिकता और उनके पारस्परिक विरोध के आधार पर इसी अनुमान को बल मिलता है। यदि प्राचीन अयोध्या की खुदाई की जाय, तो यह सिद्ध हो जायेगा कि नवी शताब्दी ई०पू० मे वहाँ एक नगर था। हाल मे अपने देश के विख्यात पुरातत्त्वज्ञ डॉ० हँसमुख धीरज सांकलिया ने 'रामायण मिथ ऑर रियलिटी' नामक पुस्तक मे यह विचार प्रकट किया है कि कम-से-कम आठ सौ ई० पू० तक अयोध्या बसायी जा चुकी थी। हालांकि रामकथा की ऐतिहासिकता के पक्के प्रमाण अब तक नही मिले हैं, फिर भी इसके निर्देशो का अभाव नही है। इन निर्देशो मे एक है महाभारत के शान्तिपर्व की रामकथा, जो षोडशराजोपाख्यान मे मिलती है। इससे स्पष्ट है कि महाभारत इस प्रसंग के अन्य पन्द्रह राजाओ की तरह राम को भी ऐतिहासिक मानता है।

वाल्मीकि ने ऐतिहासिक रामकथा के विषय मे बहुत समय से प्रचलित गाथाओं को एक सूत्र मे ग्रथित कर आदिरामायण की रचना की। भारतीय साहित्य की अन्य रचनाओ के तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर यह बात निश्चित-प्राय है कि आदिरामायण की रचना ३०० ई० पू० के आसपास हुई। प्राचीन बौद्धसाहित्य, मुख्यत जातको की गाथाओ की सामग्री के विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि त्रिपिटक के रचनाकाल मे राम-सम्बन्धी आख्यानकाव्य प्रचलित था, किन्तु रामायण की रचना नही हुई थी। पाणिनि (५०० ई० पू०) मे रामायण, वाल्मीकि या रामायण के मुख्य पात्र दशरथ, राम, लक्ष्मण, भरत आदि का कोई उल्लेख नहीं मिलता। ये बातें आदिरामायण के रचनाकाल के निर्णय की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। शताब्दियो तक इस रचना का मौखिक रूप मे प्रचार बना रहा। आजकल इसके तीन पाठ मिलते हैं। वे हैं—दाक्षिणात्य, गौडीय और पश्चिमोत्तरीय। तीनो की तुलना के आधार पर इसका बडौदा-सस्करण (१९६०-१९७३ ई०) प्रकाशित हुआ है, जिसकी श्लोक-सख्या १८७६६ हैं, जब कि ईसवी-सन् तीसरी शताब्दी के अभिधर्म-महाविभाषा नामक ग्रन्थ मे अपने समय मे प्रचलित रामायण की श्लोक-सख्या १२००० बतलायी गयी है। पाठो की भिन्नता और श्लोक-सख्या की निरन्तर वृद्धि के कारण का सबसे बडा सकेत स्वय वाल्मीकिरामायण मे मिल जाता है। रामायण के बालकाण्ड मे यह कहा गया है कि वाल्मीकि के शिष्य कुशीलव थे, जो समस्त देश मे घूम-घूम कर यह काव्य सुनाया करते थे। ये आख्यान-काव्य सुना कर अपनी जीविका चलाते थे और 'काव्योपजीवी' के नाम से प्रसिद्ध थे। वाल्मीकि का काव्य इन्ही कुशीलवो की सम्पत्ति बन गया और उनकी परम्परा इसका कलेवर बढाती रही। लेकिन, उनके माध्यम से यह काव्य जनता के बीच शीघ्र ही लोक-

प्रिय हो गया और यह लोकप्रियता निरन्तर बढती गयी। इसका एक अन्य प्रमाण बौद्ध तथा जैन साहित्य में मिलता है। बौद्धों ने ईसवी सन् से पहले ही राम को बोधिसत्त्व मान लिया। जैनों ने वाल्मीकि की रचना को मिथ्या कह कर रामकथा को एक नये रूप मे प्रस्तुत किया तथा उन्होंने राम, लक्ष्मण और रावण को त्रिषष्टिशलाकापुरुषों मे सम्मिलित किया।

वाल्मीकिरामायण के उपलब्ध रूप मे जो मुख्य प्रक्षेप मिलते हैं, वे बालकाण्ड, उत्तरकाण्ड और अवतारवाद सम्बन्धी प्रसग हैं। प्राय सभी आलोचक यह मानते हैं कि ये प्रक्षेप इस रचना मे ईसवी सन् की दूसरी शताब्दी तक सम्मिलित हो गये थे। यदि इसके सभी प्रक्षेपों पर विचार किया जाय तो उनमे कई आवृत्तियाँ, अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन और अलौकिक घटनाएँ मिल जायेंगी। इससे *आदिरामायण* की स्वाभाविकता और सन्तुलन बहुत दूर तक प्रभावित हुए हैं। लेकिन इसके दोषी वाल्मीकि नही हैं। अपने बुनियादी रूप म वाल्मीकि की रचना इतनी मर्मस्पर्शी है कि इसने देखते-देखते लोगो का मन जीत लिया और यह स्थायी रूप मे लोकप्रिय हो गयी। आदिरामायण की स्वाभाविकता और सन्तुलन, सुसगठित कथावस्तु, जीवन्त पात्रों और सरल शक्तिशाली भाषा ने इसे लोकजीवन का अग बना दिया। लेकिन, इसकी लोकप्रियता का कारण केवल यह नही है कि यह कवित्व की दृष्टि से बहुत उच्च कोटि की रचना है, बल्कि यह है कि इसमे कला के साथ धार्मिक आदर्शवाद का अपूर्व समन्वय हुआ है। इसमे धर्म को बहुत अधिक महत्त्व दिया गया है, लेकिन इसका धर्म जीवन के प्रत्येक पक्ष का स्पर्श करने वाला व्यावहारिक मानवधर्म है। इस मानवधर्म म सबसे अधिक महत्त्व नैतिकता और लोकसग्रह का है। राम इसके सबसे बडे प्रतिनिधि हैं। वह साक्षात् धर्म, विग्रहवान् धर्म, धर्मपरायण, धर्मात्मा, धर्मप्रधान और धर्मचारी हैं, लेकिन वह पूजा पाठ, तीर्थ-व्रत आदि कर्मकाण्ड सम्बन्धी कार्यकलाप म कही भी व्यस्त नही दीखते है। उनका धर्म इस बात मे है कि वह सत्यवादी, सत्यपरायण, आज्ञाकारी पुत्र, एकपत्नीव्रत, सत्यप्रतिज्ञ, प्रजाहित और सभी प्राणियो के हितैषी (सर्वभूतहिते रत) हैं। वह ससार के भोगों के प्रति उदासीन नही हैं, लेकिन सन्तुलन और धर्म को सभी सुखो का आधार मानते हैं। वह सुग्रीव से कहते हैं कि जो मनुष्य धर्म और अर्थ को ताक पर रख कर काम के वशीभूत होता है, वह पेड की फुनगी पर सोये हुए मनुष्य के समान है, जो गिरने पर ही जागता है।

हित्वा धर्म तथार्थं च काम यस्तु निषेवते।
स वृक्षाग्रे यथा सुप्त पतित प्रतिबुध्यते ॥ २२ ॥

(किष्किन्धाकाण्ड, सर्ग ३८)

आदिरामायण के बहुत-से पात्रो मे धर्म का जो रूप मूर्त्त हुआ है, वह विश्व-जनीन है। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं कि वाल्मीकि द्वारा प्रतिपादित मानवीय मूल्यो के अभाव मे मानवीय जीवन बिताना असम्भव है।

अपनी कलात्मकता और प्रेरणादायक जीवन-दर्शन के कारण वाल्मीकि-रामायण ने न केवल भारत, वरन् समस्त दक्षिणपूर्व एशिया के साहित्य को प्रभावित किया है। इन्दोनेशिया और हिन्दचीन मे यह रचना ईसवी सन् की आरम्भिक शताब्दियो मे ही लोगो को ज्ञात हो गयी। बाद मे उन देशो मे एक अत्यन्त विस्तृत रामसाहित्य रचा गया—विशेष रूप से जावा, मलय, कम्बोदिया, लाओस, थाईलैण्ड और बर्मा मे। अनगिनत काव्यो और नाटको के रूप मे वहाँ जो राम-साहित्य लिखा गया, उसका स्रोत वाल्मीकिरामायण है तथा उन सब पर वाल्मीकि की कला एव आदर्शवाद का गहरा प्रभाव है। वाल्मीकि-परवर्ती भारतीय साहित्य मे भी राम-सम्बन्धी रचनाओ की अटूट शृ खला मिलती है, जिसके मूल मे इसी रचना की प्रेरणा है। सस्कृत मे रघुवश (कालिदास), सेतुबन्ध (प्रवरसेन), जानकीहरण (कुमारदास), रामचरित (अभिनन्द), उत्तररामचरित (भवभूति), बालरामायण (राजशेखर) आदि प्रबन्ध और नाटक इसके उदाहरण हैं। जैन परम्परा के प्राकृत और अपभ्र श-साहित्य मे वाल्मीकि के सशोधन का प्रयत्न मिलता है। इस परम्परा की सबसे प्रसिद्ध रचनाएँ विमलसूरि का 'पउमचरिय' (प्राकृत) और उस पर आधारित स्वयम्भूदेव-कृत 'पउमचरिउ' (अपभ्र श) हैं। आधुनिक भारतीय भाषाओ का पहला महाकाव्य या उनकी सबसे लोकप्रिय रचना प्राय. कोई रामायण है। इसके कुछ उदाहरण हैं कम्बन-कृत 'तमिलरामायण' (१२वी शताब्दी), रगनाथ रचित तेलुगु-भाषा का 'द्विपदरामायण' (१३वी शताब्दी), राम नामक कवि द्वारा मलयालम मे रचित 'इरामचरित' (१४वी शताब्दी), कन्नड कवि नरहरि का 'तोरवेरामायण' (१६वी शताब्दी ई०), असमी भाषा का 'माधव-कन्दलीरामायण' (१४वी शताब्दी ई०), बँगला का 'कृत्तिवासरामायण' (१५वी शताब्दी ई०), ओडिया-कवि बलरामदास-कृत 'जगमोहनरामायण' (१६वीं शताब्दी ई०) और एकनाथ का मराठी 'भावार्थरामायण' (१६वी शताब्दी ई०)।

स्वाभाविक है कि शताब्दियो तक काव्यविषय के रूप में गृहीत रामकथा के स्वरूप और स्वर मे कई परिवर्त्तन हुए हैं।

वाल्मीकि के रामकाव्य का स्वरूप नरकाव्य का था और इसके राम का चरित्र मर्यादापुरुषोत्तम का था। लेकिन, यह निर्देश किया जा चुका है कि आदि-रामायण का विकास होता रहा और उसमे नये-नये प्रक्षेप सम्मिलित होते रहे। आज

वाल्मीकिरामायण के जो पाठ प्रचलित हैं, उनमे कई स्थलो पर राम को विष्णु का अवतार माना गया है। राम और विष्णु की अभिन्नता की यह धारणा सम्भवत पहली शताब्दी ई० पू० की है, क्योकि प्रचलित वाल्मीकिरामायण के उत्तरकाण्ड मे अवतारवाद पूरी तरह व्याप्त है। अत, यही मानना तर्कसगत प्रतीत होता है कि राम को अवतार मानने की भावना इसके वर्त्तमान स्वरूप ग्रहण करने से पहले की है।

अवतारवाद का परिणाम यह हुआ कि रामकथा मर्यादापुरुषोत्तम और आदर्श क्षत्रिय राम का चरित्र न रह कर विष्णु की नरलीला बन गयी, जिसका उद्देश्य रावण की दुष्टता से आक्रान्त पृथ्वी का उद्धार कर साधुजनों की रक्षा करना था। इसके कारण मूल कथा मे अलौकिकता और चमत्कार की वृद्धि होने लगी, लेकिन यह बात ध्यान देने की है कि विष्णु के अवतार के रूप मे स्वीकृत होने के शताब्दियो बाद तक लोक की धर्मचेतना मे राम के लिए कोई विशेष स्थान नही था। सस्कृत के ललित साहित्य के स्वर्णयुग में रामकथा पर आधारित जो महाकाव्य और नाटक उपलब्ध हैं, उनका प्रधान दृष्टिकोण धार्मिक न हो कर साहित्यिक है। लेकिन रामभक्ति के आविर्भाव के बाद समस्त भारत के राम-साहित्य का वातावरण बदल गया और उसकी अधिकाश रचनाओ का मुख्य दृष्टिकोण साहित्यिक न रह कर धार्मिक हो गया। रामभक्ति के कारण रामायण की आधिकारिक कथा के कई प्रसगो और पात्रो के स्वरूप मे सशोधन-परिवर्तन हुए। रावण द्वारा मायासीता का हरण, मोक्षप्राप्ति के उद्देश्य मे राम से उसकी शत्रुता, शख, शेष और सुदर्शन चक्र का क्रमश भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न के रूप मे अवतरण, तथा लक्ष्मी (और बाद मे पराशक्ति) के साथ सीता की अभिन्नता इसी के उदाहरण हैं।

आज यह बतलाना असम्भव-जैसा है कि राम के प्रति भक्ति का आविर्भाव किस समय हुआ। तमिल आलवारों के नालियार-प्रबन्ध मे, विशेषत नवी शती के कुलशेखर की रचना मे, विष्णु के अवतार कृष्ण के सिवा राम के प्रति भी असीम भक्तिभाव मिलता है। बारहवीं शताब्दी से रामानुज-सम्प्रदाय के समय तक रामभक्ति और रामपूजा के शास्त्रीय विधान का प्रतिपादन हुआ है। इस उद्देश्य से जिन सहिताओ और उपनिषदो की रचना हुई, उनमे वेदान्तदर्शन के साथ भक्ति के समन्वय का प्रयत्न किया गया है और राम को विष्णु का ही नही, वरन परब्रह्म का अवतार भी माना गया है। इसके बाद, रामावत-सम्प्रदाय द्वारा उत्तर भारत मे रामभक्ति के व्यापक प्रसार के पश्चात्, साम्प्रदायिक रामायणो की रचना आरम्भ

होती है । उनमे अध्यात्मरामायण, अद्भुतरामायण और आनन्दरामायण उल्लेखनीय हैं, किन्तु इन तीनो मे सबसे महत्त्वपूर्ण रचना अध्यात्मरामायण है, जो चौदहवी या पन्द्रहवी शताब्दी की है । अध्यात्मरामायण मे शाकर अद्वैतवाद के आधार पर रामभक्ति का शास्त्रीय प्रतिपादन हुआ है । इस रचना को व्यापक लोकप्रियता मिली ।

रामचरितमानस के स्वरूप को समझने के लिए रामकथा के विकास की पूरी परम्परा को ध्यान मे रखना आवश्यक है । तुलसी ने वाल्मीकिरामायण और अध्यात्मरामायण, दोनो को अपने काव्य के आधारग्रथो के रूप मे ग्रहण किया है । मानस मे वाल्मीकि का लोकसग्रह और अध्यात्मरामायणकार की भगवद्भक्ति, दोनो का समन्वय हुआ है । लेकिन, वाल्मीकि-परवर्ती रामकाव्यो मे मानस की अद्वितीयता का बहुत बडा कारण तुलसी की कवित्वशक्ति है । तुलसी ने मानस की प्रस्तावना मे लिखा है :

मुदमगलमय सत समाजू । जो जग जगम तीरथराजू ॥
रामभक्ति जहँ सुरसरि धारा । सरसइ ब्रह्मबिचार-प्रचारा ॥
बिधि-निषेधमय कलिमल-हरनी । करमकथा रविनदिनि बरनी ॥

रामचरितमानस भी एक नया तीर्थराज है, एक नया प्रयाग है, एक नयी त्रिवेणी, जिसकी तीन धाराएँ हैं : अनन्य भगवद्भक्ति की गगा, आदर्श रामचरित की यमुना और अनिर्वचनीय काव्यकला की सरस्वती ।

२. मानस के स्रोत :

उल्लेख किया जा चुका है कि रामचरितमानस रामकाव्य की एक लम्बी परम्परा का विकास है । अत , इसमे बहुत-सी ऐसी विशेषताओ का मिलना स्वाभाविक है, जो इस पूर्वपरम्परा की देन हैं । यह सम्भावना तब और भी बढ जाती है, जब स्वय कवि का उद्देश्य विभिन्न पुराणो, निगम-आगम-ग्रथो तथा किन्ही अन्य ग्रथो मे उपलब्ध सामग्री के आधार पर लोकभाषा मे रामकथा का गान करना हो । वह इस बात का उल्लेख बालकाण्ड के सस्कृत-मगलाचरण के अतिरिक्त इसके प्रस्तावना-भाग मे भी करता है

मुनिन्ह प्रथम हरि-कीरति गाई । तेहिं मग चलत सुगम मोहि भाई ॥
अति अपार जे सरित बर जौं नृप सेतु कराहिं ।
चढ़ि पिपीलिकउ परम लघु बिनु श्रम पारहिं जाहिं ॥ १३ ॥

एहि प्रकार बल मनहि देखाई। करिहउं रघुपति-कथा सुहाई ॥

(मानस-कौमुदी, स० ३)

वह हरि की कथा का बखान करने वाले व्यास आदि संस्कृत और प्राकृत कवियों का उल्लेख करने के बाद अपनी कथा की उत्पत्ति का इतिहास बतलाता है (दे० मानस-कौमुदी, स० ५)। भगवान् की लीला का रहस्य जानने वाले भक्तों के बीच प्रचलित यह कथा उसको अपने गुरु से प्राप्त होती है, जिसे वह भाषाबद्ध करने जा रहा है

भाषाबद्ध करब मैं सोई। मोरें मन प्रबोध जेहिं होई ॥

(बाल ३१, २)

वह आत्मनिवेदन या आमुख भाग में वाल्मीकि का उल्लेख करता है और रामायणों की अनन्तता का भी। यह बतलाना कठिन है कि वह जिस शिव-रचित रामकथा की चर्चा करता है, वह कौन सी रचना है। हम यह जानते हैं कि अध्यात्मरामायण के वक्ता शिव हैं और रामकथा परम्परा में आनेवाली रचनाओं में जो काव्य रामचरितमानस का सबसे शक्तिशाली स्रोत माना जा सकता है, वह अध्यात्मरामायण ही है। बहुत सम्भव है, यहाँ कवि का संकेत इसी रामायण की ओर हो।

स्वयं कवि द्वारा अपनी रचना के पूर्व परम्परा पर आधारित होने के उल्लेख से प्रेरित हो कर विद्वानों ने इसके स्रोतों की खोज का प्रयत्न किया है। इसके स्रोतों को हम तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं (क) कथानक के स्रोत, (ख) विचारों के स्रोत और (ग) उक्तियों के स्रोत।

अन्य रामकाव्यों की तरह मानस के कथानक का मूल ढाँचा भी वाल्मीकि पर आधारित है, किन्तु कथानक की विभिन्न घटनाओं या प्रसंगों के विवरणों की दृष्टि से इस पर सबसे गहरा प्रभाव अध्यात्मरामायण का है। इसमें बहुत-से ऐसे प्रसंग भी मिलते हैं, जो केवल अध्यात्मरामायण में उपलब्ध हैं। अध्यात्मरामायण के अनुसार, रामचरितमानस में राम शिशु रूप धारण करने के पहले कौशल्या को अपना विष्णु-रूप दिखलाते हैं। आदिरामायण में देवताओं द्वारा सरस्वती को अयोध्या भेज कर मंथरा के सम्मोहन का उल्लेख नहीं मिलता है। यह उल्लेख भी *अध्यात्मरामायण पर आधारित है। वाल्मीकिरामायण में जब राम मारीच का* वध करते हैं, तब मृत्यु से पहले वह कनकमृग का रूप त्याग कर अपने मूल राक्षस-रूप में आ जाता है। किन्तु, अध्यात्मरामायण में इससे आगे बढ़ कर यह कहा गया है कि मृत्यु के समय उसके शरीर से तेज निकल कर राम में समा जाता है।

वाल्मीकि मे मायासीता और रावण द्वारा उसके हरण का वृत्तान्त नही मिलता और न ही उसमे सेतुबन्ध के समय राम द्वारा शिव की प्रतिष्ठा की कथा आती है। ये दोनों प्रसग अध्यात्मरामायण मे भी है।

किन्तु, मानस के कथानक को केवल वाल्मीकि और अध्यात्मरामायण की सामग्री तक सीमित कर देखना उचित नही है। इस पर प्रसन्नराघव, महानाटक, शिवपुराण, भुशु डिरामायण, भागवतपुराण आदि कई रचनाओ का प्रभाव पडा है। सती द्वारा राम की परीक्षा का प्रसग शिवपुराण से गृहीत है तथा पुष्पवाटिका का प्रसग प्रसन्नराघव से। प्रसन्नराघव मे सीता पूजा करने के लिए चण्डिकायतन की ओर जाती है, तो राम सीता और उनकी सखियो का वार्त्तालाप छिप कर सुनते हैं। दोनो एक दूसरे को देखते और अनुरक्त हो जाते हैं। कुछ सशोधन के साथ यही प्रसग मानस मे आया है। धनुष-भग के बाद आयोजित परशुराम-लक्ष्मण-सवाद भी प्रसन्नराघव पर आधारित है। चित्रकूट मे जनक के आगमन (अयोध्याकाण्ड) और पम्पा-सरोवर के किनारे नारद के आगमन तथा राम नारद-सवाद (अरण्यकाण्ड) के स्रोत क्रमश श्रवणरामायण और रामगीतगोविन्द हैं। लकाकाण्ड का अगद रावण-सवाद महानाटक पर आधारित है। ब्यौरे मे जा कर देखने पर मानस के कथानक के कई छोटे-बडे प्रसग वाल्मीकि और अध्यात्म-रामायण से भिन्न स्रोतो पर आधारित सिद्ध होते हैं।

लेकिन, इसका अर्थ यह नही कि मानस यहाँ-वहाँ से गृहीत सामग्री पर आधारित रचना है। अपनी समग्रता मे यह एक मौलिक कृति है। इसकी मौलिकता पूर्वपरम्परा से गृहीत सामग्री के चयन और व्यवस्थापन मे है, जिसके पीछे भक्त, समाजनिर्माता और कवि की सम्मिलित दृष्टि काम करती है। इसमे कथा के शिल्प, राम तथा उनसे जुडे हुए पात्रो की चरित्रगत मर्यादा और अपने मुख्य प्रतिपाद्य विषय भक्ति की दृष्टि से बहुत से प्रसगो को या तो पूरी तरह छोड दिया गया है या उनका सकेत भर किया गया है तथा कई घटनाओ का क्रम परिवर्तित कर दिया गया है। छोडे हुए कुछ प्रसग और विवरण हैं—राम और सीता की शृ गारिक चेष्टाएँ शम्बूक-वध और सीता-त्याग। जहाँ वाल्मीकि रामायण में राजा दशरथ के अश्वमेध यज्ञ के सकल्प के बाद ऋष्यशृ ग की कथा (बालकाण्ड, सर्ग ९–११), अश्वमेध यज्ञ (सर्ग १२–१४) और पुत्रेष्टि यज्ञ (सर्ग १५–१८) का विस्तृत विवरण मिलता है, वहाँ मानस मे पूरे विषय को बहुत कम पक्तियो मे समाप्त कर दिया गया है (दे० मानस-कौमुदी, स० १६)। वाल्मीकि मे, मृत्यु से पूर्व दशरथ कौशल्या को अन्धतापस की कथा सर्ग ६३-६४ मे

सुनाते हैं, जिसे मानसकार ने एक ही पक्ति में कह दिया है

तापस अध-साप सुधि आई। कौसल्यहि सब कथा सुनाई ॥
(अयोध्याकाण्ड, छन्द सख्या १५५,४)

इसी प्रकार मानस म कुछ घटनाओ का क्रम भी भिन्न हो जाता है। केवट का प्रसिद्ध प्रसग जो सबसे पहले महानाटक मे मिलता है अध्यात्मरामायण के बालकाण्ड मे अहल्या के उद्धार के बाद आया है। महानाटक मे इस प्रसग की योजना राम की चित्रकूट यात्रा मे अहल्या के उद्धार के बाद हुई है। तुलसी ने अहल्या के उद्धार का प्रसग तो अध्यात्मरामायण के अनुसार रखा है, किन्तु केवट का प्रसग महानाटक के अनुसार। वाल्मीकिरामायण मे दशरथ के पुत्रेष्टि-यज्ञ के बाद देवता विष्णु से अवतार लेने के लिए प्रार्थना करते हैं। मानसकार ने इसका पूर्वापर क्रम परिवर्त्तित कर दिया है। इसी तरह वाल्मीकि मे काक (जयन्त) का प्रसग भरत के चित्रकूट आगमन से पहले मिलता है, जब कि मानस मे यह उसके बाद की घटना है।

अभिप्राय यह कि मानस मे रामकथा का जो रूप उपलब्ध होता है, वह पूर्व परम्परा पर आधारित होते हुए भी मौलिक है। यही बात इसके विचारो के प्रसग मे भी कही जा सकती है।

मानस के विचारात्मक स्थल हैं—इसका प्रस्तावना भाग स्तुतियाँ या स्तोत्र, दार्शनिक सवाद तथा स्वय कवि या पात्रो की स्फुट उक्तियाँ। इसके स्तोत्र अध्यात्मरामायण पर आधारित जैसे हैं। उनके वक्ता और अवसर ही नहीं, बल्कि उनकी सामग्री भी अध्यात्मरामायण से साम्य रखती है। इसको दार्शनिक व्याख्याओ का प्रधान स्रोत भी यही रचना है। यह कहना अत्युक्ति नहीं है कि मानस के विचारो को अध्यात्मरामायण के आधार के बिना अच्छी तरह समझा नहीं जा सकता। लेकिन यदि इसके विचारो को अभिव्यक्त करने वाले छोटे बडे, सभी स्थलो की परीक्षा की जाय, तो उनके अनेकानेक स्रोतो का निर्देश किया जा सकता है। ऐसे स्रोतो मे वाल्मीकिरामायण, महाभारत, भागवतपुराण, गीता, मनुस्मृति, चाणक्यनीति, पचतत्र आदि कई रचनाएँ हैं। लेकिन स्रोतो की चर्चा करते समय जो बात प्राय भुला दी जाती है वह उनके माध्यम से प्राप्त विचारों के सयोजन की है। तुलसी ने उनको सर्वत्र यथावत स्वीकार नहीं किया है। उन्होने अपनी सामान्य विचारधारा से मेल नही रखने वाली बातो को या तो पूरी तरह छोड दिया है या उन्हें आवश्यक परिष्कार और सशोधन द्वारा उसके अनुरूप बना लिया है।

उनकी यह सामान्य विचारधारा अध्यात्मरामायण से भी पूरी समानता नहीं रखती। अध्यात्मरामायण से उनका एक बड़ा और बुनियादी अन्तर यह है कि जहाँ उसमे भक्ति को ज्ञान का साधन माना गया है, वहाँ मानस मे भक्ति को न केवल ज्ञान से श्रेष्ठ, वरन् भगवान् तक पहुँचने का एकमात्र अव्यर्थ मार्ग कहा गया है। तुलसी ने अध्यात्मरामायणकार की तरह यह नहीं माना है कि मुक्ति के लिए ज्ञानमार्ग और भक्तिमार्ग, दोनो मे से किसी का भी चुनाव हो सकता है, बल्कि उनका विश्वास यह है कि भक्ति के बिना मनुष्य का उद्धार सम्भव नहीं है। दृष्टिकोण के इस अन्तर के कारण वह अपने इस आधारग्रंथ की सामग्री को बदल कर उसे नया रूप और नया स्वर दे देते हैं।[१]

बहुत दिनो से यह बात प्रसिद्ध है कि मानस मे भक्ति के सम्बन्ध मे जो कुछ कहा गया है, उसका एक स्रोत भुशुंडिरामायण है। भुशुंडिरामायण की प्रेरणा से ही काकभुशुंडि और गरुड के संवाद की योजना की गयी है तथा उत्तरकाण्ड के अधिकतर भाग का लेखन हुआ है। भुशुंडिरामायण नाम की एक रचना हाल मे प्रकाशित हुई है, किन्तु उसके स्वरूप की परीक्षा से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि वह तुलसी के प्रसंग मे उल्लिखित भुशुंडिरामायण नहीं है। अतएव, जब तक यह रचना प्रकाश मे नहीं आती तब तक मानस की वैचारिक सामग्री के स्रोतो की परीक्षा का कार्य अधूरा ही रहेगा। फिर भी, यह नहीं भूलना चाहिए कि इसकी विचारधारा का प्रतिनिधित्व करने वाले सभी प्रसंग पुस्तको से गृहीत नहीं हैं। इसका विस्तृत प्रस्तावना-भाग किसी पुस्तक मे प्राप्त विचारो पर नहीं, वरन् स्वयं कवि के चिन्तन पर आधारित है। प्रस्तावना मे राम के निर्गुण-सगुण स्वरूप, रामकथा की महिमा और नाम के रहस्य के विषय मे जो कुछ कहा गया है, वह कवि के अपने चिन्तन-मनन का परिणाम है (दे० मानस-कौमुदी, सं० ४)।

उक्ति-सम्बन्धी स्रोतो पर विचार करने से पहले इस विषय का स्पष्टीकरण आवश्यक है। उक्ति से हमारा तात्पर्य सामग्री का सुनिश्चित शब्दबद्ध रूप है, जिसका विस्तार एक-दो पंक्तियो से लेकर पृष्ठो तक सम्भव है। अब तक किये गये विवेचन से यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि मानस मे अन्य रचनाओ मे उपलब्ध

---

१. तुलसी भक्ति को अनिवार्य मानते हैं (मानस-कौमुदी सं० १३७, १४३ और १४५) और ज्ञान को अपर्याप्त (मानस-कौमुदी, सं० १४४) तथा भक्ति के अधीन (मानस-कौमुदी, सं० ७६)। इसके विपरीत, अध्यात्मरामायण की धारणा यह है कि भक्ति ज्ञान प्रदान करती है और ज्ञान ही मुक्तिप्रद है। द्रष्टव्य : 'मद्भुक्तियुक्तस्य ज्ञानम्' (अरण्य० ४, ५१) और 'विद्या विमोक्षाय विभाति केवला' (उत्तर० ५,२०)।

इस प्रकार की सामग्री मिल जाती है। जिन लोगो ने मानस पर इस दृष्टि से विचार किया है, उन्होंने इसके अनेकानेक आधारग्रंथो का उल्लेख किया है। ऐसे ग्रंथो मे अध्यात्मरामायण के अतिरिक्त प्रसन्नराघव और महानाटक (हनुमन्नाटक) का महत्त्व सबसे अधिक है। कुछ उदाहरणो द्वारा यह निर्देश किया जा सकता है कि मानस मे इनकी उक्तियो का उपयोग किस रूप मे हुआ है।

प्रसन्नराघव में धनुष-यज्ञ के प्रसग का एक छन्द है

बाणस्य बाहुशिखरैं परिपीड्यमान
नेद धनुश्चलति किञ्चिदपीन्दुमौले।
कामातुरस्य वचसामिव सविधानं —
रभ्यर्थित प्रकृतिचारु मन सतीनाम्॥ (१, ५६)

यहाँ यह कहा गया है कि बाणासुर अपनी भुजाओ से धनुष को उठाने का बहुत प्रयत्न करता है, लेकिन इन्दुमौलि (शिव) का धनुष टस-से-मस नही होता — (ठीक उसी तरह), जैसे कामी जनो के वचनो द्वारा अभ्यर्थित होने पर अपने स्वभाव से ही चारु (पवित्र) सती स्त्रियो का मन नही विचलित होता।

मानस मे इस प्रसग से सम्बद्ध निम्नलिखित पक्तियाँ मिलती हैं .

भूप सहस दस एकहि बारा। लगे उठावन टरइ न टारा॥
डगइ न सभु-सरासन कैसे। कामी-बचन सती-मनु जैसे॥

दोनो की तुलना करने पर कई बातें सामने आती हैं, जो तुलसी द्वारा दूसरो की उक्तियों के ग्रहण की पूरी प्रक्रिया को समझने की दृष्टि से मूल्यवान् हैं। पहली बात प्रसग-परिवर्त्तन या दिशान्तरण की है, क्योंकि यहाँ शिव का धनुष बाणासुर के द्वारा नही, वरन् दस हजार (असख्य) राजाओ द्वारा उठाया जा रहा है। इससे प्रसग का रूप बदल गया है और शिव के धनुष की गुरुता भी बढ गयी है। उसकी गुरुता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि उसे दस हजार राजा एक ही बार, सम्मिलित शक्ति से, उठाने का यत्न कर रहे हैं। दूसरी बात स्वतत्र पक्ति की योजना है, जो 'डगइ न सभु-सरासन कैसे' के रूप मे आयी है। यह पक्ति प्रसन्नराघव के उद्धरण की दूसरी पक्ति में उल्लिखित 'इन्दुमौलि के धनु' (इन्दुमौले धनु) का उपयोग करते हुए भी उससे स्वतत्र रचना है, क्योंकि एक तो इन शब्दो का ज्यों-का-त्यों समावेश न कर इनका पर्याय 'सभु-सरासन' रखा गया है और दूसरे, पूरी की-पूरी पक्ति नयी है। तीसरी बात प्रसन्नराघव की अन्तिम दो पक्तियों का, आशय की दृष्टि से, एक पक्ति (कामी-बचन सती-मनु

जैसे) मे नये रूप मे विन्यास है। इस बात की विशेषता अपने प्रयोजन की वस्तु — किसी उपमा या युक्ति—मात्र का ग्रहण कर शेष अश का त्याग है।

इस प्रकार के अन्य उदाहरणो के आधार पर यह स्पष्ट किया जा सकता है कि तुलसी मे अन्य रचनाकारो की उक्तियो या सामग्री के शब्दश अनुवाद के स्थल सीमित हैं। गृहीत उक्तियो या सामग्री को वह कई रूपो मे बदलते हैं। वह कही तो उसका सक्षेप करते हैं, तो कही विस्तार। वह कही उसमे नयी सामग्री का समावेश करते हैं और कही उसके प्रसग की दिशा मोड देते हैं। इस प्रकार, वह उसको एक नयी अभिव्यक्ति बना देते हैं।

३. मानस का रचनाक्रम :

तुलसीदास ने अपना सम्पूर्ण रामचरितमानस शिव-पार्वती सवाद के रूप मे प्रस्तुत किया है, किन्तु इस काव्य के विस्तृत अशो मे तुलसी स्वय वक्ता हैं। इस समस्या के समाधान के लिए रामचरितमानस के रचनाक्रम के कई सोपान निर्धारित करने का प्रयास किया गया है।

प० रामनरेश त्रिपाठी का अनुमान था कि अयोध्याकाण्ड पहले लिखा गया था। उन्होने इस बात की ओर समालोचको का ध्यान आकृष्ट किया कि प्रथम पाण्डुलिपि के समय तुलसी के मन मे अपनी रचना को 'मानस' नाम देने का विचार नही था (दे० तुलसीदास और उनकी कविता, पृ० २२३)।

बाद मे डॉ० माताप्रसाद गुप्ता और डा० वोदवील ने मानस के रचनाक्रम पर विस्तारपूर्वक विचार किया। दोनो इस परिणाम पर पहुँचे कि "काव्य का जो स्वरूप हमारे सामने है, वह कम से कम तीन विभिन्न प्रयासो का परिणाम जान पडता है।" (डॉ० माताप्रसाद गुप्त, तुलसीदास, पृ० २६३)। डॉ० वोदवील[१] उन तीन पाण्डुलिपियो को क्रमश ये नाम देती हैं— रामचरित, शिवरामायण और रामचरितमानस।

उपर्युक्त पाडुलिपियो के विस्तार के विषय मे दोनो विद्वानो मे बहुत मतभेद हैं। यहाँ इस प्रसग मे अपना मत प्रस्तुत किया जा रहा है।[२]

---

१ डॉ० वोदवील का शोधप्रबन्ध फ्रेंच मे है, जिसका हिन्दी-अनुवाद सन् १९५९ ई० मे पाडिचेरी से फ्रेंच भारत-विद्या प्रतिष्ठान को ओर से प्रकाशित हो चुका है।

२ विस्तार के लिए देखिए मानस का रचनाक्रम, लेखक डॉ० कामिल बुल्के (हिन्दी-अनुशीलन, वर्ष ६, अक ३)।

प्रथम पाडलिपि रामचरित :

प्रथम पाडुलिपि उस समय लिखी गई है, जब कवि के मन मे अपनी रचना को एक धर्मग्रन्थ का रूप देने अथवा इसमे किसी पौराणिक वक्ता को लाने का विचार नही आया था। गोस्वामी तुलसीदास भक्ति से प्रेरित हो कर अपनी ओर से (स्वान्त सुखाय) रामचरित का सरल कविता मे वर्णन करना चाहते थे। सर्वसम्मति से अयोध्याकाण्ड इस प्रथम सोपान का असदिग्ध उदाहरण है। इसकी छन्द-योजना इस प्रकार है इने गिने स्थानों को छोडकर अर्द्धाली समूह सर्वत्र ८ के हैं, प्रत्येक २५वें दोहे के बाद हरिगीतिका छन्द आया है और उसके अनन्तर दोहे के स्थान पर सोरठा रखा गया है। बालकाण्ड के उत्तरार्द्ध मे भी कवि ही वक्ता है तथा इस छन्द योजना का भी बहुत-कुछ निर्वाह किया गया है। अयोध्याकाण्ड तथा बालकाण्ड के उत्तरार्द्ध (बन्द स० १८४ ३६१) के इस साम्य के आधार पर डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने अनुमान किया है कि दोनो प्रथम पाडुलिपि के अश हैं, जो सर्वथा समीचीन प्रतीत होता है।

प० रामनरेश त्रिपाठी का यह मत स्वीकार्य है कि प्रथम पाण्डुलिपि मे अरण्यकाण्ड का प्रारम्भ (बन्द स० १-६) सम्मिलित था। इस पाण्डुलिपि मे कोई-न-कोई प्रस्तावना अवश्य रही होगी। मतभेद इस प्रस्तावना के विस्तार के विषय मे ही हो सकता है। सुश्री वोदवील ने प्रस्तावना के पूर्वार्द्ध (बन्द-स० १-२९) को प्रथम पाण्डुलिपि के अन्तर्गत माना है। यह धारणा अधिक सम्भव प्रतीत होती है। पूर्वार्द्ध में न कही किसी सवाद की ओर सकेत है और न शिव को रामकथा का रचयिता माना गया है। इसके अतिरिक्त, प्रस्तावना के पूर्वार्द्ध मे तुलसी ने अपने को कवि नहीं माना है। ठीक इसके विपरीत, इसके उत्तरार्द्ध मे वह अपने काव्यगुणो के प्रति आश्वस्ति का अनुभव करते हैं तथा पूरे आत्म-विश्वास के साथ अपनी रचना के सुन्दर छदो (बन्द स० ३७/५) और नव रसों (बन्द-स० ३७/१०) का उल्लेख करते हैं।

उपर्युक्त सामग्री के अतिरिक्त अवतार की हेतुकथाओं तथा रावणचरित को भी प्रथम पाण्डुलिपि मे सम्मिलित मानना चाहिए। बालकाण्ड के इस अश (बन्द-स० १२२ १८४) का सूक्ष्म विश्लेषण करने पर प्रतीत होता है कि इसका वास्तविक वक्ता कवि ही है। ध्यान देने की बात यह है कि एक अपवाद (नारदमोह मे याज्ञवल्क्य के कथन) को छोड कर किसी भी कथा के बीच मे कही भी किसी वक्ता का उल्लेख नहीं मिलता है। इसके अतिरिक्त, इन कथाओ में शिव का उल्लेख अन्य पुरुष के रूप में हुआ है। इससे स्पष्ट है कि यह सामग्री उस समय की है, जिस समय कवि के मन मे शिव को रामकथा का वक्ता बनाने का विचार नही

आया था। बालकाण्ड का यह अंश छन्द-योजना की दृष्टि से भी प्रथम पाण्डुलिपि का प्रतीत होता है। नारदमोह, मनु शतरूपा की कथा, प्रतापभानुचरित और रावणचरित—सब मे अर्द्धाली-समूह आठ-आठ के हैं।

बालकाण्ड के इस अंश मे शिव और याज्ञवल्क्य का कई बार वक्ता के रूप मे उल्लेख हुआ है। इससे कोई विशेष कठिनाई उत्पन्न नही होती, क्योंकि विष्णु के अवतरण (बन्द स० १८५/४) और रामजन्म (११६/३) के प्रसग मे भी इस प्रकार के उल्लेख आते हैं (ये अंश सर्वसम्मति से प्रथम पाण्डुलिपि के हैं)। कारण यह है कि द्वितीय पाण्डुलिपि प्रारम्भ करते समय कवि ने भूमिका-स्वरूप याज्ञवल्क्य-भरद्वाज तथा शिव-पार्वती के सवादो की योजना की है। हेतुकथाओ मे सम्बद्धता लाने के लिए उसने उनके प्रारम्भ और अन्त में इन दोनों का निर्देश किया है और जहाँ-तहाँ कुछ चौपाइयो को दोबारा लिखा है।

उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर रामचरितमानस की प्रथम पाण्डुलिपि की सामग्री इस प्रकार है

(१) बालकाण्ड की प्रस्तावना का पूर्वार्द्ध (बन्द स० १-२६),

(२) बालकाण्ड (बन्द स० १२१-१८३)

—हेतुकथाएँ और रावणचरित (बन्द-स० १२१-१८३),

—विष्णु-अवतरण और रामचरित (बन्द-स० १८४-३६१),

(३) सम्पूर्ण अयोध्याकाण्ड और अरण्यकाण्ड का प्रारम्भ (बन्द-स० १-६)।

सम्भव है, अयोध्या से बाहर चले जाने के कारण तुलसी ने कुछ समय के लिए मानस की रचना स्थगित कर दी हो। यह भी सम्भव है कि बालकाण्ड (उत्तरार्द्ध) तथा अयोध्याकाण्ड पहले स्वतन्त्र काव्यों के रूप मे प्रचलित रहे हो, क्योंकि दोनो का अपना-अपना नाम है। बालकाण्ड का नाम सिय-राम विवाह है और अयोध्याकाण्ड का नाम, भरतचरित।

द्वितीय पाण्डुलिपि : शिवरामायण

रामचरितमानस की द्वितीय पाण्डुलिपि की विशेषता यह है कि यह शिव-पार्वती-सवाद के रूप मे प्रस्तुत हुई है। इस पाण्डुलिपि मे तुलसी का रामचरित काव्यग्रन्थ मात्र न रह कर एक धर्मग्रन्थ (शिवरामायण) का रूप धारण कर लेता है। इस पाण्डुलिपि की एक दूसरी विशेषता है नितान्त अनियमित छन्दयोजना। इसकी तीसरी विशेषता यह है कि इसमे कथावस्तु के निर्वाह की अपेक्षा आध्यात्मिकता को अधिक महत्त्व दिया गया है। इस पर अध्यात्मरामायण का प्रभाव बहुत अधिक बढ गया है।

मानस के इस रूप मे अध्यात्मरामायण और पुराणो की तरह प्रधान सवाद की भूमिका के रूप मे एक उपसवाद की योजना आवश्यक थी। अत, तुलसी ने प्रस्तावना के बाद याज्ञवल्क्य भरद्वाज-सवाद और इसके अनन्तर शिव पार्वती-सवाद (बन्द-स० १०४-१२१) रखा है। दोनो सवादो के पूर्वापर-सम्बन्ध के विषय मे डॉ० माता प्रसाद गुप्त और डॉ० वोदवील मे मतभेद है। वास्तव मे, इन सवादो को अलग नही किया जा सकता। इनकी योजना के बाद तुलसी ने हेतुकथाओ और बाल चरित मे यत्र-तत्र इनका (अर्थात, इन दो सवादो का) सकेत किया है और अपनी रचना को सात काण्डो मे विभक्ति कर रामकथा का पूरा वर्णन किया है। रचना के इस स्वरूप मे उन्होने शिव को कथा के प्रधान वक्ता के रूप मे प्रतिष्ठित किया है।

द्वितीय पाण्डुलिपि के विस्तार के सम्बन्ध मे एक बहुमूल्य सकेत शिव-पार्वती-सवाद के प्रारम्भ म मिलता है। पार्वती शिव से यह निवेदन करती है कि वह रघुवरचरित का वर्णन कर उनका मोह दूर करें। पार्वती के इस निवेदन मे अवतार हेतु, राम का जन्म और बालचरित से ले कर अपने लोक जाने तक रामचरित की मुख्य घटनाओ तथा अन्त मे भक्ति और ज्ञान के रहस्य का उल्लेख मिलता है। इस मे बालकाण्ड से ले कर उत्तरकाण्ड के पूर्वार्द्ध (बन्द स० १-५२) तक की समस्त सामग्री का उल्लेख है, लेकिन भुशुण्डि-गरुड-सवाद का कोई निर्देश नही है। इससे यह अनुमान दृढ होता है कि द्वितीय पाण्डुलिपि उत्तरकाण्ड के पूर्वार्द्ध तक ही सीमित थी। शिव पार्वती के मूल सवाद की समाप्ति का असन्दिग्ध निर्देश इस पूर्वार्द्ध के अन्त मे मिलता है

तुम्हरी कृपा कृपायतन ! अब कृतकृत्य न मोह।
जानेउं राम प्रताप प्रभु ! चिदानद सदोह ॥ ५२ ॥

सम्पूर्ण द्वितीय पाण्डुलिपि की सामग्री इस प्रकार है (नवीन सामग्री का सकेत मोटे टाइप मे किया गया है।)

(१) बालकाण्ड की प्रस्तावना वा पूर्वार्द्ध (बन्द स० १ २९),
(२) **बालकाण्ड का याज्ञवल्क्य-भरद्वाज सवाद (बन्द-स० ४८-४७),**
(३) **बालकाण्ड का शिव-पार्वती-सवाद (बन्द स० १०४-१२०),**
(४) बालकाण्ड की बन्द-स० १-१-३६१,
(५) अयोध्याकाण्ड, तथा अरण्यकाण्ड का प्रारम्भ,
(६) **अरण्यकाण्ड (बन्द स० ७-८२), कि किन्धाकाण्ड, सुन्दरकाण्ड, लकाकाण्ड और उत्तरकाण्ड का पूर्वार्द्ध (बन्द-स० १-५२)।**

तृतीय पाण्डुलिपि : रामचरितमानस

रामचरितमानस की द्वितीय पाण्डुलिपि, अर्थात् शिवरामायण मे बहुत से स्थलो पर भुशुण्डि का उल्लेख मिलता है। इसका कारण यह रहा होगा कि तुलसी

के पास भुशुण्डिरामायण की कोई प्रति थी। अरण्यकाण्ड से वक्ता के रूप मे भुशुण्डि के जो उल्लेख मिलते हैं, वे उसी भुशुण्डिरामायण पर आधारित हैं और तुलसी पर उस रामायण के बढते हुए प्रभाव को सूचित करते हैं। सात काण्डो मे विभक्त शिवरामायण यद्यपि स्वय पूर्ण रचना थी, तथापि इस प्रभाव के फलस्वरूप उन्होने अपने अमर काव्य मे भुशुण्डि-गरुड-सवाद को जोड दिया। उत्तरकाण्ड के उत्तरार्द्ध मे भुशुण्डि-गरुड का सवाद प्रधान सवाद के रूप मे आता है और शिव-पार्वती का सवाद उपसवाद के रूप मे। यही कारण है कि शिवरामायण के अन्त मे याज्ञवल्क्य-भरद्वाज के उपसवाद का उल्लेख नही मिलता, क्योकि वहाँ से शिव-पार्वती का उपसवाद आरम्भ होता है।

यह बात ध्यान देने की है कि विभिन्न काण्डो की पुष्पिकाओ और बालकाण्ड के तीन प्रक्षिप्त स्थलो के अतिरिक्त 'रामचरिमानस' नाम का उल्लेख प्रथम दो पाण्डुलिपियो में कही भी नही मिलता। बहुत सम्भव है कि पूर्वोक्त भुशुण्डिरामायण का दूसरा नाम रामचरितमानस हो अथवा उसमें रामचरित का वर्णन मानस के रूपक द्वारा हुआ हो, जिससे प्रेरित हो कर तुलसी ने, भुशुण्डि-गरुड-सवाद का समावेश करते समय, अपनी रचना का नाम रामचरितमानस रखा हो।

रामचरितमानस के रचनाक्रम की एक विशेष समस्या बालकाण्ड का शिव-चरित (छन्द-स० ४८-१०३) है। शिवचरित का वक्ता स्वयं कवि है और इसमे शिव का उल्लेख अन्य पुरुष के रूप मे हुआ है। इसके अर्द्धाली-समूह सर्वत्र आठ-आठ के हैं। स्पष्ट है कि इसकी रचना उस समय हुई होगी, जब शिव को वक्ता के रूप मे ग्रहण करने का विचार कवि के मन मे नही आया होगा। यह बात भी निश्चित है कि उत्तरकाण्ड के उत्तरार्द्ध की रचना के बाद ही तुलसी ने इस शिव-चरित को अपने काव्य मे सम्मिलित किया होगा। उत्तरकाण्ड मे मानस की कथावस्तु का जो वर्णन मिलता है, उसमें (दे० उक्त काण्ड की छन्द-स० ६४-६६) शिवचरित का उल्लेख नही है। इस प्रसग मे बालकाण्ड के याज्ञवल्क्य-भरद्वाज-सवाद मे याज्ञवल्क्य का यह कथन भी ध्यान देने योग्य है .

कहौं सो मति अनुहारि अब उमा-सभु सवाद।

लेकिन, ठीक इसके बाद शिव-पार्वती सवाद के स्थान पर शिवचरित आरम्भ होता है, जिसमें वक्ता के रूप में स्वय कवि उपस्थित होता है। ५६ छन्दो तक विस्तृत शिवचरित मे वक्ता शिव नही है। इसका एकमात्र कारण यही हो सकता है कि शिवचरित बाद मे बालकाण्ड मे जोडा गया है।

उपर्युक्त समस्या का समाधान इस प्रकार किया जा सकता है। शिवचरित सम्भवत एक स्वतन्त्र रचना है, जिसका अनुमान इसकी फलस्तुति से भी हो

जाता है (छन्द-सं० १०३)। तुलसी ने इसकी रचना रामचरितमानस की प्रथम पाण्डुलिपि के लेखन के समय की होगी और प्रस्तावना का उत्तरार्द्ध लिखने के पूर्व अपने महाकाव्य में इसका समावेश कर लिया होगा।

उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर मानस की तृतीय पाण्डुलिपि की नवीन सामग्री का रचनाक्रम इस प्रकार है :

(१) उत्तरकाण्ड का उत्तरार्द्ध (छन्द सं० ५२ १३०),
(२) बालकाण्ड में सम्मिलित शिवचरित (छन्द सं० ४८-१०३),
(३) प्रस्तावना का उत्तरार्द्ध (बालकाण्ड की छन्द-सं० ३०-४३), तथा रामचरितमानस विषयक गौण प्रक्षेप।

४. मानस का उद्देश्य

यह प्रश्न बार बार उठाया गया है कि मानस की रचना के पीछे तुलसी का उद्देश्य क्या रहा है। हमने ऊपर जो कुछ कहा है, उससे यह संकेत मिलता है कि तुलसी के मानस के विकास के साथ रामचरितमानस का भी विकास होता रहा और अन्तिम रूप प्राप्त करने तक इसमें बहुत सी नयी बातों का समावेश हो गया। अन्तिम रूप ग्रहण करने तक यह रचना राम की कथा मात्र नहीं रह गयी, वरन् धर्म के प्राणवन्त तत्त्वों का निरूपण करने वाली पुस्तक बन गयी। धर्म के प्राणवन्त तत्त्वों के निरूपण द्वारा लोकजीवन में उनकी प्रतिष्ठा करना ही इसका प्रधान उद्देश्य है।

तुलसीदास के युग में बहुत से सम्प्रदाय प्रचलित थे, जिनके सिद्धान्तों में मेल नहीं था और जो सदैव एक दूसरे से झगड़ा करते थे

बहुमत मुनि बहु ग्रंथ पुराननि, जहाँ-तहाँ झगरो सो।
(विनयपत्रिका, पद १७३)

वह यह देखते थे कि जनता में सन्यास, तपस्या और रहस्यमय साधनाओं के प्रति श्रद्धा बढ़ती जा रही है। उत्तरकाण्ड (मानस) के कलियुग वर्णन की ये पंक्तियाँ इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं

निराधार जे श्रुतिपथ त्यागी। कलियुग सोइ ग्यानी सो बिरागी॥
जाकें नख अरु जटा बिसाला। सोइ तापस प्रसिद्ध कलिकाला॥
असुभ बेष भूषन धरें भच्छाभच्छ जे खाहिं।
तेइ जोगी तेइ सिद्ध नर पूज्य ते कलिजुग माहिं॥ ९८॥

इसके सिवा, कर्मकाण्ड का भी बहुत महत्त्व था, जिसके लिए धन की आवश्यकता थी और जो स्वभावत. साधारण जनता की पहुँच से परे था

दम दुर्गम, दान दया मखकर्म सुधर्म अधीन सबै धन को।

(विनयपत्रिका, प० ८७)

तुलसी की धारणा थी कि भगवान् के पास पहुँचने के लिए न तो सन्यास, जटिल कर्मकाण्ड, तपस्या या रहस्यवादी साधना की आवश्यकता है और न दर्शन की गहरी जानकारी की। इसके लिए भक्ति ही काफी है। भक्तिमार्ग राजमार्ग (राजडगर) है, क्योकि यह सुगम है और इस पर चलने का अधिकार मनुष्य-मात्र को है। इसकी विशेषता यह है कि जो साहब वेदो के लिए भी अगम्य है, वह सच्ची चाह द्वारा सब को जल और भोजन की तरह सुलभ हो जाता है।[1] मानस मे धर्म के सबसे बडे तत्त्व के रूप मे इसी भक्ति की प्रतिष्ठा हुई है। इसका सर्वस्व रामचरित और रामभक्ति है। तुलसी के हृदय से जो कविता-रूपी सरिता फूट निकली है, वह राम के विमल यश से भरी हुई (राम-बिमल-जस भरिता) है। इस सरिता के दो किनारे है सरजू नाम सुमगल-मूला। लोक-बेद मत मजुल कूला॥

(बालकाण्ड, ३६/१२)

इसका अर्थ यह होता है कि उन्होने अपने समय मे प्रचलित विश्वासो के अनुसार और तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था के ढाँचे मे अपना कथानक प्रस्तुत किया है। इसी से 'लोक-वेद-मत उनकी काव्यरूपी सरिता के 'विमल जस-जल' मे प्रतिबिम्बित हैं, किन्तु उनका मूल सन्देश भगवद्भक्ति से सम्बन्ध रखता है। उनकी रचना मे शकराचार्य के अद्वैतवाद और रामानुज के विशिष्टाद्वैतवाद, दोनो का प्रतिबिम्ब विद्यमान है, किन्तु इन मे किसी का प्रतिपादन तुलसी का उद्देश्य नही है। वह दार्शनिक विवादो मे उलझना नही चाहते। फिर भी, अधिक सम्भव है कि उनका झुकाव विशिष्टाद्वैत की ओर हो। उनका मायावाद दार्शनिक न होकर नैतिक है और वह भक्ति को मायाविनाशिनी मानते हैं (मानस-कौमुदी, स० ७६, ८७ और १४०)।

तुलसी की इस भक्ति के आलम्बन राम हैं। उन्होने पूर्ववर्ती रामकाव्य की परम्परा के अनुसार राम को तीन रूपो मे चित्रित किया है। वे रूप है सत्य-सन्ध, वीर और एकपत्नीव्रत क्षत्रिय, विष्णु के अवतार और परब्रह्म के अवतार। वह मानस मे बहुत-से स्थलो पर राम को विष्णु का अवतार मानते हैं, फिर भी वह

---

१ निगम अगम साहेब सुगम राम साँचिली चाह।
अम्बु असन अवलोकियत सुलभ सबै जग माँह॥ (दोहावली, ८०)

राम को मुख्यत सच्चिदानन्द और परब्रह्म के रूप मे ही देखते हैं तथा उन्हे स्पष्ट शब्दो मे विष्णु से भिन्न घोषित करते हैं। मनु और शतरूपा के तप के प्रसग की पक्तियाँ हैं

उर अभिलाष निरतर होई। देखिअ नयन परम प्रभु सोई ॥
सभु बिरचि विष्णु भगवाना। उपजहिं जासु अस तें नाना ॥

(बालकाण्ड, १४६)

राम का विवाह देखने के लिए शिव और ब्रह्मा के साथ विष्णु (हरि) भी उपस्थित होते हैं, वाल्मीकि उन्हे 'विधि हरि सभु नचावनहारे' कहते हैं (अयोध्या०, १२७) तथा भुशुण्डि उनको करोडो ब्रह्मा, हरि और शिव से बडा मानते हैं (उत्तर०, ९२)।

यद्यपि तुलसी अपने समय के पौराणिक विश्वासो के अनुसार राम को विष्णु के अवतार के रूप मे भी प्रस्तुत करते हैं, तथापि मानस का कोई भी पाठक यह अनुभव कर सकता है कि विष्णु उनके आराध्य नही हैं। उनके इष्टदेव राम हैं, जो निर्गुण भी हैं और सगुण भी। निर्गुण के रूप मे वह परब्रह्म हैं, जो भक्तो के हित के लिए सगुण रूप धारण करते हैं। सम्पूर्ण रामचरितमानस मे उनके स्वरूप की विशेषता का वक्ता और श्रोता के विभिन्न युग्मो के माध्यम से निरूपण हुआ है और बारम्बार इस सम्बन्ध मे की गयी आशकाओ एव आपत्तियो का निवारण किया गया है।[१]

भक्ति के कई भेद माने गये हैं। तुलसी की भक्ति दास्यभक्ति है। भुशुण्डि के द्वारा वह यह कहलाते हैं

सेवक सेव्य भाव बिनु भव न तरिअ उरगारि।
भजहु राम पद पकज अस सिद्धात बिचारि ॥ (उत्तर०, ११९क)

१. तुलसी निर्गुण की अपेक्षा सगुण को कहीं अधिक दुर्बोध मानते हैं (मानस, उत्तर० ७३) और शिव से यह कहलाते हैं कि राम का सगुण चरित अतर्क्य है (मानस, बाल०, १२१/२ ३ और लका०, ७३/१-२)। सगुण की इस दुर्बोधता के कारण विभिन्न पात्रों, जैसे भरद्वाज (मानस कौमुदी, स० ७) सती (वही, स० ८), पार्वती (वही, स० ११), गरुड (वही, स० १३९) और भुशुण्डि (वही, स० १४१) के मोह का वर्णन हुआ है।

तुलसी ने रामकथा के प्रतीकात्मक अर्थ की ओर भी सकेत किया है। देखिये धमरथ का प्रसग (मानस-कौमुदी स० १२३) और मानस की यह उक्ति—ते जानेहु निसिचर सब (सम) प्रानी (मानस-कौमुदी, स० १४)।

इस भक्ति मे प्रधान वस्तु ऐश्वर्य सम्पन्न तथा भक्तवत्सल उपास्य के प्रति उपासक के आत्मसमर्पण और दैन्य का भाव है। भगवान् का विधान स्वीकार करना और उसकी आज्ञा का पालन इस आत्मसमर्पण का अनिवार्य परिणाम है। इसके अतिरिक्त इसम भगवान की पवित्रता के सामने अपनी पापमग्नता का गहरा बोध सम्मिलित है। अत, उनके भक्तिभाव के प्रधान अग इस प्रकार हैं (क) राम के ऐश्वर्य और गुणो का गान, तथा (ख) भक्त की प्रपत्ति और दैन्यनिवेदन। तुलसी राम के परब्रह्मत्व के साथ उनकी भक्तवत्सलता और शील-सकोच का उल्लेख विशेष रूप म करते हैं। उनकी भक्ति के आदर्श भरत हैं, जो चित्रकूट-सभा मे सब निर्णय राम पर छोडते हुए यह कहते हैं—देव ! आज्ञा का पालन करने के समान स्वामी की और कोई सेवा नही हो सकती

अग्या सम न सुसाहिब सेवा। (अयोध्या०, ३०१)

पहुँचे हुए साधक भरत की तरह ही यह प्रतिक्रिया प्रकट करते हैं—हे प्रभु, तेरी इच्छा पूरी हो। भरत के उदाहरण द्वारा तुलसी यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि भक्ति भावुकता-मात्र नही है, तथा मनुष्य का कल्याण भगवान् का विधान स्वीकार करने और उसकी इच्छा पूरी करने मे है :

जीव न लह सुख हरि प्रतिकूला। (उत्तर०, १२२)

इस दास्यभक्ति के लिए जिस विनम्रता और दीनता की आवश्यकता है, वह न केवल भरत मे, बल्कि मानस के प्राय सभी पात्रो में विद्यमान है।

कहा जा चुका है कि तुलसी भक्ति की तुलना मे ज्ञानमार्ग, कर्मकाण्ड और सन्यास—तीनो को अपूर्ण मानते हैं तथा इसे सब के लिए सुलभ घोषित करते हैं।[1] वह वर्णाश्रम-धर्म का प्रतिपादन करते हैं, किन्तु वह मनुष्यमात्र को भक्ति का अधिकारी मानते हैं। शबरी से राम यह कहते हैं

कह रघुपति, सुनु भामिनि ! बाता। मानउँ एक भगति कर नाता ॥

(अरण्य०, ३५)

लेकिन, वह भक्तिमार्ग को कोई सरल वस्तु नही मानते हैं। उनका आदर्श भक्त वह नही है, जो भावुकता के आवेश मे आ कर सामाजिक कर्त्तव्यो को तिलाजलि दे देता है, और अपने को नैतिकता के बन्धनो से परे मान बैठता है। उनके भक्ति-मार्ग की एक प्रधान विशेषता भक्ति और नैतिकता का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है।

---

१. सुलभ-सुखद यह मारग भाई ! भगति मोरि पुरान-श्रुति गाई ॥

(उत्तर०, ४५)

उनकी दृढ धारणा है कि सदाचरण के अभाव मे भक्ति पाखण्ड मात्र है। अत, वह मानस मे नैतिकता और लोकसग्रह पर बल देते हैं। वह भक्ति के लिए काम, क्रोध आदि मनोविकारो का त्याग आवश्यक मानते हैं तथा ऐसे पात्रो का चित्रण करते हैं, जो नैतिक आदर्शों के ज्वलन्त उदाहरण हैं। यही कारण है कि यह रचना आज भी करोडो लोगो को नैतिक बल और प्रेरणा प्रदान करती है। यह नही कहा जा सकता कि मानस मे यह विशेषता अनजाने ही आ गयी है। स्वय तुलसी अपने काव्य की इस सम्भावना से अपरिचित नहीं थे। उनकी सीता के विषय मे अनसूया कहती है

> सुनु सीता ! तव नाम सुमिरि नारि पतिब्रत करहिं।
> तोहि प्रानप्रिय राम कहिउँ कथा ससार हित ॥ (अरण्य०, ५ ख)

यह ससार-हित या लोककल्याण मानस के उद्देश्यो मे है। तुलसी द्वारा प्रतिपादित भक्ति की एक महत्त्वपूर्ण कसौटी परहित है। वह जानते हैं कि सासारिक कर्त्तव्यों के प्रति उदासीनता और सन्यास ग्रहण कर, एकान्त मे पद्मासन लगा कर, परमात्मा का ध्यान लगाना बहुधा साधक का आदर्श माना गया है। लेकिन, वह यह चाहते हैं कि परलोक की साधना करने वाले व्यक्ति इहलोक के प्रति उदासीन न रहें। यही कारण है कि उन्होंने परहित के महत्त्व और आवश्यकता पर बारम्बार बल दिया है। इनकी कल्पना का आदर्श मनुष्य (सन्त या भक्त) वह है, जिसके मन मे दूसरो के हित की भावना है और जो दूसरो के कल्याण के लिए कष्ट झेलता है, क्योंकि परोपकार परमधर्म है—'श्रुति कह, परम धरम उपकारा' (बाल० ८४)।[1] उसके इस भक्त से किस युग, समाज और धर्म का विरोध हो सकता है, जो मानवमात्र के प्रति सम्मानभाव रखता है

> उमा ! जे राम - चरन रत बिगत काम-मद क्रोध।
> निज प्रभुमय देखहिं जगत केहि सन करहिं विरोध ॥ (उत्तर०, ११२ ख)

१ रामचरितमानस मे परहित का उल्लेख बारम्बार हुआ है, जैसे 'गावहिं सुनहिं सदा मम लीला। हेतु रहित परहित-रत सीला ॥' (अरण्य०, ४६), 'सगुन उपासक परहित-निरत नीति दृढ नेम' (सुन्दर०, ४८), 'सब उदार, सब पर उपकारी।' (उत्तर०, २२), 'परहित सरिस धर्म नहिं भाई।' (उत्तर०, ४१) आदि।

यह तुलसी की भक्ति की मौलिकता का एक प्रमाण है। जिस अध्यात्म-रामायण का उन पर इतना गहरा प्रभाव पडा है, उसमें भक्ति के साधन के रूप मे परहित का कहीं उल्लेख नहीं मिलता, जब कि वह लोकहित या लोकमगल को अपने भक्तिमार्ग का अनिवार्य अग मानते हैं।

इसी अभेद-दृष्टि और सहिष्णुता के कारण स्वय तुलसी अपने युग के वैष्णव और शैव मतो मे समन्वय स्थापित करने मे सफल होते हैं। उनके मानस के राम के प्रति शिव असीम भक्ति प्रकट करते हैं और राम शिव की पूजा करते हैं।

रामचरितमानस मे राम के चरित और राम की भक्ति को जिस प्रकार लक्ष्य के रूप मे स्वीकार किया गया है, उसका एक ही प्रयोजन है। वह प्रयोजन है—पढते ही प्रभावित करने वाली सरल शक्तिशाली कविता के माध्यम से जीवन के ऐसे आदर्श चित्रो की सृष्टि, जिनसे प्रेरणा ग्रहण कर मनुष्य और भी श्रेष्ठ मनुष्य बन सके। यह बात दूसरी है कि आज कई कारणो से मानस की आलोचना होने लगी है, लेकिन इसने नैतिकता और परोपकार से सवलित जिस भागवत जीवन की प्रस्तावना की है, उसका मूल्य आज भी कम नही हुआ है।

५. मानस का काव्यगत स्वरूप :

मानस म मुख्य कथानक के सिवा और भी बहुत-से प्रसग हैं, जिनमे कई छोटी-बडी कथाओ के अतिरिक्त राम के परब्रह्मत्व, रामकथा और रामनाम की महिमा, ज्ञान और भक्ति आदि विषयो से सम्बद्ध स्थल भी सम्मिलित हैं। मुख्य कथानक के साथ ये भी प्रसग मानस की वस्तु के अग है, क्योकि कवि का उद्देश्य अपने उपास्य की कथा कहना मात्र नही है, वरन् कथा के माध्यम से उसके परब्रह्मत्व का प्रतिपादन करना है। मानसकार ने अपनी रचना मे ही यह बात स्पष्ट कर दी है

एहि महँ आदि-मध्य-अवसाना। प्रभु प्रतिपाद्य राम भगवाना॥
(उत्तरकाण्ड, ६१। ६)

इस उद्देश्य के अनुरूप आकार ग्रहण करने पर मानस का स्वरूप कुछ इस तरह का हो गया है कि इसको पहले से चली आती हुई काव्यरूप-सम्बन्धी किसी भी परिभाषा मे पूरी तरह बाँधना कठिन हो जाता है। वस्तु के सर्गबद्ध लेखन के कारण यह प्रबन्धकाव्य है और उसकी विविधता और विस्तार के कारण यह निश्चय ही महाकाव्य-पद्धति की रचना है। किन्तु इसके स्वरूप या शिल्प के निर्णय की सारी कठिनाई यही से आरम्भ होती है। भारतीय काव्यसमीक्षा की पुस्तको मे उपलब्ध महाकाव्य की परिभाषा या धारणा से इसकी पूरी अनुरूपता नही है। इसमे सर्गों की सख्या आठ या उससे अधिक न होकर सात है और ये सर्ग भी विस्तार की दृष्टि से एक-जैसे नही हैं। इसमे सर्ग के अन्त मे छन्द के परिवर्त्तन और उस छन्द मे आगामी सर्ग की रचना के नियम का पालन नही हुआ है। सबसे बड़ी बात यह कि इसमें श्रृंगार, वीर और शान्त मे से किसी को भी अगी या

प्रधान रस के रूप मे स्वीकार नही किया गया है। इसमे भक्ति की प्रतिष्ठा रस के रूप मे हुई है, जिसे परम्परागत समीक्षा ने कभी रस का महत्त्व नही दिया है। लेकिन, इसमे महाकाव्य के ऐसे बहुत-से लक्षणो का निर्वाह हुआ है, जो बुनियादी महत्त्व रखते हैं। इसका वस्तु-फलक बहुत विस्तृत है जिसमे विभिन्न प्राकृतिक दृश्यो और वैयक्तिक, पारिवारिक एव सामाजिक जीवन के अनेकानेक प्रसंगो की ऐसी योजना हुई है, जिसमे जातीय-सास्कृतिक जीवन का सश्लिष्ट और पूर्ण चित्र निर्मित होता है। इसका कथानक ऐतिहासिक या लोकप्रसिद्ध है और जहाँ उसका आरम्भ होता है, वहाँ से ले कर उसके समापन तक प्रासगिक कथाओ का उसके साथ अपेक्षित सामजस्य मिलता है। इसके नायक राम एक ओर सद्वश मे उत्पन्न *धीरोदात्त क्षत्रिय हैं, तो दूसरी ओर देवता ही नही, देवाधिदेव ब्रह्म हैं।* इसमे जीवन की इतनी भिन्न और विविध परिस्थितियो का मार्मिक चित्रण हुआ है कि इसमे सभी रसो का समावेश हो गया है। ये सभी रस एक प्रधान रस, यानी भक्ति रस के अग के रूप मे आये हैं और भक्ति को परम्परागत काव्यशास्त्री भले ही रस नही मानते हो मानसकार ने उसकी ऐसी शक्तिशाली योजना की है कि उसका रसत्व अपने-आप प्रमाणित हो जाता है। महाकाव्य के लिए जैसी रसानुरूप और उदात्त गम्भीर शैली आवश्यक होती है, इसकी शैली उसी प्रकार की है।

फिर भी, यदि केवल स्वरूप की दृष्टि से विचार किया जाय, तो यह रघुवश, शिशुपालवध, हरविजय आदि प्रबन्धकाव्यो या महाकाव्यो की जाति की रचना न होकर रामायण, महाभारत तथा पुराणग्रन्थो के रूप-विधान से अनुरूपता रखने वाली रचना है। रघुवश, शिशुपालवध आदि अलकृत शैली के प्रबन्धकाव्यो मे प्रधान कथानक के विस्तार को ही महत्त्व दिया गया है और उसके आरम्भ होने से पहले और उसके समापन के बाद अन्य कथाओ का विन्यास नही हुआ है। प्रधान कथानक के पहले और बाद मे पूर्ववर्ती और परवर्ती प्रसगो, हेतु-कथाओ और तत्त्व-निरूपक एव नीतिप्रधान अशो के समावेश की प्रवृत्ति सामान्य रूप मे महाभारत और पुराणो की विशेषता है। यह विशेषत: मानस मे भी मिलती है। मानस मे पूरी वस्तु का निबन्धन सवाद-शैली मे हुआ है, जो पुराणशैली के अनुरूप है। अतएव, आश्चर्य नहीं, यदि केवल रूपविधान के आधार पर इसकी परीक्षा करने वाले आलोचको ने इसे पुराणकाव्य कहा है।

इस सम्बन्ध मे किसी निश्चित निष्कर्ष की स्थापना मे पहले प्रबन्धकाव्य के एक ऐसे भेद पर ध्यान देने की आवश्यकता है, जिसका सकेत स्वय रामचरितमानस के 'चरित' शब्द से मिलता है। मानस की रचना के पहले से ही लोकभाषाओं मे चरितकाव्य की परम्परा विद्यमान थी। अपभ्रंश के 'णायकुमारचरिउ'

और 'सुदसणचरिउ' और हिन्दी के पृथ्वीराजरासो, चन्दायन और पद्मावत इसके उदाहरण के रूप मे प्रस्तुत किये जा सकते हैं। चरितकाव्यो की रचना आश्रयदाता राजाओ तथा सामन्तो की प्रशसा मे की जाती थी। इनमे नायक के चरित का बखान किया जाता था तथा घटनाओ की योजना इस प्रकार की जाती थी कि उनके द्वारा उसकी वीरता, शृ गारिकता, ऐश्वर्य आदि का अतिरजित वर्णन हो जाता था। यद्यपि पद्मावत किसी आश्रयदाता राजा की प्रशसा मे नही लिखा गया, तथापि स्वरूप की दृष्टि से यह चरितकाव्य है। इसमे नायक के चरित या कार्यकलाप का प्रभावशाली वर्णन मिलता है। मानस भी राम का चरित है—यह भी राम के कार्यकलाप और यश का गान है।

लेकिन मानस मे जिस तरह महाकाव्य के लक्षणो का पूरा पालन नही हुआ है, उसी तरह चरितकाव्य और पुराणकाव्य के लक्षणो का भी पूरी तरह पालन नही किया गया है। इसके कवि के सामने चरितकाव्य के जो उदाहरण थे, उनका विषय 'प्राकृत जन' था। उनमे प्राकृत जन के युद्धो और प्रेमलीलाओ की चर्चा रहती थी। तुलसी के 'प्राकृत जन-गुन-गाना' का सकेत इसी ओर है तथा इन काव्यो की बढती हुई शृ गारप्रियता का सकेत 'विषयकथा रस नाना' मे। स्पष्ट है कि तुलसी मानस के रूप मे एक ऐसे चरितकाव्य की रचना करना चाहते थे, जिसका नायक प्राकृत जन न होकर सगुण या मानव रूप धारण करने वाला ब्रह्म है और जिसका लक्ष्य सासारिक विषय वासनाओ को उत्तेजित करने के बदले उनके परिशमन द्वारा रामभक्ति की भावना को दृढ करता है। यही वह 'रसविशेष' है, जिसका आस्वाद रामचरित के श्रोता को होता है। इस अर्थ मे यह चरितकाव्य के लक्षणों का सशोधन करने वाला काव्य है—उसकी प्रचलित सकल्पना के रूपान्तरण का प्रयत्न है। पुराणकाव्य से इसका पार्थक्य मुख्य कथानक के ऐसे विन्यास में दिखलायी देता है, जो अलकृत महाकाव्य के अनुशासन मे बँधा हुआ है।

यह प्रश्न स्वाभाविक है कि यदि यह कृति अलकृत महाकाव्य, पुराणकाव्य और चरितकाव्य—तीनो से कही समानता रखती है और कहीं भिन्नता और इस तरह एक ऐसे आकार मे रच जाती है, जिसका कोई दूसरा उदाहरण नही मिलता, तो इसे किस काव्यरूप के अन्तर्गत रखा जा सकता है। इसका समाधान यह है कि अपनी रचनागत विलक्षणता के बावजूद यह मूल्यपरक दृष्टि से महाकाव्य है। यदि कुछ लोगो को इसे महाकाव्य मानने मे कठिनाई का अनुभव होता है, तो इसका कारण यह है कि वे केवल शास्त्रीय लक्षणो के आधार पर इसकी परीक्षा करते हैं। यह आवश्यक नही कि जो रचना महाकाव्य के शास्त्रीय लक्षणो का पूरी तरह पालन करती हो, वह महाकाव्य ही जाय, क्योकि महाकाव्य वस्तुतः महान्

काव्य है—ऐसा काव्य, जिसकी विषयवस्तु उदात्त और पूरे जातीय जीवन की सस्कृति का निरूपण करने वाली हो, जिसकी भाषा उस विषयवस्तु का पूर्णत समर्थ सम्प्रेषण करती हो तथा जो कवित्वपूर्ण होने के साथ ही विभिन्न अभिरुचियो और स्तरो के लोगो को छूती हो। यदि यह सच नही होता तो, महाकाव्य रचना के नियमो का जड रूप म पालन करने वाली हर रचना महाकाव्य हो जाती। किन्तु शताब्दियो का अनुभव बतलाता है कि सही अर्थो म महाकाव्य कही जाने वाली रचना कभी-कभी ही लिखी जाती है। वस्तुत, किस प्रकार की रचना इस विशेषण के योग्य कही जा सकती है, इस पर अपने देश क प्राचीन काव्यशास्त्रियो ने बडे मूल्यवान विचार प्रस्तुत किये हैं। उन्होंने इस सम्बन्ध मे जो कुछ कहा है, उसका अभिप्राय यह होता है कि महाकाव्य कही जाने वाली रचना की वस्तु, चरित्रविधान, अभिव्यजना शैली और प्रयोजन—सभी अगो म महत् तत्त्व का समावेश होना चाहिए उन्होंने यह भी कहा है कि महाकाव्य को सद्वस्तु का आश्रय ग्रहण करने वाली (सदाश्रय) कृति होना चाहिए।[1] इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि वह महत् होने के साथ सत भी हो—वह केवल काव्यात्मक प्रभाव की दृष्टि से ही असामान्य न हो, वरन अपनी परिणति म पाठक या श्रोता के मानस मे जीवन के उच्च मूल्यो के प्रति निष्ठा उत्पन्न करता हो। कहने की आवश्यकता नहीं कि इस कसौटी पर मध्यकालीन हिन्दी-साहित्य मे रामचरित मानस से बडे किसी अन्य प्रबन्ध की खोज असम्भव है।

यह कहा जा सकता है कि जो प्रबन्धकाव्य सच मे महाकाव्य होता है, वह रूप विधान की दृष्टि से पहले के सभी महाकाव्यो से प्राय अलग हो जाता है। वह रचना-सम्बन्धी किन्ही नियमो के पालन के लिए नही लिखा जाता, वरन विषयवस्तु को इच्छित रूप देने की प्रक्रिया म लिखा जाता है। महाकाव्य के पहले से चले आते हुए लक्षणो मे जो उसके लिए ग्राह्य होते हैं, उनका वह ग्रहण करता है और शेष का त्याग कर स्वय ऐसे लक्षणो की स्थापना करता है, जो इस विधा की पहचान बन जाते हैं। यही कारण है कि उसकी परीक्षा के लिए नयी कसौटियो की आवश्यकता होती है। लेकिन, दूसरी ओर उसके द्वारा महाकाव्य की असली पहचान की सम्पुष्टि भी होती है। वह उस बात का साक्ष्य बन जाता है कि महाकाव्य ऐसा काव्य है जिसका आकार ही विस्तृत नही होता, बल्कि जिसका कथ्य भी असाधारण और उदात्त होता है तथा जो अपनी परिणति मे एक व्यापक अर्थयोजना या जीवनदृष्टि मे बदल जाता है।

रामचरितमानस भी अपने रूपविधान मे इतना विशिष्ट है कि यह केवल

---

१ भामह काव्यालकार, १/१९।

परम्परागत महाकाव्य लक्षणो के आधार पर देखने वालो को असमजस मे डालता रहा है, किन्तु यह महत् और सत का अपने ढग का अकेला सामजस्य है। इसका रूपविधान इसकी विषयवस्तु के प्रति पूरा न्याय करता है—वह कथ्य और विचार-सम्बन्धी सूत्रो को इस तरह जोडता है कि पूरी रचना एक इकाई बन जाती है। इसके मुख्य कथानक के पहले और बाद के प्रसग राम के ब्रह्मत्व, भक्ति की श्रेष्ठता और राम के रूप मे ब्रह्म के अवतार के कारणो का निरूपण करते हैं तथा इसका मुख्य कथानक इस महान् घटना, यानी अवतार की मनुष्यता और अतिलौकिकता का एकत्र प्रकाशन बन जाता है। घटना का मानवीय पक्ष इसे ग्राह्य बनाता है, लेकिन इसका लोकोत्तर पक्ष मानवीय बुद्धि की पकड मे नही आता। इसकी अतिलौकिकता को बुद्धि के साधनो को समर्पित कर, विश्वास और भक्ति द्वारा ही ग्रहण किया जा सकता है। इसलिए, मानसकार यह कहता है

> जे श्रद्धा सबल रहित, नहिं सतन कर साथ।
> तिन्ह कहुँ मानस अगम अति जिन्हहि न प्रिय रघुनाथ॥

(बालकाण्ड, ३८)

मानस की यह अभिवृत्ति—भक्ति—ही इसको भावात्मक एकसूत्रता प्रदान करती है। इसके सभी विचार और मूल्य कही प्रत्यक्ष, तो कही अप्रत्यक्ष रूप मे भक्ति से जुड जाते हैं। आरम्भ से अन्त तक इसका प्रभाव इस रूप मे पडता है कि इससे मनुष्य को भक्ति और ऊँचे जीवनमूल्यो की प्रेरणा मिलती है।

मानस के उद्देश्य के अनुरूप प्रभाव की सृष्टि करने के लिए वस्तु का प्रस्तुतीकरण किस रूप मे किया गया है, इस बात को भी स्पष्ट रूप मे समझने की आवश्यकता है।

वस्तु के प्रस्तुतीकरण की दृष्टि से मानस मे साधारणत तीन प्रकार की स्थितियाँ दिखलायी देती हैं। कभी तो कवि के सामने केवल कथा होती है जिसके घटनाक्रम के निर्वाह और मानवीय सवेगो के प्रकाशन की चिन्ता उसमे सबसे ऊपर दिखलायी देती है। कभी उसके सामने वे अवसर रहते हैं, जिनका उपयोग विचारो के लम्बे और क्रमबद्ध निरूपण के लिए होता है। यह स्थिति अपेक्षाकृत स्वतन्त्र या स्वयपूर्ण दीखने वाले विचारात्मक स्थलो की है। लेकिन दोनो को बारम्बार जोडती रहने वाली एक तीसरी स्थिति भी है, जो राम के प्रति अन्य पात्रो और स्वय कवि की अभिवृत्ति तथा राम के परब्रह्मत्व और उनकी भक्ति की महिमा को प्रकट करने वाले विशेषणो और टिप्पणियो के रूप मे मिलती है। रचनात्मक स्तर पर यह तीसरी स्थिति, अन्य दो स्थितियो की तुलना मे, कही अधिक जटिल है। यहाँ कवि

की शक्ति और सीमाओं, दोनों का उदघाटन हो जाता है। यहाँ उसकी शक्ति अपनी प्रधान संवेदना के निर्वाह और वस्तु के प्रस्तुतीकरण की विभिन्न स्थितियों के संयोजन के रूप में दीखती है, और उसकी सीमाएँ राम के जीवन-प्रसंगों की मानवीयता को कपटचरित प्रमाणित करने के रूप में। लेकिन, ये सभी स्थितियाँ मानस के उद्देश्य को इस प्रकार पूरा करती हैं कि रचना का प्रभाव केन्द्रित और शक्तिशाली रूप में पड़ता है।

हमने भूमिका के आरम्भिक भाग में ही इस बात का उल्लेख किया है कि रामचरितमानस भगवद्भक्ति, रामचरित और कवित्व की नयी त्रिवेणी है (दे० राम-कथा की परम्परा का अन्तिम अनुच्छेद)। वस्तुतः मानस के महाकाव्यत्व का कारण इसका कवित्व है। यह कवित्व कथानक के मार्मिक स्थलों की भावात्मकता और हर पात्र के मनोविज्ञान के गहरे और तीखे प्रकाशन में प्रकट होता है। इसके पात्रों और परिस्थितियों की विविधता मनोभावों और रसों की विविधता का रूप ग्रहण करती है। इस विविधता को सम्प्रेषित करने वाली भाषा के द्वन्द्वात्मक स्वरूप पर अब तक बहुत कम विचार हुआ है। इसकी भाषा बार बार अलंकार, ध्वनि, वक्रोक्ति आदि काव्यशास्त्रीय युक्तियों अथवा दार्शनिक विचारों के प्रतिपादन की भाषा तक पहुँचती है और बार बार बातचीत की भाषा के स्तर पर लौट आती है। इससे यही प्रतीत होता है कि इसका रचनाकार कवित्व के शास्त्रीय प्रतिमानों के प्रति जितना सचेत है, उतना ही अपने युग की साधारण जनता से अबाधित संवाद के लिए सजग। इसलिए उसकी भाषा काव्य के जानकार लोगों को भी छूती है और आम आदमी को भी। लेकिन इसके प्रयोजन से स्पष्ट है कि उसकी चिन्ता काव्य विशेषज्ञों से जुड़ने की उतनी नहीं, जितनी पूरे जनसमुदाय से—पुर, ग्राम और नगर में निवास करने वाले सभी लोगों से जुड़ने की है। समग्र रचना को संवादों के रूप में प्रस्तुत कर वह अपनी भाषा को एक प्रकार की अनौपचारिकता या प्रत्यक्षता प्रदान करना चाहता है। इस सम्बन्ध में एक और बात भी विचार की अपेक्षा रखती है। वाल्मीकिरामायण, महाभारत, पुराणग्रन्थ और अध्यात्मरामायण आदि धार्मिक काव्य, जिनमें वस्तु का प्रस्तुतीकरण संवादों के माध्यम से हुआ है, कथा-वाचन की परम्परा के ग्रन्थ रहे हैं। मानस पर विचार करते समय यह स्मरण रखना चाहिए कि यह पुस्तक धार्मिक कथाओं के वाचन की परम्परा में लिखी गयी है। इसमें बार-बार कथा, उसके रस और महिमा का उल्लेख हुआ है। इसकी भाषा और शैली, दोनों पर तुलसी के कथावाचक का प्रभाव पड़ा है। कथावाचन में रचना का अर्थ लेखन नहीं, वरन् श्रोतावर्ग को सामने रख कर चलने वाला वाचन या गान भी है। इससे रचना श्रोता के प्रति सम्बोधन का रूप ले लेती है और भाषा में

सजीवता तथा सहजता आ जाती है। मानस की भाषा में बार-बार व्यवहार या बातचीत की भाषा के स्तर पर लौट आने की जो प्रवृत्ति मिलती है, उसका कारण यह भी है। इससे इसको भाषा किताबीपन से मुक्त होकर जनभाषा के स्रोत में जुड़ती है और प्रत्यक्ष सम्प्रेषण की शक्ति अर्जित करती है। मानस के कवित्व या महाकाव्यत्व के स्थायी आकर्षण का कारण इसकी भाषा का यह स्वभाव भी है।

६. मानस की प्रासंगिकता :

रामचरितमानस अपने कवित्व और धार्मिक-नैतिक चेतना के कारण लगभग चार सदियों से लोगों को रस और प्रेरणा देता रहा है। इसने लोकभाषा के माध्यम से जीवन के उन आदर्शों और मूल्यों को जनसाधारण तक पहुँचाया है, जो प्राचीन होते हुए भी उपयोगी रहे हैं और कठिन-से-कठिन परिस्थितियों में सान्त्वना, आशा और निर्देश देते हैं। कई पीढ़ियों से यह काव्य मनोरंजन का ही साधन नहीं रहा है, वरन् विश्व, समाज और परिवार सम्बन्धी चिन्तन और व्यक्तिगत-सामाजिक आचरण को प्रभावित करने वाला सबसे बड़ा धर्मग्रन्थ भी। इसलिए, हिन्दी-भाषी प्रदेश की संस्कृति को सही ढंग से समझने के लिए इस काव्य का अध्ययन आवश्यक है। इसका अध्ययन उन लोगों के लिए भी आवश्यक है जो यहाँ के जन-जीवन को नयी दिशा देना चाहते हैं। इसके द्वारा वे उन मूल्यों पर बल दे सकते हैं, जो आज भी उपयोगी हैं और उन मूल्यों की चेतना उत्पन्न कर सकते हैं जिनका आज कोई महत्त्व नहीं रह गया है।

मानस के मूल्यों पर फिर से विचार करने की आवश्यकता का कारण वे सामाजिक परिस्थितियाँ हैं, जो पिछली शताब्दी से ही लगातार बदलती और लोगों के मनोविज्ञान को गहराई में प्रभावित करती रही हैं। इससे परम्परा के प्रति पहले जैसी स्वीकारवादी दृष्टि नहीं रह गयी है और उसे बुद्धि और विवेक के आधार पर परखा जाने लगा है। अब परम्परा में चली आती हुई उन बातों की आलोचना होने लगी है, जो मनुष्य की समतावादी धारणा के मेल में नहीं हैं या विज्ञान सम्मत निष्कर्षों के विपरीत पड़ती हैं। अतएव, आश्चर्य नहीं, यदि रामचरितमानस की आलोचना की जाने लगी है और इसकी प्रामाणिकता का प्रश्न उठाया गया है। इसकी जो बातें आज तीखे विवाद का कारण बन गयी हैं, वे हैं—अवतारवाद, वर्णव्यवस्था और नारी निन्दा।

जिस युग में ईश्वर तक के अस्तित्व पर सन्देह किया जाने लगा हो, उस युग में अवतारवाद की आलोचना कोई बड़ी बात नहीं। आज ही नहीं, पहले भी

आस्तिक कहे जानेवाले बहुत-से लोगो की समझ मे यह बात नही आती थी कि अनादि, अनन्त और सभी विकारो से रहित परब्रह्म नश्वर और सामान्य मनुष्य की तरह सुख-दु ख भोगने वाला मानव-शरीर कैसे धारण कर सकता है। आज अवतार की धारणा इसीलिए असगत और अबौद्धिक प्रतीत होने लगी है।

जहाँ तक तुलसी का सम्बन्ध है, वह यह नहीं मानते कि राम का शरीर प्राकृत मनुष्य के शरीर-जैसा है (दे० बाल० १९२, अयो० १२७, ५-८) और उनका दु ख, विरह-विवशता आदि वास्तविक हैं (दे० अयो० ८७,८, उत्तर० ७२ क और ख)।

तुलसी द्वारा प्रतिपादित वर्णव्यवस्था भी आज ग्राह्य नही रह गयी है। मनुष्य मात्र की समानता के नये बौद्धिक परिवेश मे उनका वर्णवाद पूरी तरह असगत लगता है। वर्णव्यवस्था के समर्थन की तरह ही उनकी नारी-निन्दा भी उनकी मानवीय दृष्टि की उदारता को विवादास्पद बनाती है। आलोचको के एक समुदाय ने इस प्रसग मे उनको निर्दोष प्रमाणित करना चाहा है। उनका यह तर्क सही है कि नारी-निन्दा से सम्बद्ध जो उक्तियाँ मानस मे मिलती हैं, वे कवि की उद्भावना न होकर सस्कृत-ग्रन्थों पर आधारित हैं और प्रत्यक्षत तुलसी द्वारा नही, बल्कि उनके पात्रो द्वारा कही गयी हैं। लेकिन, ऐसी उक्तियो का चुनाव और बार-बार प्रयोग स्वय कवि के मनोविज्ञान को अभिव्यक्त करता है। वस्तुत, तुलसी को नारी-निन्दा के आरोप से मुक्त करना बहुत कठिन है।

मानस की प्रासगिकता की समस्या उपर्युक्त विषयो तक सीमित नहीं है। इस सूची मे एक ऐसे विषय को भी सम्मिलित किया जा सकता है, जिसकी प्रासगिकता बडी तेजी से घटती जा रही है। वह विषय पारिवारिक जीवन के वे ऊँचे आदर्श है, जिनकी अभिव्यक्ति तुलसी द्वारा हुई है।

तुलसी द्वारा अभिव्यक्त पारिवारिक आदर्श मुख्यत सयुक्त पारिवारिक व्यवस्था पर आधारित हैं। सयुक्त परिवार का कृषि सस्कृति से घनिष्ठ सम्बन्ध है। कृषिप्रधान भारतीय जनजीवन मे मानस की असाधारण लोकप्रियता का एक बडा कारण यह भी है कि इसमे सयुक्त परिवार के सदस्यो के पारस्परिक के सम्बन्धो को अनुकरणीय रूप में प्रस्तुत किया गया है। इसमें ऐसे परिवार सदस्यों के अधिकारों, कर्त्तव्यो और मूल्यो को इतनी मार्मिक अभिव्यक्ति मिली है कि यह शताब्दियों तक उन्हें प्रेरित करता रहा है। लेकिन, आज हमारा अर्थतत्र सक्रमण की स्थिति से गुजर रहा है। सयुक्त परिवार गाँवो मे भी टूटने लगे हैं और औद्योगीकरण के बढते हुए प्रभाव के कारण एक दम्पति वाले परिवार शहरी के जीवन की सबसे बडी सचाई बन गये हैं। आज भारतीय जनता का एक उल्लेख्य भाग वह है, जिसके लिए रामचरितमानस के बहुत-से पारिवारिक आदर्श अतीत के विषय बनते जा रहे हैं।

इन सब बातो के सन्दर्भ मे यह सोचना स्वाभाविक है कि इस रचना को हमारे लिए कौन-सी सार्थकता है । इस विषय पर मानस के उद्देश्य के सन्दर्भ मे भी विचार किया जा चुका है और निर्देश किया जा चुका है कि इसकी भगवद्भक्ति मे नैतिकता, परहित और मनुष्य-मात्र के प्रति प्रेम पर बल दिया गया है । अपने युग के सन्दर्भ मे तुलसी कम प्रगतिशील नही रहे हैं । यदि वह प्रगतिशील और स्वतन्त्रचेता नही होते, तो उन्हे अपने समय के रूढिवादी लोगो के विरोध का सामना नही करना पडता । कर्मकाण्ड, तान्त्रिक साधनाओ और ज्ञानमार्ग का विरोध कर उन्होनेतत्कालीन समाज के बहुत प्रभावशाली समुदाय—पण्डे-पुरोहितो साधु-सन्यासियो और पण्डितो का वैर मोल लिया । भक्तिमार्ग की सर्वश्रेष्ठता-सम्बन्धी उनके विचार आज सर्वमान्य जैसे लगते हैं, लेकिन उनके युग मे इसी भक्तिमार्ग को अपने पाँव जमाने के लिए सघर्ष करना पड रहा था । इसके प्रमाण कबीर के पदो और सूर के भ्रमरगीत मे मिल जाते हैं । इतना निश्चित है कि उस समय के अन्य मार्गों की तुलना मे भक्तिमार्ग सबसे अधिक उदार, प्रजातान्त्रिक और मानववादी था । अतएव, वर्णव्यवस्था और पौराणिक विश्वासो के ढांचे मे प्रस्तुत तुलसी की रामकथा के उदार मानववादी और प्रजातान्त्रिक पहलू को पहचानने और महत्त्व देने की आवश्यकता है । इसके अभाव मे मानस के साथ न्याय नही किया जा सकता । मानस मे वैयक्तिक और सामाजिक जीवन के सामजस्य और सन्तुलन, और मनुष्य-मात्र के प्रति सच्चे प्रेम से प्रेरित लोकमगल की भावना पर जो बल दिया है, उसका महत्त्व आज भी कम नही हुआ है ।

यदि और भी गहराई मे जा कर देखा जाय, तो मानस मे ऐसी बहुत सी बातें मिल जा सकती हैं, जो हमे आज भी प्रेरित कर सकती हैं । निर्वासन के रूप मे राम का दु खभोग अपनी दृष्टि मे जीवन के श्रेष्ठ मूल्यो के सरक्षण के लिए स्वेच्छा से स्वीकार किया गया दु खभोग है । राम की कथा हर ऐसे व्यक्ति की कथा है जो अपनी सुख-सुविधाओ का त्याग कर आदर्शों और मूल्यो के लिए सघर्ष करता और दु ख भोगने तथा अपने को बलि देने मे भी दुविधा का अनुभव नही करता है । दूसरे युगों की तरह आज भी ऐसे व्यक्ति की प्रेरक सार्थकता बनी हुई है और यह मानने मे कोई कठिनाई नही होनी चाहिए कि जब तक अपने विवेक एव औचित्य-बोध के सामने प्रलोभनो और सुख-सुविधाओ का त्याग करने वाले लोग समाज मे जीवित रहेगे, तब तक उनकी सार्थकता कभी कम नहीं होगी । पुन, रावण के विरुद्ध राम का युद्ध रथी रावण के विरुद्ध विरथ राम की लडाई है । दूसरे शब्दो मे, यह साधन सम्पन्न अन्याय के विरुद्ध साधन-विपन्न न्याय की लडाई है । साधन-सम्पन्न के भय मे समझौता करने के बदले अपने न्यायोचित अधिकारो के लिए सघर्ष

करने और तात्कालिक प्रलोभनो के सामने झुकने के बदले अपने आदर्शों के लिए यन्त्रणा झेलने का जो स्वर रामचरितमानस मे मिलता है वह हमारे युग में नया अर्थ अर्जित करता जा रहा है।

इन सब से भी बड़ा अर्थ मानस के आशावाद का है। कहा जा सकता है कि सामान्यत जीवन मे अन्याय के विरुद्ध न्याय की विजय नही होती। अक्सर देखा गया है कि अन्याय ही विजयी होता है, अत रावण के विरुद्ध राम की विजय को जीवन के अनिवार्य निष्कर्ष के रूप मे स्वीकार करना ठीक नही है। किन्तु यदि कोई आरम्भ मे ही यह मान ले कि अपने प्रयत्नो मे उसकी सफलता सन्दिग्ध है तो इससे उसके कर्म सम्बन्धी उत्साह, आदर्श के प्रति आस्था और जीवन के रस के विपरीत रूप मे प्रभावित हो जाना आश्चर्य की बात नही। वस्तुत, जीवन जीने और अपने आदर्शों के लिए संघर्ष करने के लिए आशावाद आवश्यक है।

लेकिन, मानस की प्रासगिकता युगविशेष तक सीमित नही है। यह गहरे जीवनबोध से उत्पन्न उच्च कविता है जिसकी प्रासगिकता न तो उन लोगो के लिए घटेगी, जो आस्तिक हैं और न उन लोगो के लिए, जो मात्र काव्य के पाठक हैं। इसमे कवित्व, भगवद्भक्ति और नैतिकता का ऐसा सामजस्य हुआ है कि उनको अलग अलग कर नही देखा जा सकता। इसलिए यह मानने में कोई आपत्ति नही होनी चाहिए कि जो लोग मानस की मूल भावधारा से अनुकूलता रखते हैं, वे इसका आस्वाद सबसे अच्छी तरह ग्रहण कर सकते हैं। लेकिन हम जानते हैं कि कविता के आस्वाद के मार्ग मे काव्यकृति मे अभिव्यक्त जीवन-मूल्य और विश्वास बाधक प्रमाणित नही होते क्योंकि वे उसकी मूलभूत संवेदना मे भावोदबोधक सामग्री के रूप मे रचे होते हैं। यदि यह सच नही होता, तो अपनी सस्कृति, धर्म और जीवन-दृष्टि के दायरे मे पड़ने वाली कविता का आस्वाद सम्भव नहीं होता। अतएव, यदि कोई चाहे तो केवल काव्यकृति के रूप मे भी मानस का रस-ग्रहण और मूल्यांकन कर सकता है।

मानस का संक्षिप्त व्याकरण

डॉ० दिनेश्वर प्रसाद

संस्कृत की थोड़ी-सी पंक्तियों को छोड़ कर समग्र रामचरितमानस की रचना अवधी-भाषा में हुई है। ब्रजभाषा की तरह अवधी भी मध्ययुग में साहित्य की भाषा के रूप में प्रतिष्ठित थी, किन्तु अट्ठारहवीं शताब्दी के बाद खड़ी बोली का महत्त्व बढ़ने लगा और बीसवीं शताब्दी के आरम्भिक दशकों में यह भाषा गद्य और पद्य, दोनों क्षेत्रों में इस प्रकार प्रतिष्ठित हो गयी कि आज हिन्दी का अर्थ खड़ी बोली हो गया है। लेकिन इन सभी भाषाओं का स्वरूप एक ही नहीं है। ब्रज या खड़ी बोली की तरह अवधी के भाषिक स्वरूप की भी अपनी विशेषताएँ हैं जिनकी जानकारी के बिना रामचरितमानस का अध्ययन नहीं किया जा सकता। हिन्दी के केवल उन आधुनिक पाठकों को इस भाषा की जानकारी है, जो या तो अवधी क्षेत्र के हैं, या जिन्होंने इसके व्याकरण की पहचान विकसित कर ली है। किन्तु ऐसे लोगों की संख्या कम है। आज के हिन्दी-पाठकों में ऐसे लोगों की संख्या बढ़ती गयी है, जो केवल खड़ी बोली का साहित्य पढ़ते या पढ़ना पसन्द करते हैं। इसका कारण केवल यह नहीं है कि हिन्दी के प्राचीन साहित्य की कुछ अन्य महान् कृतियों की तरह रामचरितमानस भी संवेदना की दृष्टि से आज के मनुष्य से कुछ दूर पड़ गया है, बल्कि इससे कहीं अधिक बड़ा और निर्णायक कारण यह है कि इसकी भाषा केवल खड़ी बोली के अभ्यस्त अधिकांश हिन्दी पाठकों की समझ में नहीं आती। यह स्थिति तब तक बनी रहेगी, जब तक उनमें यह बोध नहीं उत्पन्न किया जाता कि अवधी का अपना व्याकरण है जो खड़ी बोली के व्याकरण से भिन्न है और इस व्याकरण को जाने बिना मानस के अर्थ और रस का ग्रहण कठिन है। यहाँ इस बात को ध्यान में रख कर मानस के व्याकरण की सबसे मुख्य बातों का उल्लेख किया जा रहा है।

परिचय के रूप में यह संकेत आवश्यक होगा कि मानस की भाषा आज की अवधी से कुछ भिन्नता रखती है, किन्तु मिला-जुला कर यह आज भी वर्त्तमान अवधी के बहुत समीप पड़ती है।

अवधी उत्तरप्रदेश के पन्द्रह जिलों की भाषा है। डॉ० बाबूराम सक्सेना ने

इसके तीन भेद माने हैं—पश्चिमी, मध्यवर्त्ती और पूर्वी। पश्चिमी अवधी लखीमपुर खीरी, सीतापुर, लखनऊ उन्नाव और फतेहपुर जिलों मे बोली जाती है। मध्यवर्त्ती अवधी बहराइच, बाराबंकी और रायबरेली जिलों म प्रचलित है। पूर्वी अवधी का प्रचलन जिन जिलों मे है, वे हैं—गोंडा, फैजाबाद, सुलतानपुर, प्रतापगढ, इलाहाबाद, जौनपुर और मिर्जापुर। (अवधी का विकास पृ० १६) मानस की अवधी में इन तीनों क्षेत्रीय भेदों की व्याकरणिक विशेषताएँ मिलती हैं। इसके सिवा, इस पर व्रजभाषा, भोजपुरी, बुन्देलखण्डी राजस्थानी आदि भाषाओं का भी कहीं-कहीं प्रभाव पडा है।

मानस की ध्वनियाँ :

(क) स्वर

१ मानस मे ऐ के स्थान मे अइ और अय का प्रयोग भी मिलता है, जैसे, ऐसेहुँ को अइसेहुँ, बैर को बयर और मैत्री को मयत्री के रूप म भी लिखा गया है। इसी प्रकार औ के स्थान पर अउ का प्रयोग भी हुआ है। उदाहरणार्थ, चौथ को चउथ, और एकौ को एकउ रूप म भी लिखा गया है। इसका अर्थ यह होता है कि मानस मे असयुक्त या मूल स्वर ऐ और औ का उच्चारण सयुक्त स्वरों के रूप मे भी होता है।

२ इस काव्य मे ऋ का लेखन सर्वत्र रि के रूप मे हुआ है, जैसे, रिषि (ऋषि), रिधि (ऋद्धि) रितु (ऋतु) आदि।

(ख) व्यजन

१ अवधी में श का उच्चारण स हो गया है। अत, मानस मे श ध्वनि वाले शब्दों में श को बदल कर स कर दिया गया है। स्वाभाविक है कि इसमे शृ को सृ के रूप मे लिखा गया है जैसे सृकाल (शृकाल,), सृ गी (शृ गी) आदि। लेकिन इसम श्र का परिवर्तन नहीं हुआ है जैसे श्रीखड, विश्राम आदि। किंतु, उल्लेख्य है कि मानस मे श्र का उच्चारण स्र ही है।

२ मानस मे ष का प्रयोग हुआ ह किंतु इस काव्य मे ष का उच्चारण या तो स है या ख। जैसे, कमठ सेष-सम घर बसुधा के (बाल० २०) मे सेष का उच्चारण सेस है जब कि यह सब रुचिर चरित मैं भाषा। अब सो सुनहु जो बीचहिं राखा॥ (बाल० १ ८) मे भाषा का उच्चारण भाखा है।

३ ज्ञ को सदैव ग्य के रूप मे लिखा गया है, जैसे, ग्यान, बिग्यान, अग्य आदि।

४ अवधी उच्चारण के अनुसार ण को सर्वत्र न मे बदल दिया गया है, जैसे, प्राण को प्रान, अगुण को अगुन, प्रणाम को प्रनाम के रूप मे लिखा गया है।

(ग) अर्द्धस्वर

१. तत्सम शब्दो के आरम्भ मे आने वाले य को अवधी-उच्चारण के अनुसार ज कर दिया गया है, जैसे, यज्ञ को जग्य, योग को जोग और यश को जस। उनके मध्य और अन्त मे आने वाला य अपरिवर्तित रहा है। केवल र के साथ सयुक्त अन्तिम य का परिवर्तन ज मे हुआ है, जैसे, कार्य से विकसित कारज मे।

२ जिन तत्सम शब्दो मे व मिलता है, उनके व को प्राय ब मे बदल दिया गया है, जैसे, बिजय, बिबेक, बिभूति, बिप्र, बर आदि। जिन स्थलो पर व को नही बदला गया है, उनमे से कुछ के उदाहरण हैं—नवधा भक्ति कहउँ तोहि पाही (अर० ३५), तव बल नाथ ! डोल नित धरनी (लका० ५८३)।

कही-कही व का परिवर्तन उ मे कर दिया गया है, जैसे, दँउ (दैव), सुभाउ (स्वभाव) आदि। इसका कारण यह है कि अवधी मे अक्षर (सिलेबल) के अन्त मे आने वाले व का उच्चारण उ के रूप मे होता है। अत, उच्चारण की दृष्टि से नवधा को नउधा और तव को तउ समझना चाहिए।[1]

मानस की शब्दावली :

मानस की शब्दावली बहुत विस्तृत है। इसमे मुख्य रूप मे अवधी और अवधी-उच्चारण के अनुरूप आवश्यक सीमा तक सशोधित सस्कृत-शब्दो का प्रयोग हुआ है। किन्तु, इसमे प्राकृत-अपभ्रश, अरबी-फारसी, बुन्देलखण्डी, छत्तीसगढी, राजस्थानी, गुजराती, मराठी, भोजपुरी और मैथिली के शब्दो का भी प्रयोग हुआ है।

मानस मे सस्कृत के सज्ञा और विशेषण शब्द ही नही मिलते, वरन् बहुत-से स्थलो पर उसकी विभक्तियाँ, अव्ययो और क्रियापदो का प्रयोग भी मिलता है। सस्कृत-विभक्तियो से युक्त पदो (शब्दो) के कुछ उदाहरण हैं, सुखेन (सुख से), सरेन (सर या तीर से), सदसि (सभा मे), मनसि (मन मे) आदि। अव्ययों मे सोऽपि (सोपी) अपि, कोऽपि (कोपी) आदि का प्रयोग मिलता है। इसमे सस्कृत के बहुत-से क्रियापदो को अवधी के व्याकरणिक ढाँचे के अनुसार प्रयुक्त किया गया है, जैसे अवतरेउ (अवतार लिया), आदरहिं (आदर करते हैं), अनुमाना (अनुमान किया) आदि।

---

१ अवधी मे व के उच्चारण की इस प्रवृत्ति के निर्देश के लिए लेखक, डॉ० बाबूराम सक्सेना का आभारी है।

तुलसी ने पूर्ववर्त्ती अवधी कवियों की तरह मानस मे भी प्राकृत अपभ्रंश के कुछ शब्दों का प्रयोग किया है, जैसे, लोयन (लोचन), बयन (वचन), मयन (मदन), भुअग (भुजग), उग्ग (उगा) आदि।

वे सस्कृत-शब्दो की तरह अरबी-फारसी शब्दो को भी अवधी-उच्चारण और व्याकरण के अनुरूप बना कर प्रयोग मे लाते हैं। वे अरबी फारसी शब्दों मे आने वाली क, ख, ग ज और फ ध्वनियो को क्रमश क, ख, ग, ज, और फ कर देते हैं। वे कुछ अरबी-फारसी शब्दों को इस प्रकार बदल देते हैं कि वे अवधी के ठेठ शब्द जैसे लगते हैं। जैसे, वे फारसी के नेक को नीक, शहनाई को सहनाई, कागज को कागद, निशान को निसान और ख्वार को खुआरू तथा अरबी के बैआनह को बायन, मशा का मनसा, नायब को नेव और कुगरह को कँगूरा के रूप मे परिवर्तित कर देते हैं। यही नही, इस प्रकार के शब्दों से वे कभी-कभी क्रियापदो की रचना कर लेते हैं, जैसे, नवाजिश (फारसी) से नेवाजे (कृपा की)।

मानस मे उपलब्ध अन्य भाषाओ के शब्दो के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं--बुन्देलखण्डी सुपेती, कोवर, राजस्थानी मेली, पूजी गुजराती जून, भोजपुरी राउर, घायल, तहवाँ। किन्तु जैसा कि कहा जा चुका है, इसमे सबसे अधिक महत्त्व अवधी और सस्कृत का है।

सस्कृत-शब्दों के सम्बन्ध म मानसकार की तीन प्रवृत्तियाँ विशेष रूप मे उल्लेखनीय हैं। उसकी पहली प्रवृत्ति सस्कृत शब्दो की कुछ ध्वनियों के परिवर्त्तन की है, जिस पर विचार किया जा चुका है। उसकी दूसरी प्रवृत्ति सस्कृत-शब्दों के सरलीकरण की है, जिसके लिए वह सयुक्त ध्वनियो को अलग-अलग या असयुक्त करता है, जैसे प्रेममगन (प्रेममग्न), कीरति (कीर्ति), सतसगति (सत्सगति) आदि। तीसरी प्रवृत्ति अवधी के अकारान्त शब्दों की तरह सस्कृत के अकारान्त शब्दों को भी उकारान्त बनाने की है, जैसे निवास को निवासु प्रपच को प्रपचु और रोष को रोषु मे बदलने की।

कहा जा चुका है कि अवधी मे अकारान्त शब्दो मे उ लगाने की प्रवृत्ति मिलती है। अत, मानस मे रामु नामु, धरमु, करमु, रघु आदि शब्दो का प्रयोग हुआ है। अवधी क अलग अलग क्षेत्रों में एक ही शब्द के अलग अलग रूप मिलते हैं। तुलसी ने शब्द विशेष के विभिन्न क्षेत्रीय रूपों का मुक्त भाव से प्रयोग किया है। यही कारण है कि मानस मे कही तो थोरइ मिलता है, तो कही थोरउ, कही सोइ आता है तो कहीं सोय, और कहीं समय का प्रयोग होता है तो कही समउ का।

लेकिन, न केवल अवधी, वरन् मानस मे प्रयुक्त अन्य शब्दों की वर्त्तनी में

जो अनेकरूपता दीखती है, उसका एक महत्त्वपूर्ण कारण तुक और मात्रापूर्ति का अनुरोध है। इस अनुरोध से ह्रस्व स्वरों को दीर्घ और दीर्घ स्वरों को ह्रस्व कर दिया जाता है। प्रीति से प्रीती, राति से राती, राम से रामा, सुग्रीव से सुग्रीवा, राम से रामू और राउ से राऊ बनाने की प्रवृत्ति ह्रस्व स्वरों को दीर्घ करने की है। दीर्घ स्वरों को ह्रस्व करने की प्रवृत्ति के उदाहरण हैं—रानि, रिसानि आदि। इसके अतिरिक्त बहुत से स्थलों पर छन्द के आग्रह से ही सयुक्त ध्वनियों को असयुक्त कर दिया गया है।

शब्द-सम्बन्धी उपर्युक्त प्रवृत्तियों का सम्मिलित परिणाम यह हुआ है कि मानस मे एक ही शब्द के कई रूप उपलब्ध होते हैं। इसमे धर्म भी है और धरम भी, सिद्धि भी है और सिधि भी, सिंहासन भी है और सिंघासन भी। इसके शब्दों के रूप वैविध्य के कुछ अन्य उदाहरण हैं – राम, रामा, रामु और रामू, हृदय, हिरदय, हृदउ और हिय, और, औरु तथा अउर, बेस बेसा, बेसु और बेसू, भक्ति और भगति अक, आंक और आंकु, समय, समउ और समो, तथा सत्य, सात, सति और सांच। कहना नहीं होगा कि इस प्रकार के बहुत-से उदाहरण तत्सम शब्द के साथ-साथ उसके तद्भव और अर्द्धतत्सम रूपों के प्रयोग के हैं। तुलसी ने भाषा मे पहले से विद्यमान इन शब्दों का प्रयोग उसी तरह किया है, जिस तरह आज खड़ी बोली का कवि या लेखक अपेक्षानुसार कभी सत्य का प्रयोग करता है, तो कभी सच का या कभी 'अकन करना' का 'तो कभी ओंकना' का।

इसी प्रकार, मानस के तद्भव शब्दों मे से अनेक के रूप-भेद तुलसी की सृष्टि न होकर अवधी भाषा के क्षेत्रीय भेदों से सम्बन्ध रखते हैं। उनकी सृष्टि केवल वे रूप हैं, जो छन्द की मात्रा, तुक और यति के अनुरोध से आये हैं। इस दृष्टि से आज के हिन्दी-लेखन का स्वभाव मानस की भाषिक सरचना से भिन्न हो जाता है। आज के हिन्दी-लेखन मे तत्सम शब्दों का प्रयोग शुद्ध रूप मे होता है, किसी तद्भव शब्द के साथ-साथ उसके क्षेत्रीय रूपों के भी नहीं, बल्कि उसके मानक रूप के ही प्रयोग का आग्रह किया जाता है तथा छन्द के अनुरोध से शब्दों के मानक रूपों को बदलने की प्रवृत्ति का विरोध किया जाता है।

संज्ञा :

मानस के सज्ञा शब्दों के तत्सम आदि स्रोतों और रूपों का उल्लेख किया जा चुका है, अतः यहाँ केवल लिंग, वचन और कारक-प्रकरणों पर विचार किया जा रहा है।

(क) लिंग

१ मानस मे पुल्लिंग और स्त्रीलिंग, ये दो लिंग भेद मिलते हैं। पुल्लिंग,

संज्ञा शब्दों के रूपों में अपेक्षित परिवर्तन द्वारा स्त्रीलिंग सूचित होता है; जैसे, कुँअर (पु०), कुँअरि (स्त्री०), भिल्ल (पु०) भिल्लनि (स्त्री०) आदि। इसमें लिंग-भेद की पहचान के जो नियम तत्सम और तद्भव शब्दों के प्रसंग में कार्य करते हैं, वे प्राय वही हैं, जो खड़ी बोली में मिलते हैं। अत, उन पर अलग से विचार करने की आवश्यकता नहीं है।

२ खड़ी बोली की तरह मानस में भी लिंग-भेद का प्रभाव सम्बन्ध कारक के परसर्ग, विशेषण और क्रिया पर पड़ता है, जैसे, (क) सम्बन्धसूचक परसर्ग : कर (पु०) और केरि (स्त्री०), केरी (स्त्री०) (ख) विशेषण दाहिन (पु०), दाहिनि (स्त्री०), कुँआर (पु०) कुँआरि (स्त्री०), कुँआरी (स्त्री०), मोर (पु०), मोरा (पु०), मोरि (स्त्री०), मोरी (स्त्री०), (ग) क्रिया कहत (पु) कहति (स्त्री०), जानत (पु०), जानति (स्त्री०)।

(ख) वचन

१ मानस में संज्ञा-शब्दों के दो वचन मिलते हैं—एकवचन और बहुवचन। एकवचन से बहुवचन बनाने के लिए संज्ञा शब्द में लोग, गन, बरूथ, वृन्द, झारी और समुदाई (समुदाय)-जैसे समूहसूचक शब्द लगाये जाते हैं, जैसे मालीगन, सज्जन-बृंद, देवमुनि झारी आदि। किन्तु, इस युक्ति का प्रयोग कम होता है। साधारणत -न, -न्ह, -न्हि, -नि और ए प्रत्ययों में से किसी एक के योग से बहुवचन रूप बनाये जाते हैं। जैसे पीठ (एकवचन) से पीठन (बहुवचन), मुनि (एक०) से मुनिन्ह (बहु०), सठ (एक०) से सठन्हि (बहु०), सेवक (एक०) से सेवकनि, और बाजन (एक०) से बाजने (बहु०)।

२ खड़ी बोली की तरह यहाँ भी वचन-भेद का प्रभाव सम्बन्धसूचक परसर्ग, विशेषण और क्रिया पर पड़ता है। जैसे (अ) सम्बन्ध-सूचक परसर्ग क (एक०), का (एक०) के (बहु०), कै (बहु०) (आ) विशेषण ऐसा (एक०), ऐसे (बहु०), सुहावा (एक०), सुहाए (बहु०), (इ) क्रिया कहइ (एक०), कहहि (एक०), कहहिं (बहु०), कहहीं (बहु०)।

३ खड़ी बोली की तरह यहाँ भी आदरार्थक एकवचन के सम्बन्धसूचक परसर्ग, विशेषण और क्रिया के रूप बहुवचन जैसे होते हैं।

परसर्ग :

मानस में विभिन्न कारकों के लिए जिन परसर्गों का प्रयोग होता है, उनका विवरण निम्नलिखित है

१ खड़ी बोली में कर्ताकारक के लिए कुछ स्थितियों में ने परसर्ग का प्रयोग

होता है और कुछ स्थितियों मे उसका प्रयोग नही होता। मानस मे कर्त्ताकारक के किसी परसर्ग का प्रयोग नही होता, जैसे—जो मै सुना, सो सुनहु सयानी। (बाल० २२१) लेकिन, कभी-कभी कर्त्ता मे अनुस्वार या चन्द्रविन्दु का प्रयोग होता है, जैसे—तबहिं रायँ प्रिय नारि बोलाई। (बाल० १९०)

२ खडी बोली मे कर्म कारक का परसर्ग को है। मानस मे को का अर्थ देने वाले परसर्ग है—कहुँ (मुख सोहाग तुम्ह कहुँ दिन दूना। अयो० २१) काहु (राम चरित राकेस-कर सरिस सुखद सब काहु। बाल० ३२) काहू (मनभ दान दीन्ह सब काहू। बाल० १९४ और कह तिन्ह कहँ मानस अगम अति। बाल० ३८)। एक स्थल पर क का प्रयोग हुआ है—जो यह साची है सदा तो नीका तुलसीक। (बाल० २९ ख)। बहुत बार हि प्रत्यय के योग द्वारा भी इस कारक का अभिप्राय सूचित किया गया है जैसे—भ्रातहि नारदमग्र अति बोलाई। बाल० २८७)

३ खडी बोली मे करण कारक का परसर्ग से है। मानस मे इस कारक के परसर्ग हैं—सन (तेहि सन जागवलिक पुनि पावा। बाल ३०) ते (साधु ते होइ न कारज हानी। सु० ६), तें (माया न अपि रानि नहि आई। सु० १३) से (सेवक कर-पद-नयन से मुख सो साहिब होई। अयो० ३०६) सो (भग्न भाज भरि भाइ भरत सो। अयो० ३१७), सं (कहेहु दडवत प्रभु सं। उत्तर० १९ ब) प्रति तिन्ह पुनि भरद्वाज प्रति गावा। बाल० ३०)। कभी-कभी अनुस्वार या चन्द्रविन्दु द्वारा भी इस परसर्ग का द्योतन होता है, जैसे—नाम जीहँ जपि जागहि जोगी। (बाल०२२) इसकी सूचना हि प्रत्यय द्वारा भी दी जाती है, जैसे—लखनहि भेटि प्रनामु करि। (अयो० ३१८)

४. खडी बोली मे सम्प्रदान कारक का मुख्य परसर्ग के लिए है। मानस मे सम्प्रदान कारक के परसर्ग हैं—कहें (दीन्हि राम तुम्ह कहँ सहिदानी। सु० १३), कहुँ (जानें कहुँ बल-बुद्धि बिसेषा। सु० २) हित (जहँ धनुमख हित भूमि बनाई। बाल० २२४), हेतु (प्रानप्रिया केहि हेतु रिसानी। अयो० २५) लागि (दरस लागि लोचन अकुलाने। बाल० २२९) कारन (धनुष जग्य जेहि कारन होई। बाल० २३०)।

५. खडी बोली मे अपादान कारक का परसर्ग से है। मानस मे इस कारक के परसर्ग हैं—तें (लताभवन तें प्रगट भे। बाल० २३२) और ते (सुमन माल जिमि कंठ ते गिरत न जानइ नाग। किष्कि० १०)। इसके लिए सन और सो का प्रयोग भी कभी-कभी होता है, और कभी-कभी हि का।

खडी बोली मे तू के विकारी रूप तुझ और तुझे हैं। मानस मे इसके रूप है— तो (तो कहुँ आज सुलभ भइ साईं। अर० ३६), तोहि (सिवत तोहि सुलभ फल चारी। बाल० २३६), तोही (अवगुन बहुत चन्द्रमा तोही। बाल० २३८)।

खडी बोली मे तू के सम्बन्धसूचक रूप तेरा, तरी और तेरे हैं। मानस मे तं के सम्बन्धसूचक रूप हैं—तोर (कहु कछु दोष न तोर। अयो० ३५), तोरा (नव विधु विमल तात! जसु तोरा। अयो० २०१), तोरि (रामसत्य सकल प्रभु, गभा कालवस तोरि। सु० ४१), तोरी (सुनु मथरा! बात फुरि तोरी। अयो० २०), तोरे (राम-प्रताप नाथ! बल तोरे। अयो० १६२), तोरें (पूजिहि नाथ! अनुग्रह तोरें। अयो० ३)।

खडी बोली मे तुम के विकारी रूप तुम (को, से आदि) और तुम्हे हैं। मानस मे तुम्ह के विकारी रूप हैं—तुम्ह (राजहि तुम्ह पर प्रीति विसेषी। अयो० १८), तुम्हहि (कहूँ विनतहि दीन्ह दुखु, तुम्हहि कौसिलाँ देव। अयो० १९) एक स्थान पर तुम्हही (अयो० १७६) का भी प्रयोग हुआ है।

खडीबोली मे तुम के सम्बन्धसूचक रूप तुम्हारा, तुम्हारी और तुम्हारे हैं। *मानस में तुम्ह के सम्बन्धसूचक रूपों मे तुम्हार का प्रयोग सबसे अधिक हुआ है—* जिमि तुम्हार आगमन मुनि भए नृपति बलहीन। (बाल० २३८) सम्बन्धसूचक अन्य रूप ये हैं—तुम्हारा (अनभल देखि न जाइ तुम्हारा। अयो० १३), तुम्हारे (सुफल मनोरथ होहुँ तुम्हारे। बाल० २३७) तुम्हारें (पूत विदेस, न सोचु तुम्हारें। अयो० १४); तोहारा (परसु-सहित बड नाम तोहारा। बाल० २८२), तुम्हरे (तुम्हरे हृदयँ होइ सदेहू। अयो० ५६), तुम्हरें (जौं तुम्हरें मन अति सदेहू। बाल० ५२), तुम्हारि (जरि तुम्हारि चह सवति उखारी। अयो० १७) तुम्हारी (पूजिहि मन-कामना तुम्हारी। बाल० २३६) तुम्हरी (तुम्हरी कृपाँ कृपायतन! अब कृतकृत्य, न मोह। उत्तर० ५२), तुम्हरी (हैं तुम्हरी सेवा बस राऊ। अयो० २१), तव (सुनहि सती! तव नारि सुभाऊ। बाल० ५१), तुअ (परउँ कूप तुअ बचन पर। अयो० २१)। इनके अतिरिक्त जिस तरह खडी बोली मे तुम्हारा, तुम्हारे आदि के बाद ही लगा कर बल सूचित करने वाले रूप बनते हैं, उसी तरह मानस मे भी हि, हिं, इ या इँ लगा कर तुम्हारेहि, तुम्हारेहिं, तुम्हरेहि, तुम्हारेइँ और तुम्हरेइँ रूप।

मानस मे आदरार्थक आप के लिए जिन शब्दो का प्रयोग होता है, वे हैं—राउर, राउरि, रउरें राउरें, रावरे, रावरी और रौरेहिं।

३ अन्यपुरुष (क) खड़ी बोली में अन्यपुरुष के एकवचन रूप हैं—यह और वह।

मानस में यह के लिए प्रयुक्त रूप हैं—यह (यह सुनि अवर महिप मुसुकाने। बाल० २४१), यहु (अब यहु मरनिहार भा साँचा। बाल० २७५)।

बल सूचित करने वाले यही की तरह मानस में प्रयुक्त रूप हैं—एहा (मन-क्रम-वचन मंत्र दृढ़ एहा। अर० २३), एहु (तुम्हहि उचित मत एहु। अयो० २०७) एह (वेद-पुरान-संत-मत एह। बाल० २६) एहूँ (एहूँ मिस देखौं पद जाई। बाल० २०६) इहइ (इहइ सगुन-फल, दूसर नाहीं। बाल० ७)।

खड़ी बोली में यह के विकारी रूप—इस, और इसे हैं, और मानस में—एहि (न त एहि काटि कुठार कठोरें। बाल० २७५), एहिं (होइ सुखी जौ एहिं सर परई। बाल० ३५)।

खड़ी बोली में इस के बाद का, में, पर आदि लगा कर इसका, इसमें आदि रूप बनाये जाते हैं। मानस में यह के विकारी रूप एहि में के, कं महँ आदि लगा कर परसर्ग वाले रूपों की रचना होती है।

मानस में वह के लिए सो का प्रयोग हुआ है—सो जानब सतसंग प्रभाऊ। (बाल० ३) सो सुनि तिय रिस गयउ सुखाई। (अयो० २५) कहीं-कहीं वह का प्रयोग भी हुआ है। जैसे—वह सुख संपति समय समाजा। (बाल० १६५)

खड़ी बोली में वह का बलात्मक रूप वही है। मानस में सो के बलात्मक रूप हैं—सोइ (मुनिनायक सोइ करौं उपाई। बाल० २७५), सोई (तात! जनक-तनया यह सोई। बाल० २३१), सोउ सोउ सर्बग्य जथा त्रिपुरारी। बाल० ५१), सोऊ (राम-नाम बिनु सोह न सोऊ। बाल० १०)।

खड़ी बोली में वह के विकारी रूप उस, उसी और उसे है। मानस में सो के विकारी रूप हैं—ता (ता पर हरषि चढ़ी बैदेही। लंका० १०८), ताहि (अजस पेटारी ताहि करि। अयो० १२), ताही (गरुड़! सुमेर रेनु सम ताही। अर० ५), तहि (तेहि कं रचि-पचि बध बनाए। बाल० २९८), तहिं (तेहिं तस देखेउ कोसल-राऊ। बाल० २४२), तेही (निमिष बिहात कलप सम तेही। बाल० २६१), तासु (उचित न तासु निरादर कीन्हे। अयो० ४३), तासू (धन्य जनम जगतीतल तासू। अयो० ४६), ताहु (सरन गएँ प्रभु ताहु न त्यागा। सु० ३९), ओही (चातक रटत, तृषा अति ओही। किष्कि० १७)।

खड़ी बोली मे वह के विकारी रूप उस के साथ का, के की, से आदि परसर्गों का प्रयोग होता है। मानस मे सो के विकारी रूप ता, तहि, ताहि और ताही के बाद परसर्गों का प्रयोग होता है जैसे, ता पर, ता के, तेहि पर ताही सो आदि।

(ख) खड़ी बोली मे अन्यपुरुष के बहुवचन रूप ये और वे हैं।

मानस मे ये के लिए प्रयुक्त रूप हैं—ए (कबहुँक ए आवहिं एहि नातें। बाल० २२२), इन्ह (सखि! इन्ह कोटि काम छवि जीती। बाल० २२०)।

खड़ी बोली मे ये के विकारी रूप इन और इन्हें हैं, और मानस मे—इन्ह (हमरें कुल इन्ह पर न सुराई। बाल० २७३) इन्हहि (इन्हहि न संत बिदूषहिं काऊ। बाल० २७९)।

खड़ी बोली मे ये के विकारी रूप इन के साथ का मे से आदि परसर्गों का प्रयोग होता है। मानस मे कर कइ, महि, तें आदि परसर्गों का इन्ह के साथ प्रयोग होता है, जैसे इन्ह कर इन्ह कइ इन्ह महि इन्ह तें आदि।

मानस मे वे के लिए प्रयुक्त रूप हैं—तिन्ह (तिन्ह प्रभु प्रगट काल सम देखा। बाल० २४१) त (ते कि सदा सब दिन मिलहिं। अयो० ६०) और उन्ह (उन महुँ सकल कटक उन्ह मारा। अर० २२)।

खड़ी बोली मे वे के विकारी रूप उन और उन्हें हैं। मानस मे तुलनीय विकारी रूप हैं—तिन्ह (तिन्ह निज ओर न लाउब भोरा। बाल० ५), तिन्हहि (होइ हिम तिन्हहि दहइ सुख मदा। अर० ४८), तिन्हही (आसा बसन ब्यसन यह तिन्हही। उत्तर० ३२) तिन्हहु (देहि राम तिन्हहू निज धामा। लका० ४५), उन्ह (सुन्दरि! सुनु मैं उन्ह कर दासा। अर० १७) उन्हहि (तब फनु उन्हहि देउँ करि साका। अयो० ३३)।

जिस प्रकार खड़ी बोली में परसर्गों का प्रयोग वे के विकारी रूप उन के बाद होता है उसी प्रकार मानस म तिन्ह और उन्ह के बाद कर, कइ, मह आदि परसर्गों का प्रयोग होता है।

निश्चयवाचक सर्वनाम

अन्यपुरुष के सर्वनाम ही निश्चयवाचक सर्वनाम हैं, जिन पर ऊपर विचार किया जा चुका है।

अनिश्चयवाचक सर्वनाम

खड़ी बोली मे इसके अविकारी रूप हैं—और, कोई, कुछ और सब।

मानस मे और तथा इनके समानार्थक रूप ये हैं—और (और एक तोहि कहउँ लखाऊ। बाल० १६६) और (और करै अपराध कोउ, और पाव फल भोगु। अयो० ७७),

आन (सपनेहुँ आन पुरुष जग नाहीं । अर० ५), आना (तुम्ह जो कहा राम कोउ आना । बाल० ११४), पराय (पिसुन पराय पाप कहि देहीं । अयो० १६८), पराए (मुनिहि मोह मन हाथ पराएँ । बाल० १३४), पराई (जहँ कहुँ निंदा सुनहिं पराई । उत्तर० ३६) ।

मानस मे और, औरु और आन (सं० अन्य) के विकारी रूप हैं—औरउ (औरउ जे हरिभगत सुजाना । बाल० ३०), आनकी (सो प्रिय जाके, गति न आनकी । अर० १०) ।

मानस मे कोई के अविकारी रूप हैं—कोइ (बदौं संत समान चित हित-अनहित नहिं कोइ । बाल० ३ क), कोई (सचिव सभय सिख देइ न कोई । बाल० २५८), कोउ (इहाँ कुम्हड़बतिया कोउ नाहीं । बाल० २७३), कोऊ (जौं रन हमहिं पचारै कोऊ । बाल० २८४), केउ (होइहि केउ एक दास तुम्हारा । बाल० २७१), क्वौ (नहिं मानत क्वौ अनुजा-तनुजा । उत्तर० १०२) ।

खड़ी बोली मे कोई के विकारी रूप किस और किसे हैं । मानस के तुलनीय विकारी रूप ये हैं—काहु (प्रेम काहु न लखि परै । बाल० ३२३ छं०२), काहू (काहू ते कछु काज न होई । बाल० १८४), केहू (नामु सत्य अस जान न केहू । अयो० २७१), काहुँ (काहुँ न लखा, देख सब ठाढ़ें । बाल० २६१), काहूँ (नकुल दरसु सब काहूँ पावा । बाल० ३०३), केहीं (सुर-नर-नारि न जानेउ केहीं । बाल० १७२) ।

मानस मे कुछ के रूप ये हैं—कछु (तेहिं नाहीं कछु काज बिगारा । बाल० २७६), कछू (मोर कछू न बसाई । बाल० १८४), कछुक (रिस-बस कछुक अरुन होइ आवा । बाल० २६८) ।

मानस मे सब के रूप हैं—सब (सब कें उर अभिलाषु अस, कहहिं मनाइ महेसु । अयो० १), सबन्ह (परहित हेतु सबन्ह के करनी । उत्तर० १२५), सबन्हि (आइ सबन्हि सिर नाए । बाल० २८७) ।

खड़ी बोली मे सब के विकारी रूप सभी और सब हैं । मानस के तुलनीय विकारी रूप ये हैं—सबु (मैं सबु कीन्ह तोहि बिनु पूँछें । अयो० ३२) सबहि (सबहि सुलभ सब दिन सब देसा । बाल० २), सबहिं (बाँटी बिपति सबहिं मोहि भाई । अयो० ३०६), सबही (उदय केत सम हित सबही के । बाल० ४), सबन्हि (यह कहि, नाइ सबन्हि कहुँ माथा । सु० १), सबइ (प्रभु प्रसाद सिव सबइ निबाहीं । अयो० ४) ।

सम्बन्धवाचक सर्वनाम

खड़ी बोली में सम्बन्धवाचक सर्वनाम का एकवचन अविकारी रूप है—जो।

मानस में जो के रूप ये है—जो (जो बिलोकि यह काम लजाही। बाल० २३३), जोइ (राज-समाज आज जोइ तोरा। बाल० ३५०), जोई (देखि पूर बिधु बाढ़इ जोई। बाल० ८)।

खड़ी बोली में जो के विकारी रूप जिस और जिसे हैं तथा मानस में—जा (करहु जाइ जा कहुँ जोइ भावा। बाल० २४६), जासु (जासु सुभाउ अरिहि अनुकूला। अयो० ३२), जासू (बड़े भाग उर आवइ जासू। बाल० १), जाहि (जाहि दीन पर नेह। बाल० ४), जाही (अरि-बस दैव जिआवत जाही। अयो० २१), जेहि (बचन बज्र जेहि सदा पियारा। बाल० ४), जेही (बिप-बारुनी बंधु प्रिय जेही। बाल० ३४७), जाहू (कोटि बिप्र-बध लागहिं जाहू। सु० ४४)। एक बार जिसु का प्रयोग हुआ है—सब सिधि सुलभ जपत जिसु नामू। (बाल० ११२)।

खड़ी बोली में जो के विकारी रूप जिस के बाद परसर्गों का प्रयोग होता है। मानस में परसर्गों का प्रयोग जा और जेहि के बाद होता है, जैसे—जा में, जा पर, जेहि पर, जेहि ते आदि।

खड़ी बोली में जो का बहुवचन जिन है। मानस में जिन के तुलनीय रूप हैं—जे (जे जनमे कलिकाल कराला। बाल० १२), जो (जो सहि दुख परछिद्र दुरावा। बाल० २)। कहीं कहीं जिन्ह का भी प्रयोग हुआ है—जिन्ह तप हेतु तजा सब भोगू। (अयो० ६०)

खड़ी बोली में जिन के विकारी रूप जिन (से, में आदि) और जिन्हें हैं, तथा मानस में—जिन्हहि (सुमिरत जिन्हहि रामु मन माहीं। अयो० २१७), जिन्ह (जिन्ह कें रही भावना जैसी। बाल० २४१), जिन्हहि (जिन्हहि न सपनेहुँ खेद। बाल० १४)। एक एक बार जेन्ह (मुनि-मन-मधुप बसहिं जेन्ह माहीं। बाल० १४८), जवनि (बचेहु मोहि जवनि करि देहा। बाल० १३७) और जिन्हही (राम-चरन-पंकज प्रिय जिन्हही। अयो० ८४) का प्रयोग भी मिलता है।

सह-सम्बन्धवाचक सर्वनाम

खड़ी बोली में सह-सम्बन्धवाचक सर्वनाम सो है, जिसका प्रयोग जो के बाद होता है; जैसे—जो सोता है, सो खोता है। किन्तु अब सो के बदले साधारणतः वह का प्रयोग होने लगा है।

मानस मे भी यह सम्बन्धवाचक एकवचन सर्वनाम सो है—बदउँ सो मुनिग्र, लहिग्र जो दीन्हा। (अयो० १६) इसमे सो के अर्थ मे कभी-कभी सोइ और सोई का प्रयोग होता है, यद्यपि ये सो के बलात्मक रूपो की तरह ही सामान्यत: प्रयुक्त होते हैं।

खड़ी बोली मे सो के विकारी रूप उस और उसे हैं। मानस मे इसके विकारी रूप हैं—तासु (विस्वमोहिनी तासु कुमारी। बाल० १३०), तासू (सीस कि चाँपि सकइ कोउ तासू। बाल० १२६), ताहि (ताहि ब्यालसम दाम। बाल० १७५), ताही (सेवहिं सकल चराचर ताही। बाल० १३१), तेहि (जो जेहि भाव, नीक तेहि सोई। बाल० ५), तेही (सकल विघ्न ब्यापहिं नहिं तेही। बाल० ३६)।

खड़ी बोली मे सो के विकारी रूप उस के बाद परसर्गों का प्रयोग होता है और मानस मे ता, ताहि, ताही और तेहि के बाद, जैसे—ता कहुँ, ताहि सन, ताही सों, तेहि पर आदि।

खड़ी बोली मे सो का एकवचन और बहुवचन, दोनो मे प्रयोग होता है। मानस मे सो का बहुवचन रूप ते है, जैसे—जे पर-भनिति सुनत हरषाही। ते बर पुरुष बहुत जग नाही। (बाल० ८)।

ते के विकारी रूप हैं—तिन्ह (तिन्ह कहुँ जग दुर्लभ कछु नाही। अर० ४१), तिन्हहि (तिन्हहि नाग-सुर-नगर सिहाही। अयो० ११३)।

ते के बलात्मक रूप हैं—तेइ (तेइ एहि पावन सुभग सर घाट मनोहर चारि। बाल० ३६), तेई (जो अचवँत, नृप मातहि तेई। अयो० २३१), तेउ (तेउ न पाइ अस समय चुकाही। अयो० ४२), तेऊ (होत तरन-तारन नर तेऊ। अयो० २१७), सोइ (सोइ बहुरग कमल-कुल सोहा। बाल० ३७) सोई (मोरें गृह आवा प्रभु सोई। बाल० १६३)।

निजवाचक सर्वनाम

खड़ी बोली मे निजवाचक सर्वनाम के रूप है—आप निज स्वय।

मानस मे आप के रूप हैं—आपु (आपु-सरिस सबही चह कीन्हा। बाल० ७६), आपू (लीन्ह विधवपन अपजसु आपू। अयो० १८०), आप (राम जासु जस आप बखाना। बाल० १६)। इसके विकारी रूप हैं—आपु (आपु समाज साज सब साजी। अयो० २२६), आपू (प्रभु प्रिय पूज्य पिता-सम आपू। अयो० ३१३), आपुहि (देत चाप, आपुहि चलि गयऊ। बाल० २८४)।

खड़ी बोली में आप के सम्बन्धसूचक रूप अपना, अपने और अपनी हैं। मानस में इसके तुलनीय रूप हैं आपन (आपन मोर परम हित धरमू। अयो० ३०५), आपना (भजि रघुपति पद हित आपना। उ० ४६), आपनि (आपनि दसा बिचारि। बाल० २३०), आपनी (कृपाँ भलाई आपनी, नाथ! कीन्ह भल मोर। अयो० २६६), अपना (उमा! कहउँ मैं अनुभव अपना। अर० ३६) अपने (अपने भगत गुन निज मुख कहे। अर० ४६), अपनें (अपनें सील सुभाय भलाई। अयो० ३००), अपनी (अपनी समुझि साधु सुचि को भा। अयो० २६१), आपुन (आपुन होइ न सोइ। उत्तर० ७२ घ)।

मानस मे निजवाचक सर्वनाम के रूप में सबसे अधिक प्रयोग निज का हुआ है। (द्रष्टव्य मानस शब्दसागर बद्रीदास अग्रवाल पृ० ३४४—३४६) इसका प्रयोग सर्वत्र सम्बन्धसूचक रूप मे हुआ है जैसे—सीय-सहित निज पुर पगुधारा। (बाल० २५), जिज निज मुखनि कही निज होनी। (बाल० ३)।

प्रश्नवाचक सर्वनाम।

खड़ी बोली मे प्रश्नवाचक सर्वनाम कौन और क्या हैं। मानस में कौन के रूप य हैं—को (तुमहि अछत को बरनै पारा। बाल० २७४), केइँ (मनहित तोर प्रिया! केइँ कीन्हा। अयो० २६) कँ (कहु जड जनक! धनुष कै तोरा। बाल० २७०)।

खड़ी बोली म कौन क विकारी रूप किस और किन हैं। मानस मे तुलनीय विकारी रूप ये हैं—केहि (तासु बरब केहि बर बल पाई। अयो० १४), केहि (कहेउ जान बन केहिं अपराधा। अयो० ५४) कही (सुनि धीरज परिहरिअ न केही। बाल० ३३८) काहि (बढ़इ काहि यह लाभ न पावा। बाल० २५२), काही (प्रभु रघुपति तजि सेइअ काही। उत्तर० १२३)।

मानस मे विशेषण के रूप म कवन का प्रयोग हुआ है—अस्तुति करौ कवन बिधि तोरी। (अर० ११) एक स्थान पर काहो का भी प्रयोग हुआ है—राज तजा सो दूषन काही। (बाल० ११०)

मानस मे क्या के अर्थ मे प्रयुक्त रूप हैं—का (का बरषा जब कृषी सुखाने। बाल० २६१) काह (तो मैं काह कोप करि कीन्हा। बाल० २७६), काहा (कहु प्रभु सखा! बूझिऐ काहा। सु० ४३)।

विशेषण

खड़ी बोली की तरह मानस म भी विशेषण का रूप लिंग और वचन के अनुसार बदल जाता है।

साधारणत पुँल्लिग सज्ञापदो के लिए अकारान्त विशेषण का प्रयोग होता है, जैसे—बड, छोट, दाहिन ऊँच, आगिल आदि। लेकिन छन्द के आग्रह से अकारान्त विशेषण का रूप आकारान्त हो जाता है जैसे बूढ से बूढा कठोर से कठोरा आदि। अवधी की प्रकृति के अनुसार अकारान्त शब्दो मे उ, ऊ लगाने की प्रवृत्ति भी मिलती है, जैसे—गगाबू, कठोरु आदि।

पुँलिग सज्ञापदो के लिए प्रयुक्त बहुत-से विशेषण आकारान्त भी हैं, जैसे—सुहावा (सुहावना), फीका।

स्त्रीलिंग सज्ञापदो के लिए प्रयोग मे लाते समय अकारान्त विशेषण का रूप इकारान्त कर दिया जाता है जैसे—बडि (बडि चूक हमारी, अयो० १६), दहिनि (दहिनि आँखि, अयो० २०) थोरि नीचि भोरि मनभावति आदि। लेकिन, विकल्प से विशेषण का रूप ईकारान्त भी हो जाता है जैसे थोरी (ममता थोरी, अयो० १२), भोरी (मति भोरी अयो० ३१८) पोची बिचारी आदि। कुछ स्थितियो मे अकारान्त विशेषण को स्त्रीलिंग रूप देने समय सस्कृत की तरह उसके बाद आकार भी लगाया जाता है जैसे—प्रवीना (कोकिला प्रबीना) एका (राक्षसी एका) आदि।

आकारान्त पुँल्लिग विशेषण के अन्त मे ई लगा कर उसे स्त्रीलिंग बनाया जाता है, जैसे—नीकी फीकी (निज्रहि न्या मुनि लागिहि फीकी। बाल० ६) आदि।

एकवचन से बहुवचन या आदरसूचक एकवचन बनाते समय अकारान्त और आकारान्त विशेषणो को एकारान्त कर दिया जाता है जैसे—बडे, नए, भोरे(भोले), जेते (जितने) आदि।

कही कही पर ब्रजभाषा के ओकारान्त विशेषणो का भी प्रयोग हुआ है, जैसे—बापुरो (बेचारा), सुहावनो (सुहावना) आदि।

अव्यय

इसके अन्तर्गत क्रियाविशेषण समुच्चयबोधक तथा विस्मयादिबोधक शब्द आते हैं। यहाँ केवल उन्ही शब्दो का उल्लेख किया जा रहा है, जिनके रूप खडी बोली से कुछ भिन्नता रखते हैं।

क्रियाविशेषण (क) स्थानवाचक—यहाँ इत, इहाँ। वहाँ उत, उहाँ, तहँ, तहाँ, तहवाँ। कहँ (कहाँ), कहुँ (कही)। जहाँ जहँ, जहवाँ। दहिन (दायें), दूरहि (दूर ही), दूरी (दूर), बाहेर (बाहर)।

(ख) कालवाचक—आज आजु आजू। आज भी अजहुँ, अजहूँ। कभी . कबहुँ, कबहूँ। कल कालि, काली, कालिह। तभी तबहि, तबही, तबहूँ। तुरत तुरित,

तुरता, तुरतहि (तुरत ही)। नितहि (नित्य ही)। फिर फेरि, फिरि, पुनि। बहोरि-बहोरि (बार-बार)।

(ग) परिमाणवाचक–कुछ कछु, कछुक। निपट (बहुत)।

(घ) रीतिवाचक–ग्रस (ऐसे)। जैसे जस, जइसे, जिमि। कस (कैसा, कैसे)। तैसे तस, तइसें, तिमि। नाहिन (नहीं), किन (क्यों न)। मत जनि, जिनि।

समुच्चयबोधक (क) समानाधिकरण–और औरु, अरु, अवरु, औरेहि (और ही)। त (तो), न त (नहीं तो), वरु (भले ही), जातें (जिससे), तातें (जिससे)।

(ख) व्यधिकरण–मानो मनु मनहुँ, मानहुँ, जनु। जद्दपि (यद्यपि), किधौं (या, या तो, न जाने)। तथापि (फिर भी) तदपि, तद्दपि। जो जौ, जौं।

विस्मयादिबोधक जय जए (जय जय), धनि (धन्य), ग्रहह (हाय)।

क्रिया

यहाँ सबसे पहले मानस के क्रियारूपों का कालगत विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है। ये क्रियारूप वर्त्तमान, भूत और भविष्यत् तीनों कालों के हैं।

इस प्रसग मे कुछ बातें विशेष रूप से उल्लेखनीय है। मानस में प्रत्येक काल के उतने ही भेदों का उपयोग हुआ है, जितने की प्रसगगत आवश्यकता रही है। क्रिया के इन कालगत भेदों म कुछ के रूप पुरुष और वचन के अनुसार चलते हैं और कुछ के रूप लिंग और वचन के अनुसार। जहाँ क्रियारूप पुरुष और वचन के अनुसार चलते हैं, वहाँ (क) उत्तमपुरुष एकवचन मे कभी-कभी मैं के स्थान मे हम का भी प्रयोग होता है तथा (ख) अन्यपुरुष के आदरसूचक एकवचन की क्रिया अन्यपुरुष बहुवचन की क्रिया की तरह चलती है।

(क) वर्त्तमान काल

मानस में इसके तीन भेद मिलते हैं–सामान्य, अपूर्ण और सम्भाव्य।

सामान्य वर्त्तमान	प्रत्यय	उदाहरण	काण्ड तथा छन्द-संख्या
उत्तमपुरुष			
एकवचन	–अउँ	बदउँ गुरु-पद-पदुम-परागा।	(बाल० १)
	–अउँ	जिग्रनि मूरि जिमि जोगवत रहऊँ।	(अयो० ५६)
	–औ	जौं कछु कहौं कपट करि तोही।	(अयो० २६)
बहुवचन	–अहिं	पन विदेह कर कहहिं हम।	(बाल० २४६)
	–अही	एक बार काल्हू सन लरही।	(अर० १६)

सामान्य वर्तमान	प्रत्यय	उदाहरण	काण्ड तथा छन्द-संख्या
मध्यमपुरुष			
एकवचन	–असि	जानसि मोर सुभाऊ बरोरू।	(अयो० २६)
	–असी	रे कपि अधम ! मरन अब चहसी।	(लं० ३१)
बहुवचन	–अहु	का पूँछहु तुम्ह, अबहुँ न जाना।	(अयो० १६)
	–अहु	राम ! सत्य गबु जो कछु कहहू।	(अयो० ४३)
	–हु	सो जानइ जेहि देहु जनाई।	(अयो० १२७)
अन्यपुरुष			
एकवचन	–असि	पूछसि लोगन्ह, काह उछाहू।	(अयो० १३)
	–अइ	वक्र चन्द्र महि ग्रसइ न राहू।	(बाल०२८१)
	–अई	छबिगृहँ दीपसिखा जनु बरई।	(बाल० २३०)
	–इ	देइ सद्य फल प्रगट प्रभाऊ।	(बाल० २)
	–ई	जाग जथा सपन भ्रम जाई।	(बाल० ११२)
	–अहि	चितवहि जिमि हरिजन हरि पाई।	(किष्कि०१८)
आदरसूचक			
एकवचन	–अहिं	भरद्वाज मुनि बसहिं प्रयागा।	(बाल० ४४)
	–अही	का आचरजु, भरत अस करही।	(अयो० १८६)
बहुवचन	–अहिं	सादर कहहिं सुनहिं बुध ताही।	(बाल० १०)
	–अही	पुलकि सप्रेम परसपर कहहीं।	(अयो० ७)
	–आहीं	कच बिलोकि अलि अवलि लजाहीं।	(बाल० २४३)
	–हिं	जहँ-तहँ देहिं केकइहि गारी।	(अयो० ४७)
	–हीं	मिलि दस पाँच राम पहिं जाहीं।	(अयो० २४)
	–एँ	जनकु जय-जय सब कहे।	(बाल० २२४)
अपूर्ण वर्तमान			
पुंल्लिंग			
एकवचन	–अत	चहत उड़ावन फूँकि पहारू।	(बाल० २७३)
	–त	परम्य रम्य आराम यह जो रामहिं सुख देत।	(बाल० २२७)
बहुवचन	–अत	दोउ दिसि समुझि कहत सब लोगू।	(अयो० ३२६)
	–त	ससिहि सभीत देत जयमाला।	(बाल० २५४)

अपूर्ण वर्तमान	प्रत्यय	उदाहरण	काण्ड तथा छन्द-संख्या
स्त्रीलिंग			
एकवचन	–अति	आनहु चर्म कहति वैदेही।	(अर० २७)
	–अती	बरनत बरन प्रीति बिलगाती।	(बाल० २०)
	–ति	तदपि होति नहिं सीतलि छाती।	(अयो० ६६)
बहुवचन	×		
सम्भाव्य वर्तमान[1]			
उत्तमपुरुष			
एकवचन	–अउँ	जौं अपने अवगुन सब कहऊँ।	(बाल० १२)
	–औं	कहौं कहाँ लगि नाम बड़ाई।	(बाल० २६)
बहुवचन	×		
मध्यमपुरुष			
एकवचन	–उ	देखु बिभीषण ! दच्छिन आसा।	(लं० १३)
	–असि	सुनु कपि ! जियँ मानसि जनि ऊना।	(किष्क०३)
	–अहि	होत बिलंबु उतारहि पारू।	(अयो० १०१)
	–अही	अब जनि बतबढ़ाव खल ! करही।	(लं० ३०)
	–ही	रे रे दुष्ट ! ठाढ़ किन होही।	(अर० २६)
आदरसूचक			
एकवचन	–इअ	कीजिअ काजु रजायसु पाई।	(अयो० ३७)
	–ईजे	दीन जानि तेहि अभय करीजे।	(किष्कि० ४)
	–ईजै	अब मुनिवर ! बिलंब नहिं कीजै।	(उत्तर० १०)
	–ईजिऐ	आपन दास अमद कीजिऐ।	(किष्कि० १०)
बहुवचन	–अहु	बिनती सुनहु सदासिव ! मोरी।	(अयो० ३७)
	–अहू	मोहि पद-पदुम पखारन कहहू।	(अयो० १००)
	–हु	रामचरन रति देहु।	(बाल० ३)

१. यह काल भेद सम्भावना अथवा आज्ञा की सूचना देता है।

प्रत्यय	उदाहरण	काण्ड तथा छन्द-संख्या
–हू	तजहु ग्रास, निज निज गृह जाहू ।	(बाल० २५२)
–अउ	द्रवउ सो दसरथ अजिर बिहारी ।	(बाल० ११२)

अन्यपुरुष

	प्रत्यय	उदाहरण	काण्ड तथा छन्द-संख्या
एकवचन	–अइ	तुम्हहि कि करइ मनोभव पीरा ।	(बाल० १२६)
	–अउ	कोउ नृप होउ हमहि का हानी ।	(अयो० १६)
	–ऐ	मुनि आचरन करै जनि कोई ।	(बाल० ९)
बहुवचन	×		

(ख) भूतकाल

मानस मे इसके भेद हैं–सामान्य, पूर्ण, अपूर्ण और सम्भाव्य ।

सामान्यभूत	प्रत्यय	उदाहरण	काण्ड तथा छन्द-संख्या
उत्तमपुरुष			
एकवचन	–एउँ	दरस लागि प्रभु राखेउँ प्राना ।	(अर० ३१)
	–यउँ	तेहि गलानि रघुपति पहँ आयउँ ।	(लं० ६४)
	–इउँ	उमा ! कहिउँ सब कथा सुनाई ।	(उत्तर० ५२)
बहुवचन	×		
मध्यमपुरुष			
एकवचन	–एसि	मारेसि मोहि कुठायँ ।	(अयो० ३०)
	–इसि	बहे जात कइ भइसि अधारा ।	(अयो० २३)
	–एउ	पुनि प्रभु ! मोहि बिसारेउ ।	(किष्कि० २)
	–एऊ	जौं अतहु अस करतबु रहेऊ । मागु मागु तुम्ह केहि बिधि कहेऊ ।	(अयो० ३५)
आदरसूचक			
एकवचन	–यहु	भयहु तात ! मो कहुँ जलजाना ।	(सु० १४)

सामान्यभूत	प्रत्यय	उदाहरण	काण्ड तथा छन्द संख्या
मध्यम पुरुष			
बहुवचन	–इहु	भामिनि ! भइहु दूध कइ माखी ।	(अयो० १९)
	–एहु	सत्य कहेहु गिरिभव तनु एहा ।	(बाल० ८०)
अन्यपुरुष			
एकवचन	–एऊ	एहि पापिनिहि बूझ का परेऊ ।	(अयो० ४०)
	–एसि	दोना भरि भरि राखेसि पानी ।	(अयो० ८९)
	–इसि	मारिसि मेघनाद कै छाती ।	(लं० ८४)
आदरसूचक			
एकवचन	–यउ	भयउ कोसिलिहि बिधि अति दाहिन ।	(अयो०१४)
	–एउ	कहेउ राम, सब भाँति सुहावा ।	(अयो० ८६)
	–एऊ	राजा मुदित महासुख लहेऊ ।	(बाल० २४४)
बहुवचन	–एउ	बिप्रन्ह कहेउ बिदेह सन ।	(बाल० ३१२)
	–यउ	सनमुख आयउ दधि अरु मीना ।	(बाल० ३१३)
पूर्णभूत			
पुँल्लिंग			
एकवचन	–अ	तब वह गीध बचन धरि धीरा ।	(अर० ३१)
	–आ	भलेउ कहत दुख रउरेहि लागा ।	(अयो० १६)
	–ईन्ह	बहुरि बिचारु कीन्ह मन माही ।	(बाल० २३७)
	–ईन्हा	सत जोजन तेहिं आनन कीन्हा ।	(सु० २)
बहुवचन	–ए	बोले बचन बिगत सब दूषन ।	(अयो० ४१)
	–ईन्ह	आज सुरन्ह मोहि दीन्ह अहारा ।	(सु० २)
	–ईन्हे	जान-बसन-मनि-भूषन दीन्हे ।	(बाल० ३५१)
स्त्रीलिंग			
एकवचन	–इ	गरि न जीह, मुँह परेउ न कीरा ।	(अयो० १६२)
	–ई	सकुची सिय, मन महुँ मुसुकानी ।	(अयो० ११७)
	–ईन्हि	लीन्हि परीछा कवन बिधि ।	(बाल० ५५)
	–ईन्ही	लीन्ही बोलि गिरीस कुमारी ।	(बाल० ६६)

पूर्णभूत	प्रत्यय	उदाहरण	काण्ड तथा छन्द-संख्या
बहुवचन	–ई	दिन के अन्त फिरी द्वौ अनी ।	(लं० ७२)
	–इन्हि	पठइन्हि आई कही तिहि वाता ।	(सु० २)
	–ईन्हि	अस्तुति सुरन्ह कीन्हि अति हेतु ।	(बाल० ८३)
	–ईन्ही	रुचि बिचारि पहिराबनि दीन्ही ।	(बाल० ३५३)

अपूर्णभूत

पुंल्लिंग

एकवचन	–अत	रह कहावत परम बिरागी ।	(बाल० ३३८)

स्त्रीलिंग

एकवचन	–अति	बिलपति अति कुररी की नाई ।	(अर० ३१)

सामान्यभूत

उत्तमपुरुष

एकवचन	–अतेउँ	जौ जनतेउँ बिनु भुजि भाई ।	(बाल० २५२)
बहुवचन	×		

मध्यमपुरुष

एकवचन	×		
बहुवचन	–अतेहु	करतेहु राज त तुम्हहि न दोषू ।	(अयो० २०७)
	–तहु	जौ तुम्ह औतहु मुनि की नाईं ।	(बाल० २८२)

अन्यपुरुष

एकवचन	–अत	हठि राम सनमुख करत का ।	(अयो० २५६)
	–अति	जो रघुबीर हाति सुधि पाई ।	(सु० १६)
	–त	होत जनम न भरत को ।	(अयो० ३२६)
	–ति	जौं पै हिय न होति कुटिलाई । (	अयो० १८९)
बहुवचन	–अत	करते नहिं बिलबु रघुराई ।	(सु० १६)

(ग) भविष्यत् काल

मानस में भविष्यत्काल के केवल दो भेद मिलते हैं—सामान्य और आज्ञार्थक ।

सामान्य भविष्यत्	प्रत्यय	उदाहरण	काण्ड तथा छन्द-संख्या
उत्तमपुरुष			
एकवचन	–इहउँ	: अवसि काज मैं करिहउँ तोरा।	(बाल० १६८)
	–इहौं	: जब लगि न पाय पखारिहौं।	(अयो० १००)
	–हउँ	जाइ उतरु अब देहउँ काहा।	(बाल० ५४)
	–अब	हरि आनब मैं करि निज माया।	(बाल० १६६)
	–ब	चेरि छाडि अब होब कि रानी।	(अयो० १६)
	–अवि	मैं कछु करवि ललित नरलीला।	(अर० २३)
	–उब	करवाउब बिबाहु बरिआई।	(बाल० ८३)
बहुवचन	–अब	हम सब भाँति करब सेवकाई।	(अयो० १३६)
	–अवि	: हमहुँ कहबि अब ठकुर सोहाती।	(अयो० १६)
मध्यमपुरुष			
एकवचन	– इहसि	: जैहसि तै समेत परिवारा।	(बाल० १७४)
	– अब	: जानब तैं सबही कर भेदा।	(उत्तर० ८५)
	– ब	: तिन्हहि मिलें तै होब पुनीता।	(किष्कि० २८)
बहुवचन	– इहहु	: राम-काजु सब करिहहु।	(सु० २)
	– अब	: समुझब कहब करब तुम्ह जोई।	(अयो० ३२३)
	– इबी	निज किंकरी करि मानिबी।	(बाल० ३३६ छं०)
	– उब	. तो तुम्ह दुख पाउब परिनामा।	(अयो० ६२)
	– ब	: नारि विरहँ तुम्ह होब दुखारी।	(बाल० १३७)
अन्यपुरुष			
एकवचन	–इहि	: तिन्हहि कथा सुनि लागिहि फीकी।	(बाल० ९)
	–इही	तासु नारि निसिचर-पति हरिही।	(किष्कि० २८)
	–अब	उतरु देत मोहि बधब अभागें।	(अर० २६)
आदरसूचक			
एकवचन	–इहंहि	: भजत कृपा करिहहिं रघुराई।	(बाल० २००)
	–अब	जेहिं बन जाइ रहब रघुराई।	(अयो० १०४)
	–अवि	सीय बिआहबि राम।	(बाल० २४५)

सामान्य भविष्यत्	प्रत्यय	उदाहरण	काण्ड तथा छन्द-संख्या
बहुवचन	–इहहिं	खल करिहहिं उपहास।	(बाल० ८)
	–इहैं	: होइहैं सुफल आजु मम लोचन।	(अर० १०)
	–अब	बालि बधब इन्ह, भइ परतीती।	(किष्कि० ७)

आज्ञार्थक भविष्यत्

उत्तमपुरुष

एकवचन तथा बहुवचन ×

मध्यमपुरुष

एकवचन	–एसु	तब जानेसु निसिचर संघारे।	(सु० ४)
बहुवचन	–एहु	: तब लगि मोहि परिखेहु भाई।	(सु० १)

अन्यपुरुष

एकवचन तथा बहुवचन ×

सहायक क्रिया

(क) वर्तमान काल की सहायक क्रिया खड़ी बोली में उत्तमपुरुष एकवचन (मैं) की सहायक क्रिया 'हूँ' है। मानस में हूँ के रूप हैं—अहउँ (तब लगि बैठि अहउँ बटछाहीं। बाल० ५२), अहऊँ (परम चतुर मैं जानत अहऊँ। ल० १७) और हौं (जानत हौं मोहि दीन्ह विधि यह जातना सरीर। अयो० १४६)।

खड़ी बोली के मध्यमपुरुष एकवचन (तू) के लिए है का प्रयोग होता है और मानस में हसि (जो हसि सो हसि, मुहँ मसि लाई। अयो० १६२), अहसि (को तू अहसि सत्य कहु मोही। अयो० १६०) का।

इसी तरह जहाँ खड़ी बोली में मध्यमपुरुष बहुवचन (तुम, तुमलोग) के लिए हो का प्रयोग होता है, वहाँ मानस में अहहु (तुम-पितु मातु-वचन रत अहहू। अयो० ४३) और हहु (जानत हहु बस नाह हमारे। अयो० १४) का। हहु का प्रयोग केवल एक बार हुआ है।

खड़ी बोली में अन्यपुरुष एकवचन (वह) के प्रसंग में है का प्रयोग होता है। मानस में है के अर्थ में प्रयुक्त रूप हैं—अहइ (कोउ कह जौं भल अहइ विधाता। बाल० २२२), अहई (मानुष-तननि मूरि कछु अहई। अयो० १००), है (राम निकाई

रावरी है सबही को नीक। बाल० २६ ख), हइ (हइ तुम्ह कहँ सब भाँति भलाई। अयो० १७४), और अहै (विदित गति सब की अहै। बाल० ३३६ छं०)। इनमे हइ का प्रयोग दो बार हुआ है और अहै का प्रयोग एक बार।

खडी बोली मे अन्यपुरुष बहुवचन (वे) के लिए हैं का प्रयोग होता है। मानस म हे के समानार्थक रूप हैं—अहहिं (भए० जे अहहिं, जे होइहहिं आगें। बाल० १४), अहहीं (विधि-करतब उलटे सब अहहीं। अयो० ११६), हहिं (कोउ कह, चलन चहति हहिं आजू। बाल० ३३५), हैं (है सुत! सब कपि तुम्हहि समाना। सु० १६), आहिं (सुमुखि! कहहु को आहिं तुम्हारे। अयो० ११७), अहैं (बल विनय विद्या सील सोभा सिंधु इन्ह से एइ अहैं। बाल० ३११)। इनमें हैं का प्रयोग दो बार हुआ है और अहैं का एक बार।

(ख) भूतकाल की सहायक क्रिया खडी बोली के सभी पुरुषो मे लिंग और वचन के अनुसार क्रमश: था, थी, थे और थी का प्रयोग होता है। इनके सिवा हो और रह से बनने वाले हुआ हुई, हुए रहा, रहे आदि रूपों का भी प्रयोग होता है।

मानस मे भूतकाल की सहायक क्रियाओ के भ और रह रूप मिलते हैं। पुंल्लिंग एकवचन मे भा (भा मोहिहें कछु बड भ राधा। अयो० ४२), भयउ (भयउ सुद्ध करि उलटा जापू। बाल० १६), भयउँ (सुखी भयउँ प्रभु चरन प्रसादा। बाल०१२०) भयऊ (पुनि नभ नु मडल सम भयऊ। बाल० २६१), भयो (जो सुमिरत भयो भाग तें तुलसी तुलसीदासु। बाल० २६), रहा (रहा प्रथम, अब ते दिन बीते। अयो० १७), रहेउ (व्यापि रहेउ ससार महुँ माया-कटक प्रचड। उत्तर० ७१ ख) रहउँ (तब अति रहेउँ अचेत। बाल० ३० क), रहेऊँ (तेहि समाज गिरिजा! मैं रहेऊँ। बाल० १८५), रहेऊ (जो मतहु अस करतब रहेऊ। अयो० ३५)—इन शब्दो का प्रयोग होता है।

पुंल्लिंग बहुवचन मे भए (मिटा मोदु मन भए मलीने। अयो० ११८), भे (भगत-सिरोमनि भे प्रहलादू। बाल० २६) और रहे (सब उपमा कवि रहे जुठारी। बाल० २३०) का प्रयोग होता है।

स्त्रीलिंग एकवचन मे भइ (भइ रघुपति-पद-प्रीति प्रतीती। बाल० ११६) भई (प्रगट भई तपपुंज मही। बाल० २११ छं०) और रही (गई रही देखन फुलवाई। बाल० २२८) शब्द आते हैं।

स्त्रीलिंग बहुवचन मे भईं (भईं हृदयँ हरषित, सुख भारी। बा० १९०) और रहीं (अनिमादिक सुख-संपदा रहीं अवध सब छाइ। अयो० २१) तथा कभी कभी भईं (भाखे लखनु कुटिल भईं भौंहें। बाल० २५२) का प्रयोग मिलता है।

(ग) भविष्यत् काल की सहायक क्रिया इसके रूप हो से निर्मित होते है, जैसे–होई (तोर कहा जेहि दिन फुर होई। अयो० १५), होइहि, होइहिं आदि। भविष्यत् काल की सहायक क्रिया के रूप सामान्य भविष्यत् की तरह चलते हैं।

पूर्वकालिक क्रिया खडी बोली मे देख कर, ले कर आदि पूर्वकालिक क्रिया-रूपो की रचना धातु (देख् ले, खा आदि) मे कर प्रत्यय लगा कर होती है। मानस मे पूर्वकालिक क्रिया रूप धातु मे इ ,ई, ऐ प्रत्यय लगा कर बनाए जाते है, जैसे, देखि (देख कर), बुझाई (बुझा कर) और लै (लि कर)। उदाहरण देखि राम छवि नैन जुडाने। कहहु बिप्र निज कथा बुझाई।

संयुक्त क्रिया संयुक्त क्रिया वह क्रिया है, जिसमे दो धातुओ का एक साथ प्रयोग होता है, जैसे —कह देना, खा लेना आदि। मानस मे इसकी रचना पहली धातु मे इन प्रत्ययो के संयोग द्वारा होती है –इ (दलकि उठेउ, अर्थात् दलक उठे), –अन (देखन चहही, अर्थात देखना चाहते है), –न (देन पठाए अर्थात देने भेजा), –आ (देखा चहहिं, अर्थात् देखना चाहते है)। –आइ (देखाइ दिहेसु) –ना (जाना चहहिं),– ए (दिए डारि), –अन (पूँछन चले), –अति (करति रहति), –अइ (बरनइ पारा)।

प्रेरणार्थक क्रिया : मानस मे प्रेरणार्थक क्रिया धातु के बाद –आ, –वा और –रा प्रत्यय लगा कर बनायी जाती है। प्रत्यय लगाने के बाद क्रिया का रूप सकर्मक क्रिया की तरह चलता है, जैसे, बैठ+आ= बैठा से बैठाए पौढ–आ=पौढा से पौढाए, कर+वा=करवा से करवावा, दिख+रा=दिखरा से दिखरावा। केवल एक धातु बैठ (बइठ) मे –आर का योग होता है, जैसे–बैठ+आर=बैठार से बैठारे (सचिवँ सँभारि राउ बैठारे। अयो० ४४)।

❁

रामचरितमानस की विषय-सूची

बालकाण्ड

(क) भूमिका

१. प्रस्तावना : पूर्वार्द्ध (दो० १—२९)
मंगलाचरण, वन्दना, कवि की विनम्रता, राम-नाम की महिमा; देवताओं तथा रामकथा के पात्रों की वन्दना।

२ प्रस्तावना उत्तरार्द्ध (दो० ३०—४३)
रामकथा की परम्परा और महिमा; मानस की रचना-तिथि, मानस का सांग रूपक।

३. याज्ञवल्क्य-भरद्वाज-संवाद (दो० ४४—४७)

४. शिवचरित (दो० ४७—१०४)
सती का मोह, दक्ष-यज्ञ, पार्वती-चरित।

५. शिव-पार्वती-संवाद (दो० १०५—१२०)
(उपसंवाद याज्ञवल्क्य-भरद्वाज)

६. अवतार के कारण (दो० १२१—१८४)
सामान्य कारण; पाँच विशिष्ट कारण: जय-विजय, जलन्धर, नारद-मोह, मनु-शतरूपा और प्रतापभानु की कथाएँ।

(ख) रामचरित

१. जन्म और बाललीला (दो० १८५—२०५)
विष्णु की प्रतिज्ञा, दशरथ-यज्ञ, राम का जन्म, जन्मोत्सव, बालक राम का वर्णन, विराट्-दर्शन, शिक्षा-ग्रहण, मृगया।

२ मिथिला की यात्रा (दो० २०६—२३८)
विश्वामित्र का आगमन, ताड़का-वध, अहल्योद्धार, जनक का स्वागत, राम लक्ष्मण का जनकपुर-दर्शन, पुष्पवाटिका।

३. धनुर्यज्ञ (दो० २३९—२८६)
रंगभूमि में राम-लक्ष्मण और सीता का आगमन, राजाओं के असफल प्रयत्न, लक्ष्मण की गर्वोक्ति, राम द्वारा धनुर्भंग; परशुराम का आगमन।

४ विवाह (दो० २८६—३२६)

बरात, विवाहोत्सव, विदाई अयोध्या मे बरात का स्वागत ।

अयोध्याकाण्ड

(क) रामचरित

१ निर्वासन (दो० १—८०)

अभिषेक की तैयारियाँ, मन्थरा-कैकेयी सवाद, दशरथ कैकेयी-सवाद, निर्वासन की आज्ञा, अयोध्या मे शोक, राम कौशल्या-सवाद, सीता का निवेदन कौशल्या और राम द्वारा शिक्षा सीता का अनुरोध, लक्ष्मण का आग्रह, सुमित्रा की आशिष राम-लक्ष्मण सीता का प्रस्थान ।

२ चित्रकूट-यात्रा (दो० ८१—१४१)

सुमन्त्र का रथ दशरथ का सन्देश, शृ गवेरपर सुमन्त्र की विदाई, गगा, प्रयाग (तीर्थराज का वर्णन), भरद्वाज, यमुना के पार तापस, ग्रामवासी, वाल्मीकि आश्रम, चित्रकट कोल-किरात ।

(ख) दशरथ की मृत्यु (दो० १४२—१५६)

अयोध्या मे सुमन्त्र की वापसी, दशरथ की मृत्यु ।

(ग) भरत-चरित

१ अयोध्या मे (दो० १५६—१८५)

विभिन्न सवाद, मन्थरा पर अत्याचार, दशरथ की अन्त्येष्टि, भरत द्वारा राज्य की अस्वीकृति ।

२ चित्रकूट-यात्रा (दो० १४६—२०)

गुह की आशका, भरत-गुह-भेंट राम की साँथरी, प्रयाग, भरद्वाज, यमुना के पार बृहस्पति-इन्द्र-सवाद ।

३ राम-भरत-मिलन (दो० २२५—२५२)

सीता का स्वप्न, लक्ष्मण का क्रोध, राम-भरत-मिलन, दशरथ की क्रिया, वनवासी, सीता द्वारा माताओ की सेवा, कैकेयी का पश्चात्ताप ।

४ प्रथम सभा (दो० २५३—२८९)

वसिष्ठ-भरत का परामर्श भरत की ग्लानि, राम द्वारा भरत की सान्त्वना, देवताओ की आशका, भरत-विनय, जनक का आगमन, जनक द्वारा भरत-महिमा ।

५. द्वितीय सभा (दो० २९०—३१२)
जनक-भरत-परामर्श, देवताओं की आशंका, भरत-विनय, देवमाया, राम की आज्ञा, भरत की स्वीकृति, भरत द्वारा कूप-स्थापना, चित्रकूट-भ्रमण ।

६. तृतीय सभा (दो० ३१३—३२२)
राम द्वारा राजधर्म की शिक्षा, पादुका-प्रदान, भरत आदि की विदाई, वापसी यात्रा ।

७. उपसंहार (दो० ३२३—३२६)
पादुका-स्थापना, नन्दिग्राम में भरत का निवास, भरत-महिमा ।

अरण्यकाण्ड

(क) प्रस्तावना (दो० १—६)
जयन्त-कथा, चित्रकूट से प्रस्थान, अत्रि की स्तुति, अनसूया द्वारा नारी-धर्म-प्रतिपादन ।

(ख) अरण्य-प्रवेश (दो० ७—१६)
विराध-वध, शरभंग, राम की प्रतिज्ञा (निसिचर हीन करउँ महि), सुतीक्ष्ण, अगस्त्य, जटायु से भेंट, पंचवटी-निवास, राम-लक्ष्मण-संवाद (ज्ञान और भक्ति) ।

(ग) सीता-हरण (दो० १७—२९)
शूर्पणखा, खर दूषणादि-वध, शूर्पणखा-रावण-संवाद, रावण का संकल्प, छाया-सीता, रावण-मारीच-संवाद, कनक-मृग, सीता-हरण ।

(घ) सीता की खोज (दो० ३०—४६)
राम की व्याकुलता, जटायु की सद्गति, कबन्ध-वध, शबरी से भेंट (नवधा भक्ति), राम-नारद-संवाद ।

किष्किन्धाकाण्ड

(क) राम-सुग्रीव-सख्य (स० १—१७)
राम-हनुमान्-संवाद, राम-सुग्रीव-संवाद, बालिवध, सुग्रीव राजा और अंगद युवराज, वर्षा-ऋतु एवं शरद्-ऋतु का वर्णन ।

(ख) वानरों द्वारा सीता की खोज (दो० १८—३०)
सुग्रीव द्वारा वानरों का बुलावा, सुग्रीव पर लक्ष्मण का क्रोध; राम से सुग्रीव का निवेदन, वानरों का प्रेषण, दक्षिण की ओर नील, अंगद, हनुमान् और जाम्बवान् का प्रस्थान, स्वयंप्रभा, वानरों की निराशा;

सम्पाति द्वारा सीता का समाचार, जाम्बवान् द्वारा हनुमान् को समुद्र-लंघन का आदेश।

सुन्दरकाण्ड

(क) पूर्वार्द्ध हनुमच्चरित (दो० १—३५)

समुद्र लंघन लंका-प्रवेश, विभीषण से भेंट सीता-रावण संवाद, त्रिजटा सीता-संवाद, सीता-हनुमान्-संवाद, वाटिका-ध्वंस, अक्षय-वध, ब्रह्मास्त्र-बद्ध हनुमान्, रावण-हनुमान्-संवाद, लंका-दहन, सीता से विदाई, मधुवन-विध्वंस, राम हनुमान्-संवाद (सीता का सन्देश)।

(ख) उत्तरार्द्ध

१ विभीषण की शरणागति (दो० ३६—५१)

मन्दोदरी की शिक्षा, रावण-सभा में विभीषण पर पाद-प्रहार; विभीषण द्वारा लंका-त्याग, सुग्रीव की आशंका, राम-विभीषण-संवाद, विभीषण द्वारा सागर से विनय करने का परामर्श।

२ रावण के गुप्तचर (दो० ५२—५७)

शुक के नेतृत्व में गुप्तचरों का प्रेषण, लक्ष्मण द्वारा उनकी रक्षा और प्रत्यावर्त्तन, रावण के नाम लक्ष्मण का पत्र, रावण-शुक-संवाद, शुक पर पादप्रहार और उसका लंका-त्याग; राम द्वारा शुक की शाप-मुक्ति।

३ सागर का परामर्श (दो० ५८—६०)

समुद्र के तट पर राम का प्रायोपवेशन, राम का क्रोध, सागर का ब्राह्मण के रूप में आविर्भाव और नल-नील द्वारा सेतु-निर्माण का प्रस्ताव।

लंकाकाण्ड

(क) युद्ध के पूर्व

१ सेतु-निर्माण (दो० १—८)

शिवलिंग-स्थापना, समुद्र-पारगमन, मन्दोदरी का अनुरोध।

२ रावण सभा (दो० ९—१६)

प्रहस्त का परामर्श, रावण के मुकुट-छत्र का ध्वंस, मन्दोदरी द्वारा राम के विराट् रूप का वर्णन।

३ अंगद-दौत्य (दो० १७—३९)

प्रहस्त-वध, अंगद-रावण-संवाद; अंगद-पैज; मन्दोदरी की शिक्षा, राम-अंगद-संवाद।

(ख) युद्ध

१ पहला दिन (दो० ३९—४८)

घमासान युद्ध, राक्षसो का पलायन, रावण का क्रोध, राक्षसो की विजय हनुमान और अगद का लका मे प्रवेश, अकम्पन और अतिकाय की माया द्वारा अँधेरा, राम के अग्निवाण द्वारा अँधेरे का नाश।

२ दूसरा दिन (दो० ४८—६२)

रावण की सभा, माल्यवन्त की चेतावनी, लक्ष्मण-मेघनाद का द्वन्द्व युद्ध लक्ष्मण को मूर्च्छा, सुषेण का परामर्श हनुमान की हिमालय-यात्रा, कालनेमि की माया और उसका वध हनुमान भरत सवाद, लक्ष्मण के लिए राम का विलाप, लक्ष्मण का स्वास्थ्य लाभ, हनुमान् द्वारा सुषेण को लका मे पहुँचाना।

३ तीसरा दिन (दो० ६२—७२)

कुम्भकर्ण का निद्रा भग, कुम्भकर्ण की शिक्षा, रणभूमि मे विभीषण कुम्भकर्ण सवाद, राम द्वारा कुम्भकर्ण वध।

४ चौथा दिन (दो० ७२—७८)

मेघनाद युद्ध, नागपाश, मेघनाद-यज्ञ का विध्वस, लक्ष्मण द्वारा मेघनाद वध।

५ पाँचवाँ दिन (दो० ७९—९८)

घम सान युद्ध, राम का धर्मरथ, लक्ष्मण रावण युद्ध, रावण-यज्ञ का विध्वस, इन्द्ररथ, राम रावण का सवाद और युद्ध, रावण की माया, असख्य रावण।

६ छठा दिन (दो० ९९—१०५)

त्रिजटा का स्वप्न, सीता का विलाप राम द्वारा रावण वध, मन्दोदरी का विलाप।

(ग) युद्ध के पश्चात (दो० १०६—१२१)

विभीषण का अभिषेक, हनुमान सीता सवाद, अग्निपरीक्षा, देवताओ की स्तुति, दशरथ दर्शन, इन्द्र द्वारा मृत वानर पुनर्जीवित, पुष्पक पर अयोध्या को यात्रा, त्रिवेणी से हनुमान का प्रेषण, भरद्वाज और गुह से भेंट।

उत्तरकाण्ड

(क) रामचरित

१ राम का अभिषेक (दो० १—२०)

अयोध्या मे हनुमान् का आगमन, सम्बन्धियो से राम सीता-लक्ष्मण की

भेंट, अयोध्यावासियो का आनन्द, राम का अभिषेक, बन्दियो के वेष मे वेदो की स्तुति, शिव की स्तुति, हनुमान को छोड कर वानरों की विदाई।

२ रामराज्य का वर्णन (दो० २१—३५)
रामराज्य, अश्वमेध-यज्ञ, सीता का सेवा-भाव, लव-कुश का जन्म, नारद आदि मुनियो का आगमन, अवधपुरी का सौन्दर्य, अगस्त्य-आश्रम, मुनियो द्वारा रामभक्ति की याचना।

३ रामकथा का निर्वहण (दो० ३६—५२)
राम द्वारा सन्तो के लक्षणो का प्रतिपादन, भक्तिमार्ग के सम्बन्ध मे पुरवासियो को राम का उपदेश, वसिष्ठ का निवेदन, मूल शिव-पार्वती-सवाद का अन्त।

(ख) भुशुण्डि-गरुड-सवाद (उपसवाद शिव-पार्वती)

१ गरुड का मोह (दो० ५३—७३)
पार्वती की जिज्ञासा (भुशुण्डि और गरुड के विषय मे), शिव का उत्तर, माया के विषय मे भुशुण्डि का भाषण।

२ भुशुण्डि-चरित (दो० ७४—११४)
भुशुण्डि के मोह निवारण की कथा, भुशुण्डि के पूर्वजन्मो की कथा—(अ) शैव शूद्र के रूप मे (कलियुग), (आ) सगुणोपासक ब्राह्मण के रूप म (लोमश के शाप के फलस्वरूप भुशुण्डि काक बन जाते हैं)।

३ गरुड़ के प्रश्न (दो० ११५ - १२५)
ज्ञान और भक्ति आदि के विषय मे गरुड के प्रश्न, भुशुण्डि का उत्तर, गरुड का धन्यवाद-ज्ञापन और वैकुण्ठ के लिए प्रस्थान।

(ग) उपसहार (दो० १२६–१३०)
शिव-पार्वती-उपसवाद का समापन, तुलसी का निवेदन।

मानस-कौमुदी की विषय-सूची

बालकाण्ड

१ मगलाचरण १
२ वन्दना ३
३ तुलसी की विनम्रता ७
४ रामनाम की महिमा १२
५ रामकथा की परम्परा १६
६ मानस का साग रूपक १८
७ भरद्वाज का मोह २२
८ सती का मोह २३
९ सती द्वारा राम की परीक्षा २४
१० शिव का सकल्प २६
११ पावती के प्रश्न २७
१२ शिव का उत्तर २९
१३ अवतार हेतु ३१
१४ विष्णु की प्रतिज्ञा ३२
१५ दशरथ-यज्ञ ३४
१६ राम का जन्म ३५
१७ नामकरण ३६
१८ बालचरित ३७
१९ अहल्योद्धार ३८
२० जनकपुर दर्शन ३९
२१ पुष्पवाटिका ४३
२२ रगभमि मे राम-लक्ष्मण ४८
२३ सीता का आगमन ५०
२४ लक्ष्मण की गर्वोक्ति ५२
२५ धनुर्भंग ५४
२६ परशुराम का आगमन ५९
२७ परशुराम का क्रोध ५९
२८ परशुराम का मोहभग ६४
२९ जनकपुर की सजावट ६६
३० बरात के शकुन ६८
३१ राम-सीता विवाह ६९
३२ लहकौर ७२
३३ बरात की विदाई ७३
३४ अवध मे उल्लास ७८

अयोध्याकाण्ड

३५ अभिषेक की तैयारियाँ ७९
३६ मन्थरा का सम्मोहन ८३
३७ कैकेयी मन्थरा-सवाद ८४
३८ कैकेयी दशरथ सवाद ८९
३९ निर्वासन की आज्ञा ९५
४० राम-कौशल्या सवाद १००
४१ कौशल्या का निवेदन १०२
४२ सीता का आग्रह १०४
४३ राम लक्ष्मण सवाद १०६
४४ सुमित्रा की आशिष १०७

४५ लक्ष्मण गुह-संवाद १०८
४६ सुमन्त्र की विह्वलता ११०
४७ केवट की भक्ति १११
४८ तापस का प्रसंग ११३
४९ ग्रामवासी नर-नारियाँ ११३
५० राम के निकेत ११७
५१ चित्रकूट ११९
५२ वनवासियों का अनुराग १२०
५३ घोड़ों का विरह १२१
५४ दशरथ मरण १२२
५५ भरत कैकेयी संवाद १२३
५६ भरत-कौशल्या संवाद १२५
५७ भरत द्वारा राज्य का अस्वीकरण १२६
५८ भरत गुह मिलन १२७
५९ राम की सांथरी १२९
६० भरद्वाज की भरत-महिमा १३०
६१ भक्तशिरोमणि भरत १३१
६२ लक्ष्मण का क्रोध १३३
६३ राम भरत मिलन १३५
६४ वनवासियों का आतिथ्य १३७
६५ भरत की ग्लानि १ ९
६६ जनक की भरत महिमा १४२
६७ देवताओं की चिन्ता १४३
६८ भरत विनय १४४
६९ राम की आज्ञा १४६
७० भरत की विदाई १४७
७१ नन्दिग्राम में भरत १४८
७२ तुलसी की भरत महिमा १५०

अरण्यकाण्ड

७३ नारी धर्म १५१
७४ शरभंग १५२
७५ सुतीक्ष्ण १५३
७६ ज्ञान और भक्ति १५४
७७ शूर्पणखा १५६
७८ रावण का संकल्प १५७
७९ छाया सीता १५८
८० कनकमृग १५८
८१ सीता-हरण १५९
८२ राम की व्याकुलता १५९
८३ जटायु की सद्गति १६०
८४ नवधा भक्ति १६१
८५ राम का विरह १६२
८६ पम्पा-सरोवर १६४
८७ राम-नारद-संवाद १६५

किष्किन्धाकाण्ड

८८ काशी की महिमा १६८
८९ हनुमान् से मिलन १६८
९० मित्र कुमित्र के लक्षण १६९
९१ बालि-सुग्रीव का द्वन्द्व युद्ध १७०
९२ राम-बालि-संवाद १७०
९३ वर्षा ऋतु १७२
९४ शरद ऋतु १७३

सुन्दरकाण्ड

९५ हनुमान् का समुद्र लघन १७६
९६ हनुमान् का लका प्रवेश १७७
९७ विभीषण मे भेट १७८
९८ सीता रावण सवाद १७९
९९ सीता त्रिजटा सवाद १८०
१०० सीता हनुमान सवाद १८१
१०१ लका-दहन १८३
१०२ सीता का सन्देश १८५
१०३ रावण को विभीषण की शिक्षा १८६
१०४ विभीषण पर पाद प्रहार १८७
१०५ विभीषण की शरणागति १८७
१०६ राम-विभीषण-सवाद १८९
१०७ सागर द्वारा सेतु-निर्माण का परामर्श १९०

लंकाकाण्ड

१०८ शिवलिंग की स्थापना १९३
१०९ प्रहस्त का परामर्श १९३
११० चन्द्र-कलक १९५
१११ रावण का अखाडा १९५
११२ अगद पैज १९६
११३ मन्दोदरी की शिक्षा १९
११४ राक्षसो की सद्गति १९८
११५ माल्यवन्त की चेतावनी १९९
११६ भरत-हनुमान्-सवाद २००
११७ लक्ष्मण के लिए राम का विलाप २०२
११८ कुम्भकर्ण का उपदेश २०३
११९ कुम्भकर्ण-वध २०४
१२० नागपाश २०५
१२१ मघनाद-वध २०६
१२२ रावण का प्रस्थान २०७
१२३ धर्मरथ २०८
१२४ रावण की माया २१०
१२५ सीता त्रिजटा सवाद २११
१२६ रावण-वध २१२
१२७ म दोदरी का विलाप २१४
१२८ सीता की अग्निपरीक्षा २१५
१२९ द थ-दर्शन २१७
१३० निषाद से भेट २१८

उत्तरकाण्ड

१३१ अयोध्या मे प्रत्यागमन २१९
१३२ रामराज्य २२१
१३३ सीता का सेवाभाव २२३
१३४ रामराज्य की अवधपुरी २२३
१३५ सन्तो के लक्षण २२४
१३६ भक्तिमार्ग की सुगमता २२६
१३७ वसिष्ठ का निवेदन २२८
१३८ पार्वती का कृतज्ञता-ज्ञापन २२९

१३९ गरुड का मोह · २३०
१४०. माया-विनाशिनी भक्ति २३४
१४१ भुशुण्डि का मोह · २३२
१४२. मोहि सेवक सम प्रिय कोउ नाही २३३
१४३ कलियुग २३५
१४४ ज्ञान और भक्ति २३९
१४५. दास्यभाव की अनिवार्यता : २४०
१४६. गरुड के सात प्रश्न २४२
१४७ गरुड की कृतज्ञता २४५
१४८. शिव-पार्वती-उपसवाद का समापन २४५
१४९. तुलसी का निवेदन २४६

१५० कुछ अवशिष्ट सूक्तियां २४९

१ मंगलाचरण

वर्णानामर्थसङ्घानां रसानां छन्दसामपि ।
मङ्गलानां च कर्त्तारौ वन्दे वाणीविनायकौ ॥ १ ॥

भवानीशङ्करौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तस्थमीश्वरम् ॥ २ ॥

वन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शङ्कररूपिणम् ।
यमाश्रितो हि वक्रोऽपि चन्द्रः सर्वत्र वन्द्यते ॥ ३ ॥

सीतारामगुणग्रामपुण्यारण्यविहारिणौ ।
वन्दे विशुद्धविज्ञानौ कवीश्वरकपीश्वरौ ॥ ४ ॥

उद्भवस्थितिसंहारकारिणीं क्लेशहारिणीम् ।
सर्वश्रेयस्करीं सीतां नतोऽहं रामवल्लभाम् ॥ ५ ॥

वर्णों (अक्षरों), अर्थसंघों (अर्थसमूहों) तथा रसों के साथ छन्दों की भी सृष्टि करनेवाली सरस्वती (वाणी), और सभी प्रकार के मंगल (कल्याण) करनेवाले गणेश (विनायक) की मैं वन्दना करता हूँ ॥ १ ॥

मैं पार्वती (भवानी) और शिव की वन्दना करता हूँ जो क्रमशः श्रद्धा और विश्वास स्वरूप हैं तथा जिनकी कृपा के बिना सिद्ध भी अपने अन्तःकरण (हृदय) में अवस्थित (विद्यमान) ईश्वर के दर्शन नहीं कर पाते ॥ २ ॥

मैं शंकर-रूपी गुरु की वन्दना करता हूँ जो (शिव की तरह ही) बोधमय और नित्य (अमर) हैं तथा जिनका आश्रय पाकर वक्र चन्द्रमा (१. द्वितीया का टेढ़ा चन्द्रमा, २. तुलसी जैसा वक्र या कुटिल व्यक्ति) भी सर्वत्र पूजा जाता है ॥ ३ ॥

मैं सीता और राम के गुणों के पवित्र वन में विहार करनेवाले तथा विशुद्ध विज्ञानवाले (सीता और राम के वास्तविक स्वरूप के ज्ञाता) कवीश्वर वाल्मीकि और कपीश्वर हनुमान् की वन्दना करता हूँ ॥ ४ ॥

मैं विश्व की उत्पत्ति, स्थिति और विनाश करनेवाली, दुःख हरनेवाली तथा सभी प्रकार के कल्याण करनेवाली राम की वल्लभा (प्रिया) सीता को प्रणाम करता हूँ ॥ ५ ॥

यन्मायावशवर्ति विश्वमखिलं ब्रह्मादिदेवासुरा
यत्सत्त्वादमृषैव भाति सकलं रज्जौ यथाहेर्भ्रमः ।
यत्पादप्लवमेकमेव हि भवाम्भोधेस्तितीर्षावतां
वन्देऽहं तमशेषकारणपरं रामाख्यमीशं हरिम् ॥ ६ ॥
नानापुराणनिगमागमसम्मतं यद्
रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि ।
स्वान्तःसुखाय तुलसी रघुनाथगाथा—
भाषानिबन्धमतिमञ्जुलमातनोति ॥ ७ ॥

यह समस्त विश्व तथा ब्रह्मा आदि देवता और असुर जिनकी माया के अधीन हैं; जिनके सामर्थ्य से यह समस्त जगत् मिथ्या होते हुए भी उसी प्रकार सत्य प्रतीत होता है, जिस प्रकार रज्जु (रस्सी) में (सर्प का) भ्रम; जिनके चरण संसार-समुद्र को पार करने की एकमात्र नौका हैं, और जो इस सृष्टि की रचना के अशेष (एकमात्र) कारण हैं, मैं ऐसे राम नामवाले भगवान् (ईश और हरि) की वन्दना करता हूँ ॥६ ॥

विभिन्न पुराणों, निगमों (वेदों) और आगमों (शास्त्रों) से सम्मत, जो कुछ रामायण में कहा गया है, उससे तथा कुछ अन्य स्रोतों की सामग्री से युक्त राम की कथा अपने हृदय के सन्तोष के लिए मैं तुलसीदास लोकभाषा में सुन्दर रीति से लिख रहा हूँ ॥ ७ ॥

सो०—जो सुमिरत सिधि[1] होई गन-नायक[2] करिबर-बदन[3] ।
करउ अनुग्रह सोइ बुद्धि-रासि सुभ-गुन सदन[4] ॥ १ ॥
मूक होइ बाचाल[1], पंगु चढ़इ गिरिबर गहन ।
जासु कृपाँ, सो दयाल द्रवउ[2] सकल कलि-मल-दहन[3] ॥ २ ॥
नील-सरोरुह-स्याम[1], तरुन-अरुन-बारिज-नयन[2] ।
करउ सो मम उर धाम[3] सदा छीरसागर-सयन[4] ॥ ३ ॥
कुंद-इंदु-सम[1] देह उमा-रमन करुना-अयन[2] ।
जाहि दीन पर नेह करउ कृपा मर्दन-मयन[3] ॥ ४ ॥

---

१ १ सिद्धि, २ गणों के नायक, गणेश, ३ विशाल हाथी के मुखवाले; ४ शुभ गुणों के भाण्डार ।

२. १ खूब बोलनेवाला, २ कृपा करें; ३ कलियुग के पापों को जलानेवाले ।

३ १ नीले कमल की तरह श्याम, २ तुरन्त विकसित लाल कमल-जैसे नेत्रोंवाले, ३ घर, निवास, ४ क्षीरसमुद्र में शयन करनेवाले (विष्णु) ।

४. १ उजले कमल और चन्द्रमा के समान, २ करुणा के अयन (घर), करुणामय; ३ कामदेव को पराजित करनेवाले ।

बंदउँ गुर-पद-कंज[1] कृपा सिंधु नररूप हरि[2]।
महामोह तम-पुंज[3] जासु बचन रबि-कर-निकर[4] ॥ ५ ॥

२ वन्दना

बंदउँ गुर पद-पदुम-परागा[1]। सुरुचि सुबास[2] सरस अनुरागा ॥
अमिय-मूरिमय चूरन चारू[4]। समन[5] सकल भव-रुज परिवारू ॥
सुकृति[7] -संभु-तन बिमल बिभूती[8]। मंजुल-मंगल-मोद-प्रसूती[9] ॥
जन-मन-मंजु-मुकुर-मल-हरनी[10]। किएँ तिलक गुन-गन बस-करनी ॥
श्रीगुर-पद-नख-मनि-गन-जोती। सुमिरत दिब्य दृष्टि हियँ होती ॥
दलन मोह-तम[11] सो सप्रकासू। बड़े भाग उर आवइ जासू ॥
उघरहिं बिमल बिलोचन ही के। मिटहिं दोष-दुख भव-रजनी के[12] ॥
सूझहिं राम-चरित मनि-मानिक। गुपुत प्रगट जहँ जो जेहि खानिक[13] ॥
दो०—जथा सुअंजन अंजि दृग साधक, सिद्ध, सुजान।
कौतुक[14] देखत सैल बन, भूतल भूरि निधान ॥ १ ॥
गुर-पद-रज[1] मृदु-मंजुल अंजन। नयन-अमिअ[2], दृग-दोष-बिभंजन[3] ॥
तेहिं करि बिमल बिबेक-बिलोचन[4]। बरनउँ राम-चरित भव-मोचन[5] ॥
बंदउँ प्रथम महीसुर[6]-चरना। मोह-जनित[7] संसय सब हरना ॥
सुजन-समाज सकल-गुन-खानी। करउँ प्रणाम सप्रेम-सुबानी ॥
साधु-चरित सुभ चरित कपासू। निरस, बिसद गुनमय फल जासू[9] ॥
जो सहि दुख परछिद्र[10] दुरावा। बंदनीय जेहिं जग जस पावा ॥
मुद[11] - मंगलमय संत - समाजू। जो जग जंगम तीरथराजू[12] ॥

---

५. १ गुरु के चरण-कमल; २ मनुष्य के रूप में साक्षात् भगवान्, ३ महान् मोह (अज्ञान) के घने अन्धकार (के लिए), ४ सूर्य की किरणों का समूह।

१. १ गुरु के चरण-कमलों का पराग (धूल); २ सुगन्ध, ३ लालिमा, प्रेम, ४ अमृत की जड़ी का सुन्दर चूर्ण, ५ शमन करनेवाला, दूर करनेवाला ६. संसार के सभी रोग, ७ पुण्य, ८ भस्म, ९ आनन्द उत्पन्न करनेवाला, १० लोगों के मन-रूपी सुन्दर दर्पण की मैल पोंछनेवाली, ११ अज्ञान का अन्धकार, १२ संसार-रूपी रात्रि के, १३ खान; १४ खेल-खेल में, अनायास ही।

२. १ गुरु के चरणों की धूल; २ नेत्रों के लिए अमृत, ३ आँखों के सभी दोषों को दूर करनेवाला; ४ विवेक-रूपी नेत्र; ५ संसार के बन्धनों से मुक्त करनेवाला; ६ ब्राह्मण; ७ मोह (अज्ञान) से उत्पन्न, ८ उज्ज्वल कपास-जैसा, ९ जिसका फल निःस्वाद (तात्कालिक फल के आनन्द से रहित), किन्तु उज्ज्वल और गुणमय (१. गुणवाला, २. सूतवाला) है; १० दूसरों का दोष या नंगापन, ११ आनन्द

राम-भक्ति जहँ सुरसरि[१३]-धारा। सरसइ[१४] ब्रह्म-विचार-प्रचारा[१५]॥
विधि निषेधमय[१६] कलि-मल हरनी। करम कथा रविनंदनि[१७] बरनी॥
हरि-हर-कथा[१८] विराजति बेनी[१९]। सुनत सकल मुद मंगल-देनी॥
बटु बिस्वास[२०] अचल निज धरमा। तीरथराज-समाज सुकरमा[२१]॥
सबहि सुलभ सब दिन सब देसा। सेवत सादर समन[२२] कलेसा॥
अकथ अलौकिक तीरथराऊ। देइ सद्य[२३] फल प्रगट प्रभाऊ॥

दो०—सुनि समुझहिं जन मुदित मन मज्जहिं[२४] अति अनुराग।
लहहिं चारि फल अछत तनु[२५] साधु-समाज-प्रयाग॥ २॥

मज्जन फल पेखिअ[१] ततकाला। काक होहिं पिक[२] बकउ मराला[३]॥
सुनि आचरज करै जनि[४] कोई। सतसंगति महिमा नहिं गोई[५]॥
*वालमीक *नारद *घटजोनी[६]। निज-निज मुखनि कही निज होनी[७]॥
जलचर थलचर नभचर नाना। जे जड़-चेतन जीव जहाना[८]॥
मति[९] कीरति गति भूति[१०]भलाई। जब जेहिं जतन जहाँ जेहिं पाई॥
सो जानब सतसंग-प्रभाऊ। लोकहुँ वेद न आन[११] उपाऊ॥
बिनु सतसंग विवेक न होई। राम-कृपा बिनु सुलभ न सोई॥
सतसंगत मुद मंगल मूला। सोइ फल सिधि सब साधन फूला[१२]॥
सठ सुधरहिं सतसंगति पाई। पारस परस कुधात सुहाई[१३]॥
विधि-बस सुजन कुसंगत परहीं। फनि[१४]-मनि सम निज गुन अनुसरहीं[१५]॥
विधि[१६]-हरि-हर-कवि कोविद[१७]-बानी। कहत साधु महिमा सकुचानी॥
सो मो सन[१८]कहि जात न कैसें। साक-बनिक[१९] मनि-गुन गन जैसें॥

---

१२ चलता-फिरता प्रयाग, १३ गंगा, १४ सरस्वती, १५ ब्रह्म सम्बन्धी विचारों की चर्चा, १६ विधि = करणीय, निषेध = अकरणीय, १७ सूर्य की पुत्री यमुना नदी, १८ विष्णु और शिव की कथा, १९ त्रिवेणी, २० अक्षयवट, २१ अच्छे कर्म हो इस तीर्थराज में एकत्र होनेवाले सन्तों का समाज है, २२ दूर करनेवाला २३ तत्काल, २४ स्नान करते हैं, २५ शरीर के रहते ही यानी जीवन काल में ही अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष नामक चार फल पाते हैं।

३ १ दिखाई देता है, २ कोयल, ३ बगुले भी हंस (मराल) हो जाते हैं, ४ मत नहीं, ५ छिपी हुई, ६ अगस्त्य, ७ अपनी कहानी, ८ संसार, ९ बुद्धि, १० विभूति, ११ अन्य, दूसरा, १२ फूल, १३ पारस के स्पर्श से कुधातु (लोहा) सुन्दर (स्वर्ण, सोना) बन जाता है, १४ सर्प, १५ अनुसरण करते हैं, १६ ब्रह्मा, १७ विद्वान्,

दो०—बंदउँ संत समान-चित, हित-अनहित नहिं कोई ।
अंजलि-गत[२०] सुभ सुमन जिमि सम सुगंध कर दोइ[२१] ॥ ३ (क) ॥
संत सरल-चित जगत-हित जानि सुभाउ सनेहु ।
बालबिनय[२२] सुनि करि कृपा राम-चरन रति[२३] देहु ॥ ३ (ख) ॥

बहुरि[१] बंदि खल-गन सतिभाएँ । जे बिनु काज दाहिनेहु बाएँ ॥
पर-हित-हानि लाभ जिन्ह केरें । उजरें हरष, बिषाद बसेरें ॥
हरि हर-जस-राकेस[३] *राहु-से । पर-अकाज भट सहसबाहु-से[४] ॥
जे पर दोष लखहिं सहसाखी[५] । पर हित घृत जिन्ह के मन माखी ॥
तेज कृसानु[६], रोष महिषेसा[७] । अघ-अवगुन धन धनी धनेसा[८] ॥
उदय केत सम[९] हित सबही के । कुंभकरन सम सोवत नीके ॥
पर-अकाजु लगि तनु परिहरहीं । जिमि हिम उपल[१०] कृषी दलि गरहीं ॥
बंदउँ खल जस *सेष सरोषा । सहस-बदन[११] बरनइ पर दोषा ॥
पुनि प्रनवउँ *पृथुराज[१२]-समाना । पर अघ सुनइ सहस-दस काना ॥
बहुरि सक्र[१३]-सम बिनवउँ तेही । संतत सुरानीक हित जेही[१४] ॥
बचन-बज्र जेहि सदा पिआरा । सहस-नयन पर-दोष निहारा ॥

दो० —उदासीन-अरि-मीत हित[१५] सुनत जरहिं, खल रीति ।
जानि पानि जुग[१६] जोरि जन बिनती करइ सप्रीति ॥ ४ ॥

मैं अपनी दिसि[१] कीन्ह निहोरा । तिन्ह निज ओर न लाउब भोरा[२] ॥
बायस[३] पलिअहिं अति अनुरागा । होंहि निरामिष[४] कबहुँ कि कागा ॥
बंदउँ संत-असज्जन चरना । दुखप्रद उभय[५] बीच कछु बरना ॥
बिछुरत एक, प्रान हरि लेहीं । मिलत एक, दुख दारुन[६] देहीं ॥
उपजहिं एक संग जग माहीं । जलज[७]-जोंक जिमि गुन बिलगाहीं ॥

---

१८ सन=से, १९ साग बेचनेवाला बनिया, २० अंजलि में पड़ा हुआ, २१ दोनों; २२ बालक या अबोध की बिनती, २३ प्रेम ।

४. १ फिर; २ सच्चे हृदय से; ३ राकेश=पूर्ण चन्द्रमा ४ सहस्रबाहु की तरह, हजारों हाथों से, ५ हजार आँखोंवाला यानी इन्द्र, ६ अग्नि, ७ महिषासुर नामक दैत्य; ८ कुबेर, ९ धूमकेतु के समान, १० ओले, ११ हजार मुखों से, शेषनाग की तरह; १२ राजा पृथु, १३ इन्द्र, १४ (खल के पक्ष में) जिन्हें सदैव अच्छी सुरा या मदिरा ही प्रिय (हित) लगती है; (इन्द्र के पक्ष में) जिन्हें सदैव सुरों (देवताओं) का अनीक (सेना) प्रिय लगता है, १५ अपने प्रति उदासीन (शत्रुता और मित्रता, दोनों से तटस्थ), अपने शत्रु (अरि) और अपने मित्र, किसी की भी भलाई; १६ दोनों ।

५. १ ओर, तरफ, २ न भोरा=नहीं चूकेंगे, ३ कौवा, ४ मांस नहीं खानेवाला; ५ दोनों, ६ भयंकर; ७ कमल, ८ इस संसार में दोनों का एक ही पिता;

सुधा-सुरा-सम साधु असाधू। जनक एक जग,[८] जलधि[९] अगाधू॥
भल-अनभल निज निज करतूती। लहत सुजस, अपलोक[१०] बिभूती॥
सुधा, सुधाकर, सुरसरि, साधू। गरल,[११] अनल, कलिमल-सरि[१२] ब्याधू[१३]॥
गुन-अवगुन जानत सब कोई। जो जेहि भाव, नीक तेहि सोई[१४]॥

दो०—भलो भलाइहि पै लहइ, लहइ निचाइहि नीचु।
सुधा सराहिअ अमरताँ, गरल सराहिअ मीचु[१५]॥ ५॥

खल-अघ-अगुन,[१] साधु-गुन-गाहा[२]। उभय अपार उदधि अवगाहा[३]॥
तेहि ते कछु गुण-दोष बखाने। संग्रह-त्याग[४] न बिनु पहिचाने॥
भलेउ-पोच[५] सब बिधि उपजाए। गनि गुन-दोष बेद बिलगाए॥
कहहिं बेद-इतिहास पुराना। बिधि-प्रपंचु[६] गुन-अवगुन साना॥
दुख-सुख, पाप-पुन्य, दिन-राती। साधु असाधु, सुजाति-कुजाती॥
दानव-देव, ऊँच अरु नीचू। अमिअ सुजीवनु,[७] माहुरु मीचू[८]॥
माया-ब्रह्म, जीव-जगदीसा। लच्छि-अलच्छि,[९] रंक-अवनीसा[१०]॥
कासी मग,[११] सुरसरि-क्रमनासा[१२]। मरु-मारव,[१३] महिदेव-गवासा[१४]॥
सरग-नरक, अनुराग-बिरागा। निगमागम गुन-दोष बिभागा॥

दो०—जड़-चेतन गुन-दोषमय बिस्व कीन्ह करतार।
संत हंस गुन गहहिं पय परिहरि[१५] बारि बिकार[१६]॥ ६॥

अस बिबेक जब देइ बिधाता। तब तजि दोष, गुनहिं मनु राता[१]॥
काल-सुभाउ[२]-करम बरिआईं[३]। भलेउ प्रकृति बस चुकइ भलाई[४]॥
सो सुधारि हरिजन[५] जिमि लेहीं। दलि दुख-दोष बिमल जसु देहीं॥
खलउ करहिं भल पाइ सुसंगू। मिटइ न मलिन सुभाउ अभंगू[६]॥
लखि सुबेष जग, बंचक[७] जेऊ। बेष प्रताप पूजिअहिं तेऊ॥

---

८ समुद्र, १० अपयश; ११ विष; १२ कलियुग के पापों की नदी कर्मनाशा; १३ रोग; १४ जो जिसको अच्छा लगता है, उसके लिए वही अच्छा है; १५ मृत्यु।

६. १ दुष्टों के पाप और अवगुण; २ साधुओं के गुणों की गाथा; ३ अथाह समुद्र, ४ ग्रहण और त्याग, ५ भले और बुरे, ६ विधाता की रचना, अर्थात् सृष्टि; ७ जीवन देनेवाला अमृत (अथवा अमृत और सुन्दर जीवन); ८ मृत्यु देनेवाला विष (अथवा विष और मृत्यु); ९ धन और निर्धनता, १० दरिद्र और राजा; ११ काशी और मगध, १२ गंगा और कर्मनाशा, १३ मारवाड़ और मालवा, १४ ब्राह्मण और वधिक, १५ छोड़ कर; १६ दोष-रूपी जल।

७. १ गुणों में मन अनुरक्त होता है, २ काल, स्वभाव, ३ बलवान् या प्रबल

उधरहिं अंत न होइ निबाहू । *कालनेमि जिमि रावन राहू[८] ॥
किएहुँ कुबेषु साधु सनमानू[९] । जिमि जग जामवंत-हनुमानू ॥
हानि कुसंग, सुसंगति लाहू । लोकहुँ बेद बिदित सब काहू ॥
गगन चढइ रज पवन-प्रसंगा[१०] । कीचहि मिलइ नीच जल संगा ॥
साधु-असाधु सदन सुक सारी । सुमिरहिं राम, देहिं गनि गारी ॥
धूम कुसंगति कारिख होई । लिखिअ पुरान मंजु मसि सोई ॥
सोइ जल-अनल-अनिल संघाता[११] । होइ जलद जग-जीवन-दाता ॥

दो०—ग्रह, भेषज,[१२] जल, पवन, पट पाइ कुजोग-सुजोग ।
होहिं कुबस्तु-सुबस्तु जग लखहिं सुलच्छन लोग ॥ ७ (क) ॥
सम प्रकास तम पाख दुहुँ नाम-भेद बिधि कीन्ह ।
ससि-सोषक-पोषक[१३] समुझि जग जस-अपजस दीन्ह ॥ ७(ख) ॥
जड़-चेतन जग जीव जत, सकल राममय जानि ।
बंदउँ सबके पद-कमल सदा जोरि जुग पानि ॥ ७(ग) ॥
देव, दनुज, नर, नाग[१४], खग, प्रेत, पितर, गंधर्ब ।
बंदउँ किंनर, रजनिचर,[१५] कृपा करहु अब सर्ब ॥ ७(घ) ॥

आकर चारि[१] लाख चौरासी । जाति जीव जल-थल-नभ-बासी ॥
सीय-राममय सब जग जानी । करउँ प्रनाम, जोरि जुग पानी ॥

२ तुलसी की विनम्रता

जानि कृपाकर[२] किंकर[३] मोहू । सब मिलि करहु छाडि छल छोहू ॥
निज बुधि-बल भरोस मोहि नाहीं । तातें बिनय करउँ सब पाहीं[४] ॥
बरन चहउँ रघुपति-गुन गाहा । लघु मति मोरि, चरित अवगाहा ॥
सूझ न एकउ अंग उपाऊ[५] । मन मति रंक, मनोरथ राऊ[६] ॥
मति अति नीच, ऊँचि रुचि आछी[७] । चहिअ अमिअ, जग जुरइ न छाछी ॥
छमिहहिं सज्जन मोरी ढिठाई । सुनिहहिं बालबचन मन लाई ॥
जौं बालक कह तोतरि बाता । सुनहिं मुदित मन पितु अरु माता ॥
हँसिहहिं कूर[८], कुटिल, कुबिचारी । जे पर-दूषन-भूषनधारी[९] ॥

हो जाते हैं, ४ भलाई (भला काम) करने में चूक जाते है, ५ प्रभु के भक्त; ६ पूरे तरह, ७ ठग; ८ जैसे (जिमि) कालनेमि, रावण और राहु, ९ सम्मान पाते हैं; १० पवन की संगति या सहायता से; ११ पानी, हवा और आग के मेल से; १२ औषधि, १३ चन्द्रमा को घटाने और बढाने वाला; १४ सर्प; १५ राक्षस ।

८. १ जीवों के चार आकार या समुदाय (स्वेदज, अण्डज, उद्भिज्ज और पिण्डज); २ कृपा के आकर (भाण्डार); ३ दास; ४ से; ५ कुछ भी उपाय; ६ राजा; ७ है;

निज कवित्त केहि लाग न नीका। सरस होउ अथवा अति फीका ॥
जे पर भनिति[१०] सुनत हरषाहीं। ते बर पुरुष बहुत जग नाहीं ॥
जग बहु नर सर सरि[११] सम भाई। जे निज बाढ़ि बढ़हिं जल पाई ॥
सज्जन सकृत सिंधु सम कोई। देखि पूर बिधु बाढ़इ जोई ॥
दो०—भाग छोट अभिलाषु बड़ करउँ एक बिस्वास।
पैहहिं[१२] सुख सुनि सुजन सब खल करिहहिं उपहास ॥ ८ ॥
खल परिहास[१] होइ हित मोरा। काक कहहिं कलकंठ[२] कठोरा ॥
हंसहि बक दादुर[३] चातकही। हँसहिं मलिन खल बिमल बतकही ॥
कवित रसिक न राम-पद-नेहू[४]। तिन्ह कहँ सुखद हास रस एहू ॥
भाषा[५] भनिति भोरि मति मोरी। हँसिबे जोग हँसें नहिं खोरी[६] ॥
प्रभु पद प्रीति न सामुझि[७] नीकी। तिन्हहि कथा सुनि लागिहि फीकी ॥
हरि हर पद रति मति न कुतरकी। तिन्ह कहँ मधुर कथा रघुबर की ॥
राम भगति भूषित जियँ जानी। सुनिहहिं सुजन सराहि सुबानी ॥
कबि न होउँ नहिं बचन प्रबीनू। सकल कला सब बिद्या हीनू ॥
आखर[८] अरथ, अलंकृति नाना। छंद प्रबंध अनेक बिधाना ॥
भाव भेद रस भेद अपारा। कबित दोष गुन बिबिध प्रकारा ॥
कबित बिबेक एक नहिं मोरें। सत्य कहउँ लिखि कागद कोरें ॥
दो०—भनिति मोरि सब गुन रहित बिस्व बिदित गुन एक।
सो बिचारि सुनिहहिं सुमति जिन्ह कें बिमल बिबेक ॥ ९ ॥
एहि महँ रघुपति नाम उदारा। अति पावन पुरान-श्रुति सारा[१] ॥
मंगल भवन अमंगल हारी। उमा सहित जेहि जपत *पुरारी[२] ॥
भनिति बिचित्र सुकबि कृत जोऊ। राम नाम बिनु सोह न सोऊ ॥
बिधुबदनी[३] सब भाँति सँवारी। सोह न बसन बिना बर नारी ॥
सब गुन रहित कुकबि-कृत बानी। राम नाम-जस अंकित जानी ॥
सादर कहहिं-सुनहिं बुध[४] ताही। मधुकर[५] सरिस संत गुनग्राही ॥

---

८ क्रूर, ९ जो दूसरों के दोषों को भूषण की तरह धारण करते हैं (दूसरों में दोष ही दोष ढूँढते हैं), १० दूसरों की कविता (भणिति), ११ तालाब और नदी, १२ पायेंगे।

९ १ दुष्ट लोगों की हँसी, २ कोयल, ३ मेंढक, ४ इस पंक्ति के दो अर्थ सम्भव हैं (क) जो न तो कविता के रसिक हैं और न जिनकी राम के चरणों में प्रीति है; या (ख) जो कविता के रसिक हैं किन्तु जिनकी प्रीति राम के चरणों में नहीं है, ५ लोकभाषा, ६ दोष, ७ समझ बुद्धि, ८ अक्षर।

१० १ पुराणों और वेदों का सार तत्त्व, २ शिव, ३ चन्द्रमुखी स्त्री, ४ विद्वान,

जदपि कबित रस एकउ नाहीं । राम प्रताप प्रगट एहि माहीं ॥
सोइ भरोस मोरें मन आवा । केहिं न सुसंग बडप्पनु पावा ॥
धूमउ तजइ सहज करुआई । अगरु प्रसंग सुगंध बसाई ॥
भनिति भदेस[७] बस्तु भलि बरनी । राम-कथा जग मंगल-करनी ॥

छं० मंगल करनि कलि मल हरनि तुलसी कथा रघुनाथ की ।
गति कूर[८] कबिता सरित की ज्यों सरित पावन पाथ की[९] ।
प्रभु सुजस संगति भनिति भलि होइहि सुजन मन भावनी ।
भव अंग[१०] भूति मसान की सुमिरत सुहावनि पावनी ॥

दो०—*प्रिय लागिहि अति सबहि मम भनिति राम जस संग ।*
दारु[११] बिचारु कि करइ कोउ बंदिअ मलय प्रसंग[१२] ॥ १०(क) ॥
स्याम सुरभि[१३] पय बिसद अति गुनद करहिं सब पान ।
गिरा ग्राम्य[१५] सिय राम जस गावहिं-सुनहिं सुजान ॥ १०(ख) ॥

मनि-मानिक मुकुता[१] छबि जैसी । अहि[२] गिरि गज सिर सोह न तैसी ॥
नृप किरीट[३] तरुनी तनु पाई । लहहिं सकल सोभा अधिकाई ॥
तैसेहिं सुकबि कबित बुध कहहीं । उपजहिं अनत[४] अनत छबि लहहीं ॥
भगति-हेतु बिधि भवन बिहाई[५] । सुमिरत सारद आवति धाई ॥
राम चरित सर बिनु अन्हवाएँ । सो श्रम जाइ न कोटि उपाएँ ॥
कबि कोबिद अस हृदयँ बिचारी । गावहिं हरि जस कलि-मल हारी ॥
कीन्हें प्राकृत जन[६] गुन गाना । सिर धुनि गिरा लगत पछिताना ॥
हृदय सिंधु मति सीप समाना । स्वाति सारदा कहहिं सुजाना ॥
जौं बरषइ बर बारि बिचारू । होहिं कबित मुकुतामनि चारू ॥

दो०—जुगुति बेधि पुनि पोहिअहिं[७] राम चरित बर ताग[८] ।
पहिरहिं सज्जन बिमल उर सोभा अति अनुराग ॥ ११ ॥

जे जनमे कलिकाल कराला । करतब बायस, बेष मराला ॥
चलत कुपंथ बेद-मग छाँडे । कपट कलेवर[१], कलि मल भाँडे[२] ॥
बंचक भगत कहाइ राम के । किंकर कंचन कोह काम के ॥

---

५ भौंरा, ६ कडवाहट, ७ भद्दी, ८ टेढी, ९ पवित्र जलवाली नदी (गंगा) की चाल-जैसी, १० शिव के शरीर पर लगी, ११ लकडी, १२ मलयगिरि के प्रसंग से (मलय गिरि पर उत्पन्न होने के कारण) १३ गाय, १४ गुणकारी, १५ ग्रामीण बोली ।

११ १ मुक्ता, मोती, २ सर्प, ३ राजा का मुकुट, ४ अन्यत्र, कहीं और; ५ छोड कर, ६ सांसारिक मनुष्य, ७ पिरोते हैं, ८ सुन्दर तागा ।

१२ १ कपट की मूर्त्ति, २ कलियुग के पापों के बरतन (भांडे), ३ क्रोध;

तिन्ह महँ प्रथम रेख[4] जग मोरी। धींग धरमध्वज[5], धंधक-धोरी[6]॥
जौं अपने अवगुन सब कहऊँ। बाढ़इ कथा, पार नहिं लहऊँ॥
ताते मैं अति अलप बखाने। थोरे महुँ जानिहहिं सयाने॥
समुझि बिबिधि बिधि बिनती मोरी। कोउ न कथा सुनि देइहि खोरी॥
एतेहु पर करिहहिं जे असंका[7]। मोहि ते अधिक ते जड़ मति-रंका[8]॥
कबि न होउँ, नहिं चतुर कहावउँ। मति अनुरूप राम गुन गावउँ॥
कहँ रघुपति के चरित अपारा। कहँ मति मोरि निरत संसारा[9]॥
जेहिं मारुत[10] गिरि मेरु[11] उड़ाहीं। कहहु तूल[12] केहि लेखे माहीं॥
समुझत अमित राम-प्रभुताई। करत कथा मन अति कदराई[13]॥

दो०—सारद, सेस, महेस, बिधि, *आगम, *निगम, *पुरान।
नेति नेति[14] कहि जासु गुन करहिं निरंतर गान॥ १२॥

सब जानत प्रभु-प्रभुता सोई। तदपि कहें बिनु रहा न कोई॥
तहाँ बेद अस कारन राखा। भजन-प्रभाउ भाँति बहु भाषा॥
एक, अनीह[1], अरूप, अनामा। अज[2], सच्चिदानंद, पर-धामा[3]॥
ब्यापक, बिस्वरूप भगवाना। तेहिं धरि देह चरित कृत नाना॥
सो केवल भगतन-हित लागी। परम कृपाल प्रनत-अनुरागी[4]॥
जेहि जन पर ममता अति छोहू[5]। जेहिं करुना करि, कीन्ह न कोहू॥
गई बहोर, गरीब-नेवाजू[6]। सरल, सबल, साहिब[7] रघुराजू॥
बुध बरनहिं हरि-जस अस जानी। करहिं पुनीत सुफल निज बानी॥
तेहि बल मैं रघुपति-गुन-गाथा। कहिहउँ नाइ राम-पद माथा॥
मुनिन्ह प्रथम हरि-कीरति गाई। तेहि मग चलत सुगम मोहि भाई॥

दो०—अति अपार जे सरित-बर[8] जौं नृप सेतु[9] कराहिं।
चढ़ि पिपीलिकउ[10] परम लघु बिनु श्रम पारहि जाहिं॥ १३॥

---

४ पहली गिनती, ५ धींगाधींगी करनेवाले धर्मध्वजी, झूठे धर्मात्मा, ६ धूर्तों के सरदार, ७ आशंका, सन्देह, ८ दरिद्र बुद्धिवाला, मूर्ख, ९ सांसारिक विषय-वासनाओं में लीन, १० वायु, ११ सुमेरु पर्वत, १२ रुई, १३ मन में बहुत झिझक होती है; १४ (नेति = न + इति) इतना ही नहीं है, इतना ही नहीं है।

१३. १ इच्छा-रहित; २ अजन्मा; ३ परम धाम; ४ शरणागत से प्रेम करनेवाले, ५ स्नेह; ६ गरीबों पर कृपा करनेवाले, ७ स्वामी, ८ श्रेष्ठ या बड़ी नदी, ९ पुल; १० चींटियाँ भी।

एहि प्रकार बल मनहि देखाई। करिहउँ रघुपति-कथा सुहाई॥
*ब्यास *आदिकबि[1] पुंगव[2] नाना। जिन्ह सादर हरि-सुजस बखाना॥
चरन-कमल बंदउँ तिन्ह केरे। पुरवहुँ सकल मनोरथ मेरे॥
कलि के कबिन्ह करउँ परनामा। जिन्ह बरने रघुपति गुन ग्रामा[3]॥
जे प्राकृत कबि[4] परम सयाने। भाषाँ जिन्ह हरि चरित बखाने॥
भए जे अहहिं जे होइहहिं आगे[5]। प्रनवउँ सबहि कपट सब त्यागें॥
होहु प्रसन्न देहु बरदानू। साधु समाज भनिति सनमानू[6]॥
जो प्रबंध बुध नहिं आदरहीं। सो श्रम बादि[7] बाल-कबि करहीं॥
कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सब कहँ हित होई॥
राम-सुकीरति भनिति भदेसा। असमंजस अस मोहि अँदेसा[8]॥
तुम्हरी कृपाँ सुलभ सोउ मोरे। सिअनि सुहावनि टाट पटोरे[9]॥

दो०—सरल कबित कीरति बिमल सोइ आदरहिं सुजान।
सहज बयर बिसराइ रिपु[10] जो सुनि करहिं बखान॥ १४ (क)॥

सो न होइ बिनु बिमल मति मोहि मति बल अति थोर।
करहु कृपा हरि जस कहउँ पुनि पुनि करउँ निहोर॥ १४ (ख)॥

कबि-कोबिद रघुबर चरित मानस मंजु मराल।
बालबिनय सुनि सुरुचि लखि मो पर होहु कृपाल॥ १४ (ग)॥

सो०—बंदउँ मुनि-पद-कंजु रामायन जेहिं निरमयउ[11]।
सखर सुकोमल मंजु दोष रहित दूषन सहित[12]॥ १४ (घ)॥

दो०—सठ सेवक की प्रीति रुचि रखिहहिं राम कृपालु।
उपल किए जलजान जेहिं[13] सचिव सुमति कपि भालु॥ २८ (क)॥

हौंहु कहावत सबु कहत राम सहत उपहास।
साहिब सीतानाथ सो सेवक तुलसीदास॥ २८ (ख)॥

---

१४ (२८ भी) १ वाल्मीकि, २ श्रेष्ठ व्यक्ति (कवि), ३ राम के गुण समूह, ४ लोकभाषाओं के कवि; ५ जो हो चुके हैं, जो अभी हैं और जो आगे होंगे, ६ कविता का सम्मान, ७ व्यर्थ, ८ अंदेशा आशंका, ९ यदि टाट पर भी रेशम (पटोरे) की कढ़ाई (सिअनि) की जाय, तो वह भी सुन्दर लगेगी, १० शत्रु, ११ निर्माण किया, रचना की, १२ जो खर (नामक राक्षस) के वर्णन से युक्त होने पर भी खर (कठोर) नहीं, वरन् कोमल और सुन्दर है तथा दूषण (नामक राक्षस) के वर्णन से युक्त होने पर भी दूषण (दोष) से मुक्त है, १३ जिन्होंने पत्थर (उपल) को भी जलयान (नौका, तैरनेवाला) बना दिया।

४ रामनाम की महिमा

दो० – गिरा-अरथ जल बीचि[1] सम कहिअत भिन्न न भिन्न।
बंदउँ सीता राम-पद जिन्हहि परम प्रिय खिन्न[2] ॥ १८ ॥

बंदउँ नाम राम रघुबर को। हेतु[1] कृसानु भानु हिमकर[2] को ॥
बिधि हरि हरमय बेद प्रान सो। अगुन[3] अनूपम गुन निधान सो ॥
महामंत्र जोइ जपत महेसू। कासीं मुकुति हेतु उपदेसू ॥
महिमा जासु जान गनराऊ[4]। प्रथम पूजिअत नाम प्रभाऊ ॥*
जान आदिकबि नाम प्रतापू। भयउ सुद्ध करि उलटा जापू ॥*
सहस नाम सम सुनि सिव बानी। जपि जेईं पिय संग भवानी ॥
हरषे हेतु हेरि हर ही[5] को। किय भूषन तिय भूषन ती को[6] ॥
नाम प्रभाउ जान सिव नीको। कालकूट फलु दीन्ह अमी को ॥

दो०—बरषा रितु रघुपति भगति तुलसी सालि[7] सुदास[8]।
राम नाम बर बरन जुग[9] सावन भादव मास ॥ १९ ॥

आखर मधुर मनोहर दोऊ। बरन बिलोचन[1] जन जिय[2] जोऊ ॥
सुमिरत सुलभ सुखद सब काहू। लोक लाहु परलोक निबाहू ॥
कहत सुनत सुमिरत सुठि[4] नीके। राम लखन सम प्रिय तुलसी के ॥
बरनत बरन प्रीति बिलगाती[5]। ब्रह्म जीव सम सहज सँघाती[6] ॥
*नर नारायन सरिस सुभ्राता। जग पालक बिसेषि जन त्राता ॥
भगति सुतिय[7] कल करन बिभूषन[8]। जग हित-हेतु बिमल बिधु पूषन[9] ॥
स्वाद तोष सम सुगति सुधा के। कमठ सेष सम[10] धर बसुधा के ॥
जन मन मंजु कंज मधुकर से। जीह-जसोमति हरि-हलधर से[11] ॥

दो०—एकु छत्रु एकु मुकुटमनि सब बरननि पर जोउ।
तुलसी रघुबर नाम के बरन बिराजत दोउ ॥ २० ॥

---

१८ १ जल और लहर २ दीन दुखी।

१९ १ (उत्पत्ति का) कारण, २ अग्नि, सूर्य और चन्द्रमा, ३ निर्गुण, ४ गणेश, ५ हृदय, ६ उन्होंने स्त्रियों में श्रेष्ठ स्त्री (तो) पार्वती को अपना भूषण (अर्द्धांगिनी) बना लिया, ७ धान, ८ सच्चा सेवक, ९ दो श्रेष्ठ वर्ण (रा और म)।

२० १ सभी वर्णों (अक्षरों) में नेत्रों के समान, २ भक्तों का जीवन, ३ इस लोक में लाभ (सुख), ४ सुन्दर, ५ अलग अलग वर्णन करने से इन वर्णों की प्रीति (मेल) भंग हो जाती है, महत्त्व घट जाता है, ६ सहज मित्र, ७ भक्ति रूपी सुन्दर स्त्री, ८ कर्णफूल, ९ चन्द्रमा और सूर्य, १० कच्छप और शेषनाग की तरह, ११ जीभ-रूपी यशोदा के लिए कृष्ण और बलराम की तरह।

समुझत सरिस[1] नाम अरु नामी। प्रीति परसपर प्रभु-अनुगामी[2] ॥
नाम-रूप दुइ ईस-उपाधी[3]। अकथ अनादि, सुसामुझि-साधी[4] ॥
को बड छोट कहत अपराधू। सुनि गुन, भेदु समुझिहहिं साधू ॥
देखिअहिं रूप नाम-आधीना। रूप ग्यान नहिं नाम-बिहीना ॥
रूप बिसेष नाम बिनु जानें। करतल-गत[5] न परहिं पहिचानें ॥
सुमिरिअ नाम, रूप बिनु देखें। आवत हृदय सनेह बिसेषें ॥
नाम-रूप गति अकथ कहानी। समुझत सुखद न परति बखानी ॥
अगुन-सगुन बिच नाम सुसाखी[6]। उभय-प्रबोधक[7] चतुर दुभाषी ॥

दो०—राम-नाम-मनिदीप धरु जीह-देहरीं द्वार।
तुलसी भीतर-बाहेरहुँ जौं चाहसि उजिआर[8] ॥२१॥

नाम जीहँ जपि जागहिं जोगी। बिरति बिरंचि-प्रपंच[1] बियोगी ॥
ब्रह्मसुखहि अनुभवहिं अनूपा। अकथ, अनामय[2] नाम न रूपा ॥
जाना चहहिं गूढ़ गति जेऊ। नाम जीहँ जपि जानहिं तेऊ ॥
साधक नाम जपहिं लय लाएँ। होहिं सिद्ध 'अनिमादिक'[3] पाएँ ॥
जपहिं नामु जन आरत[4] भारी। मिटहिं कुसंकट, होहिं सुखारी ॥
राम भगत जग चारि प्रकारा। सुकृती चारिउ अनघ,[5] उदारा ॥
चहू[6] चतुर कहुँ नाम अधारा। ग्यानी प्रभुहि बिसेषि पिआरा ॥
चहुँ जुग चहुँ श्रुति, नाम प्रभाऊ। कलि बिसेषि नहिं आन उपाऊ ॥

दो०—सकल-कामना-हीन जे राम भगति रस-लीन।
नाम सुप्रेम-पियूष-हृद[7] तिन्हहुँ किए मन मीन ॥२२॥

अगुन-सगुन दुइ ब्रह्म-सरूपा। अकथ, अगाध, अनादि, अनूपा ॥
मोरें मत बड नामु दुहू तें। किए जेहिं जुग[1] निज बस, निज बूतें ॥
प्रौढ़ि सुजन जनि जानहिं जन की[2]। कहउँ प्रतीति प्रीति, रुचि मन की ॥
एकु दारुगत[3], देखिअ एकू। पावक-सम जुग ब्रह्म बिबेकू ॥
उभय अगम, जुग सुगम नाम तें। कहेउँ नामु बड ब्रह्म राम तें ॥
ब्यापकु, एकु, ब्रह्म अबिनासी। सत, चेतन, घन-आनँद-रासी ॥

---

२१ १ एक जैसे, २ स्वामी और सेवक, ३ ईश्वर की उपाधि, ४ अच्छी बुद्धि द्वारा साधने (समझ में आने) योग्य, ५ हाथ में रखा हुआ, ६ सुन्दर साक्षी; ७ दोनों का ज्ञान (प्रबोध) करानेवाला, ८ प्रकाश।

२२. १ ब्रह्मा का प्रपंच, अर्थात् सृष्टि; २ इच्छा-रहित; ३ अणिमा आदि आठ सिद्धियाँ, ४ दुःखी; ५ निष्पाप, ६ चारों; ७ सुन्दर प्रेम-रूपी अमृत-सरोवर।

२३. १ दोनों (निर्गुण और सगुण); २ मेरी इस बात को सज्जन लोग

अस प्रभु हृदयँ अछत[४] अबिकारी। सकल जीव जग दीन दुखारी॥
नाम-निरूपन नाम जतन तें। सोउ प्रगटत जिमि मोल रतन तें॥

दो०—निरगुन तें एहि भाँति बड़ नाम-प्रभाउ अपार।
कहउँ नामु बड़ राम तें निज बिचार-अनुसार॥ २३॥

राम भगति-हित नर-तनु धारी। सहि संकट किए साधु सुखारी॥
नामु सप्रेम जपत अनयासा। भगत होंहि मुद-मंगल-बासा[१]॥
राम एक तापस-तिय तारी। नाम कोटि खल कुमति सुधारी॥
रिषि-हित[२] राम सुकेतुसुता[३] की। सहित-सेन-सुत कीन्हि बिबाकी[४]॥
सहित दोष-दुख दास-दुरासा। दलइ नामु जिमि रबि निसि नासा॥
भंजेउ राम आपु भव-चापू[५]। भव-भय-भंजन[६] नाम-प्रतापू॥
दंडक बनु प्रभु कीन्ह सुहावन। जन-मन अमित नाम किए पावन॥
निसिचर निकर[७] दले रघुनंदन। नामु सकल-कलि-कलुष-निकंदन[८]॥
दो०—सबरी-गीध-सुसेवकनि सुगति[९] दीन्हि रघुनाथ।
नाम उधारे अमित खल बेद बिदित गुन-गाथ[१०]॥ २४॥

राम सुकंठ[१]-बिभीषन दोऊ। राखे सरन, जान सबु कोऊ॥
नाम गरीब अनेक नवाजे[२]। लोक-बेद बर बिरिद[३] बिराजे॥
राम भालु-कपि-कटकु[४] बटोरा। सेतु-हेतु श्रमु कीन्ह न थोरा॥
नामु लेत भवसिंधु सुखाहीं। करहु बिचारु सुजन मन माहीं॥
राम सकुल[५] रन रावनु मारा। सीय-सहित निज पुर पगु धारा।
राजा रामु अवध रजधानी। गावत गुन सुर मुनि बर बानी॥
सेवक सुमिरत नामु सप्रीती। बिनु श्रम प्रबल मोह-दलु जीती॥
फिरत सनेहँ मगन सुख अपनें। नाम-प्रसाद सोच नहिं सपनें॥
दो०—ब्रह्म राम तें नामु बड़, बर-दायक बर-दानि[६]।
रामचरित सत कोटि[७] महँ लिय महेस जियँ जानि॥ २५॥

ढिठाई (प्रौढ़ि) नहीं समझें. ३ लकड़ी में छिपा हुआ, अप्रकट; ४ रहते हुए।

२४ १ बासा = वास, निवास, २ ऋषि विश्वामित्र के लिए; ३ सुकेतु यक्ष की पुत्री ताड़का, ४ नष्ट, ५ शिव (भव) का धनुष, ६ सांसारिक भयों को नष्ट करने वाला; ७ राक्षसों का समूह, ८ निकंदन = जड़ से उखाड़नेवाला; ९ मुक्ति; १० गुणों की गाथा।

२५ १ सुग्रीव, २ कृपा की, ३ यश, ४ कटक = सेना; ५ कुल-सहित; ६ वर देनेवालों को भी वर देनेवाला, ७ सौ करोड़, असंख्य।

नाम प्रसाद संभु अबिनासी। साजु अमंगल[1] मंगल रासी॥
*सुक, *सनकादि सिद्ध मुनि जोगी। नाम प्रसाद ब्रह्मसुख भोगी॥
*नारद जानेउ नाम प्रतापू। जग प्रिय हरि हरि हर-प्रिय आपू[2]॥
नामु जपत प्रभु कीन्ह प्रसादू। भगत सिरोमनि भे *प्रहलादू॥
*ध्रुवँ सगलानि[3] जपेउ हरि-नाऊँ। पायउ अचल-अनूपम ठाऊँ॥
सुमिरि पवनसुत पावन नामू। अपने बस करि राखे रामू॥
अपतु[4] *अजामिलु *गजु *गनिकाऊ। भए मुकुत हरि-नाम प्रभाऊ॥
कहौं कहाँ लगि[5] नाम बड़ाई। रामु न सकहिं नाम-गुन गाई॥
दो० — नामु राम को *कलपतरु कलि कल्यान निवासु।
जो सुमिरत भयो भाँग तें तुलसी तुलसीदासु॥ २६॥

चहुँ जुग तीनि काल तिहुँ लोका। भए नाम जपि जीव बिसोका॥
बेद पुरान संत मत एहू। सकल-सुकृत फल राम सनेहू॥
ध्यानु प्रथम जुग[1] मखबिधि दूजें[2]। द्वापर परितोषत[3] प्रभु पूजें॥
कलि केवल मल मूल[4] मलीना। पाप पयोनिधि[5] जन-मन मीना॥
नाम कामतरु[6] काल कराला। सुमिरत समन सकल जग जाला[7]॥
राम-नाम कलि अभिमत दाता[8]। हित परलोक लोक पितु माता॥
नहिं कलि करम न भगति बिबेकू। राम नाम अवलंबन एकू॥
कालनेमि कलि कपट निधानू। नाम सुमति समरथ हनुमानू॥

दो०—राम नाम नरकेसरी[9] कनककसिपु[10] कलिकाल।
जापक जन प्रहलाद जिमि पालिहि दलि सुरसाल[11]॥२७॥

भायँ कुभायँ अनख[1] आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ॥
सुमिरि सो नाम राम-गुन गाथा। करउँ नाइ रघुनाथहि माथा॥२८॥

---

२६ १ अमंगल वेश धारण करने पर भी, २ संसार को हरि प्रिय हैं, पर आप (नारद) को हरि और हर (शिव), दोनों प्रिय हैं, ३ ग्लानि के साथ, ४ अधम, पापी, ५ कहाँ तक।

२७ १ प्रथम युग (सतयुग) में ध्यान का महत्त्व है, २ दूसरे युग (त्रेता) में यज्ञ (मख) विधान का महत्त्व है, ३ प्रसन्न होते हैं, ४ पाप का मूल, ५ पाप का समुद्र, ६ नाम रूपी *कल्पवृक्ष, ७ सांसारिक जंजाल, ८ इच्छित फल देनेवाला, ९ *नृसिंह, १० *हिरण्यकशिपु, ११ देवताओं का पीड़क (हिरण्यकशिपु)।

२८ १ क्रोध से।

५ रामकथा की परम्परा

जागबलिक[1] जो कथा सुनाई। भरद्वाज मुनिबरहि सुनाई॥
कहिहउँ सोइ संबाद बखानी। सुनहुँ सकल सज्जन सुखु मानी॥
संभु कीन्ह यह चरित सुहावा। बहुरि कृपा करि उमहि सुनावा॥
सोइ सिव कागभुसुंडिहि दीन्हा। राम भगत अधिकारी चीन्हा॥
तेहि सन जागबलिक पुनि पावा। तिन्ह पुनि भरद्वाज प्रति गावा॥
ते श्रोता बकता समसीला[2]। सवँदरसी[3] जानहिं हरिलीला॥
जानहिं तीनि काल निज ग्याना। करतल गत आमलक समाना[4]॥
औरउ जे हरिभगत सुजाना। कहहिं सुनहिं समुझहिं बिधि नाना॥

दो०—मैं पुनि निज गुर[5] सन सुनी कथा सो सूकरखेत।
समुझी नहिं तसि[6] बालपन तब अति रहेउँ अचेत॥३०(क)॥

श्रोता-बकता ग्याननिधि कथा राम कै गूढ़।
किमि समुझौं मैं जीव जड़ कलि मल ग्रसित बिमूढ़॥३०(ख)॥

तदपि कही गुर बारहिं बारा। समुझि परी कछु मति-अनुसारा॥
भाषाबद्ध करबि मैं सोई। मोरें मन प्रबोध[1] जेहिं होई॥
जस कछु बुधि बिबेक-बल मेरें। तस कहिहउँ हियँ हरि के प्रेरें[2]॥
निज संदेह मोह भ्रम हरनी। करउँ कथा भव सरिता-तरनी[3]॥
बुध बिश्राम[4] सकल जन रंजनि। रामकथा कलि-कलुष बिभंजनि॥
रामकथा कलि पंनग भरनी[5]। पुनि बिबेक पावक कहुँ अरनी[6]॥
रामकथा कलि कामद[7] गाई। सुजन सजीवनि मूरि सुहाई॥
सोइ बसुधातल सुधा तरंगिनि[8]। भय भंजनि भ्रम भेक भुअंगिनि[9]॥
असुर सेन सम[10] नरक निकंदिनि[11]। साधु बिबुध कुल हित गिरिनंदिनि[12]॥
संत समाज पयोधि रमा[13] सी। बिस्व भार भर अचल छमा सी[14]॥

---

३० १ याज्ञवल्क्य २ एक जैसे शीलवाले, ३ समदर्शी, ४ हथेली पर रखे हुए आँवले के समान, ५ गुरु, ६ उसको।

३१ १ सन्तोष, २ भगवान की प्रेरणा से, ३ तरणी=नौका, ४ विद्वानों के मन को शान्ति (विश्राम) प्रदान करनेवाली, ५ कलियुग रूपी सर्प के लिए मोरनी, ६ विवेक की अग्नि को प्रकट करनेवाली अरणी (यज्ञ की लकड़ी), ७ कल्पवृक्ष, ८ अमृत की नदी, ९ भ्रम के मेढक के लिए सर्पिन, १० असुरों की सेना को शमित (नष्ट) करनेवाली, ११ नरक का विनाश करनेवाली, १२ हिमालय की पुत्री पार्वती, १३ रमा=लक्ष्मी, १४ विश्व के सभी भार ढोने में अचल पृथ्वी (क्षमा) के समान,

जस गन मुहँ ससि जग जमुना सी। जीवन मुकुति हेतु जनु कासी ॥
रामहि प्रिय पावनि तुलसी[१५]-सी। तुलसिदास हित हियँ हुलसी सी[१६] ॥
सिवप्रिय मेकल सैल सुता सी[१७]। सकल सिद्धि सुख संपति रासी ॥
सदगुन-सुरगन-अंब अदिति सी[१८]। रघुबर भगति प्रेम परमिति सी[१९] ॥

दो०—रामकथा मंदाकिनी चित्रकूट चित चारु।
तुलसी सुभग सनेह बन सिय रघुबीर बिहारु ॥३१॥
रामचरित राकेस-कर-सरिस सुखद सब काहु।
सज्जन कुमुद चकोर चित हित बिसेषि बड़ लाहु ॥३२(ख)॥

कीन्हि प्रस्न जेहि भाँति भवानी। जेहि बिधि संकर कहा बखानी ॥
सो सब हेतु कहब मैं गाई। कथाप्रबंध बिचित्र बनाई ॥
जेहिं यह कथा सुनी नहिं होई। जनि[१] आचरजु करैं सुनि सोई ॥
कथा अलौकिक सुनहिं जे ग्यानी। नहिं आचरजु करहिं अस जानी ॥
रामकथा कै मिति[२] जग नाहीं। असि प्रतीति तिन्ह के मन माहीं ॥
नाना भाँति राम अवतारा। रामायन सत-कोटि अपारा ॥
कलपभेद हरिचरित सुहाए। भाँति अनेक मुनीसन्ह गाए ॥
करिअ न संसय अस उर आनी। सुनिअ कथा सादर रति मानी ॥

दो०—राम अनंत अनंत गुन अमित कथा बिस्तार।
सुनि आचरजु न मानिहहिं जिन्ह कें बिमल बिचार ॥३३॥

एहि बिधि सब संसय करि दूरी। सिर धरि गुर पद पंकज धूरी ॥
पुनि सबही बिनवउँ[१] कर जोरी। करत कथा जेहिं लाग न खोरी ॥
सादर सिवहि नाइ अब माथा। बरनउँ बिसद राम गुन-गाथा ॥
संबत सोरह सै एकतीसा। करउँ कथा हरि पद धरि सीसा ॥
नौमी भौम बार मधु मासा[२]। अवधपुरीं यह चरित प्रकासा ॥
जेहि दिन राम जनम श्रुति गावहिं। तीरथ सकल तहाँ चलि आवहिं ॥
असुर नाग खग नर मुनि देवा। आइ करहिं रघुनायक सेवा ॥
जन्म-महोत्सव रचहिं सुजाना। करहिं राम-कल-कीरति[३] गाना ॥

दो०—मज्जहिं सज्जन बृंद बहु पावन सरजू नीर।
जपहिं राम धरि ध्यान उर सुंदर स्याम सरीर ॥३४॥

---

१५ तुलसी (वृक्ष) के समान, १६ तुलसीदास के लिए हृदय के उल्लास के समान, तुलसीदास के लिए माता हुलसी के समान हृदय से हित करनेवाली), १७ मेकल पर्वत की पुत्री नर्मदा नदी के समान, १८ सद्गुण रूपी देवताओं की माता अदिति के समान, १९ परिमिति, परम सीमा।

३३ १ नहीं, २ सीमा, संख्या ३ अलग अलग कल्प में।

३४ १ विनती करता हूँ, २ चैत्रमास की नवमी तिथि को मंगल के दिन, ३ राम की सुंदर (कल) कीर्त्ति।

दरस, परस, मज्जन अरु पाना । हरइ पाप, कह वेद-पुराना ॥
नदी पुनीत, अमित महिमा अति । कहि न सकइ सारदा विमलमति ॥
राम धामदा[1] पुरी सुहावनि । लोक समस्त विदित, अति पावनि ॥
चारि खानि[2] जग जीव अपारा । अवध तजें तनु, नहिं संसारा ॥
सब विधि पुरी मनोहर जानी । सकल-सिद्धिप्रद, मंगल-खानी[3] ॥
बिमल कथा कर कीन्ह अरंभा । सुनत नसाहिं काम, मद, दंभा ॥

६ मानस का सांगरूपक

रामचरितमानस एहि नामा । सुनत श्रवन पाइअ बिश्रामा[4] ॥
मन-करि[5] विषय-अनल-बन जरई । होई सुखी जौं एहिं सर परई ॥
रामचरितमानस मुनि-भावन । बिरचेउ संभु सुहावन पावन ॥
त्रिविध-दोष-दुख-दारिद-दावन[6] । कलि-कुचालि-कुलि-कलुष-नसावन[7] ॥
रचि महेस निज मानस राखा । पाइ सुसमउ[8] सिवा सन भाषा ॥
तातें रामचरितमानस बर । धरेउ नाम हियँ हेरि हरषि हर ॥
कहउँ कथा सोइ सुखद-सुहाई । सादर सुनहु सुजन मन लाई ॥
दो०—जस मानस[9], जेहि विधि भयउ[10], जग-प्रचार जेहि हेतु[11] ।
अब सोइ कहउँ प्रसंग सब सुमिरि उमा-बृषकेतु[12] ॥३५॥
संभु-प्रसाद[1] सुमति हियँ हुलसी । रामचरितमानस, कबि तुलसी ॥
करइ मनोहर मति-अनुहारी[2] । सुजन सुचित सुनि लेहु सुधारी ॥
सुमति भूमि थल हृदय अगाधू[3] । वेद-पुरान उदधि, घन साधू[4] ॥
बरषहिं राम सुजस बर बारी । मधुर, मनोहर, मंगलकारी ॥
लीला सगुन जो कहहिं बखानी । सोइ स्वच्छता करइ मल-हानी[5] ॥
प्रेम-भगति जो बरनि न जाई । सोइ मधुरता-सुसीतलताई ॥
सो जल सुकृत-सालि हित होई । राम-भगत-जन-जीवन सोई ॥

---

३५ १ राम का धाम (साकेत) प्रदान करनेवाली, २ अण्डज, पिण्डज, स्वेदज और उद्भिज नामक चार प्रकार; ३ कल्याण की खान, ४ सन्तोष, शान्ति; ५ मनरूपी हाथी ६ दैहिक, दैविक और भौतिक—तीनों प्रकार के दोषों, दुःखों और दरिद्रता का नाश करनेवाला, ७ कलियुग की कुचालों और सभी पापों को नष्ट करने वाला, ८ उचित अवसर पाने पर; ९ यह रामचरितमानस जैसा है; १० इसकी रचना जिस प्रकार हुई, ११ जिस कारण से इसका संसार में प्रचार हुआ, १२ पार्वती और शिव ।

३६ १ शिव की कृपा से, २ अपनी बुद्धि के अनुसार, ३ पवित्र बुद्धि इस काव्य की भूमि है, हृदय अगाध स्थल (खोदी हुई गहरी भूमि) है, ४ वेद और पुराण

मेधा महि-गत सो जल पावन[6] । सकिलि श्रवन मग चलउ सुहावन[7] ॥
भरेउ सुमानस सुथल थिराना[8] । सुखद सीत रुचि चारु चिराना[9] ॥
दो०—सुठि सुंदर संबाद बर[10] बिरचे बुद्धि बिचारि ।
तेइ एहि पावन सुभग सर घाट मनोहर चारि ॥ ३६ ॥

सप्त प्रबंध सुभग सोपाना[1] । ग्यान नयन निरखत मन माना[2] ॥
रघुपति-महिमा अगुन अबाधा । बरनब सोइ बर बारि अगाधा ॥
राम सीय जस सलिल सुधासम । उपमा बीचि बिलास मनोरम ॥
पुरइनि[4] सघन चारु चौपाई । जुगुति[5] मंजु मनि सीप सुहाई ॥
छंद सोरठा सुंदर दोहा । सोई बहुरंग कमल-कुल सोहा ॥
अरथ अनूप सुभाव सुभासा[6] । सोइ पराग मकरंद सुबासा ॥
सुकृत पुंज मंजुल अलि माला[7] । ग्यान बिराग बिचार मराला ॥
धुनि अवरेब कबित गुन जाती[8] । मीन मनोहर ते बहुभाँती ॥
अरथ धरम कामादिक चारी । कहब ग्यान बिग्यान बिचारी ॥
नव रस जप तप जोग बिरागा । ते सब जलचर चारु तड़ागा[9] ॥
सुकृती साधु नाम गुन गाना । ते बिचित्र जलबिहग समाना ॥
संतसभा चहुँ दिसि अवँराई । श्रद्धा रितु बसंत सम गाई ॥
भगति निरूपन बिबिध बिधाना । छमा दया दम लता बिताना[10] ॥
सम-जम नियम फूल फल ग्याना । हरि-पद रति रस बेद बखाना ॥
औरउ कथा अनेक प्रसंगा । तेइ सुक पिक बहुबरन बिहंगा ॥
दो०—पुलक बाटिका-बाग बन सुख सुबिहंग बिहारु ।
माली सुमन सनेह जल सींचत लोचन चारु ॥ ३७ ॥

समुद्र हैं और साधु बादल हैं, ५ उसकी पवित्रता पापों को नष्ट कर देती है ६ बुद्धि की भूमि (मेधा मही) पर बरसा हुआ राम की कीर्ति का वह पवित्र जल, ७ सिमट कर (सकिलि) कानों के सुहावने मार्ग से बह चला ८ वह जल हृदय की सुन्दर भूमि मे भर-भर कर स्थिर हो गया, ९ वह पुराना हो कर (एक लम्बे समय के बाद) सुखद, शीतल और स्वादिष्ट हो गया, १० सुन्दर और श्रेष्ठ (चार) संवाद ।

३७ १ इसके सात काण्ड (प्रबन्ध) सात सोपानों (सीढ़ियों) के समान हैं, २ इनको ज्ञान रूपी नेत्रों से देखते ही मन प्रसन्न हो जाता है, ३ लहरों की क्रीडाएँ, ४ कमलपत्र, ५ युक्तियाँ, ६ अनुपम ग्रंथ, सुंदर भाव और सुन्दर भाषा, ७ भौंरो की पंक्तियाँ, ८ ध्वनि, वक्रोक्ति, काव्यगुण और जाति, ९ सरोवर, १० लताओं के मण्डप ।

जे गावहिं यह चरित सँभारे[१] । तेइ एहि ताल चतुर रखवारे ॥
सदा सुनहिं सादर नर-नारी । तेइ सुरबर मानस-अधिकारी ॥
अति खल जे बिषई बग-कागा । एहि सर निकट न जाहिं अभागा ॥
संबुक[२], भेक सेवार-समाना । इहाँ न बिषय-कथा-रस[३] नाना ॥
तेहि कारन आवत हियँ हारे । कामी काक-बलाक[४] बिचारे ॥
आवत एहि सर अति कठिनाई । राम-कृपा बिनु आइ न जाई ॥
कठिन कुसंग कुपंथ कराला । तिन्ह के बचन बाघ-हरि[५] ब्याला ॥
गृह-कारज नाना जंजाला । ते अति दुर्गम सैल बिसाला ॥
बन बहु बिषम मोह-मद-माना । नदीं कुतर्क भयंकर नाना ॥

दो०—जे श्रद्धा-संबल[६]-रहित, नहिं संतन्ह कर साथ ।
तिन्ह कहुँ मानस अगम अति जिन्हहि न प्रिय रघुनाथ ॥ ३८ ॥

जौं करि कष्ट जाइ पुनि कोई । जातहिं नींद-जुड़ाई[१] होई ॥
जड़ता-जाड़ बिषम उर लागा । गएहुँ न मज्जन पाव अभागा ॥
करि न जाइ सर मज्जन-पाना । फिरि आवइ समेत अभिमाना ॥
जौं बहोरि[२] कोउ पूछन आवा । सर-निंदा[३] करि ताहि बुझावा ॥
सकल बिघ्न ब्यापहिं नहिं तेही । राम सुकृपाँ बिलोकहिं जेही ॥
सोइ सादर सर मज्जनु करई । महा घोर त्रयताप[४] न जरई ॥
ते नर यह सर तजहिं न काऊ । जिन्ह कें राम-चरन भल भाऊ ॥
जो नहाइ चह एहिं सर भाई । सो सतसंग करउ मन लाई ॥
अस मानस मानस चख चाही[५] । भइ कबि-बुद्धि बिमल अवगाही[६] ॥
भयउ हृदयँ आनंद-उछाहू । उमगेउ प्रेम-प्रमोद-प्रबाहू[७] ॥
चली सुभग कबिता सरिता सो । राम-बिमल-जस-जल-भरिता सो ॥
सरजू नाम सुमंगल-मूला । लोक-बेद-मत मंजुल कूला ॥
नदी पुनीत सुमानस-नंदिनि[८] । कलिमल-तृन-तरु मूल-निकंदिनि[९] ॥

---

३८. १ सावधानी या एकाग्रता से; २ घोंघा; ३ काम आदि वासनाओं से सम्बद्ध कथा का रस, ४ कौवे और बगुले जैसे कामी लोग; ५ हरि = सिंह; ६ श्रद्धा-रूपी पाथेय (राह-खर्च)।

३९. १ नींद-रूपी जूड़ी, २ फिर; ३ रामचरितमानस-रूपी सरोवर की निन्दा; ४ दैहिक, दैविक और भौतिक ताप या कष्ट; ५-६ इस मानस-रूपी सरोवर को मानस या हृदय के नेत्रों से देख कर और उसमें डुबकी लगा कर कवि (तुलसी) की बुद्धि निर्मल हो गयी; ७ प्रबाहू = प्रवाह; ८-९ इस मानस रूपी सरोवर की पुत्री नदी (सरयू)

दो०—श्रोता त्रिविध समाज पुर, ग्राम, नगर दुहूँ कूल[१०]।
सतसभा अनुपम अवध सकल सुमंगल-मूल ॥ ३९ ॥

रामभगति-सुरसरितहि जाई । मिली सुकीरति-सरजु[१] सुहाई ॥
सानुज[२] राम-समर-जसु पावन । मिलेउ महानदु सोन सुहावन ॥
जुग बिच भगति देवधुनि-धारा[३] । सोहति सहित सुबिरति-बिचारा ॥
त्रिबिध ताप-त्रासक तिमुहानी[४] । राम-सरूप-सिंधु[५] समुहानी[६] ॥
मानस-मूल मिली सुरसरिही । सुनत सुजन-मन पावन करिही ॥
बिच-बिच कथा बिचित्र बिभागा । जनु सरि-तीर-तीर[७] बन-बागा ॥
उमा - महेस - बिबाह - बराती । ते जलचर अगनित बहुभाँती ॥
रघुबर - जनम - अनंद - बधाई । भवँर-तरंग मनोहरताई ॥

दो०—बालचरित चहु बंधु के बनज[८] बिपुल बहुरंग ।
नृप-रानी परिजन-सुकृत मधुकर-बारिबिहंग[९] ॥ ४० ॥

सीय-स्वयंबर-कथा सुहाई । सरित सुहावनि सो छबि छाई ॥
नदी नाव पटु प्रस्न अनेका । केवट कुसल उतर[१] सबिबेका ॥
सुनि अनुकथन[२] परस्पर होई । पथिक-समाज[३] सोह सरि सोई ॥
घोर धार भृगुनाथ रिसानी । घाट सुबद्ध[५] राम - बर-बानी ॥
सानुज राम-बिबाह-उछाहू । सो सुभ उमग सुखद सब काहू ॥
कहत-सुनत हरषहिं-पुलकाहीं । ते सुकृती मन मुदित नहाहीं ॥
राम तिलक-हित मंगल साजा । परब-जोग जनु जुरे समाजा ॥
काई कुमति केकई केरी[७] । परी जासु फल बिपति घनेरी ॥

दो०—समन[८] अमित उतपात सब भरतचरित जपजाग[९] ।
कलि-अघ-खल-अवगुन-कथन ते जलमल[१०] बग, काग ॥ ४१ ॥

बडी पवित्र है, जो कलियुग के पाप-रूपी तिनको और वृक्षो को मूल से ही उखाड देनेवाली है; १० इसके तीन प्रकार के (गृहस्थ, सन्यासी और जीवन्मुक्त) श्रोताओ का समाज (समूह) ही इसके दोनो किनारो पर अवस्थित पुरो, ग्रामो और नगरो का समूह है ।

४०. १ राम के सुयश की सरयू नदी, २ अनुज (लक्ष्मण)-सहित, ३ गगा नदी की धारा, ४ तीन प्रकार के तापो को डरानेवाली यह तिमुहानी (तीन नदियो की धारावाली) नदी, ५-६ रामस्वरूप-रूपी समुद्र की ओर बह चली है, ७ इस नदी के किनारे-किनारे; ८ कमल; ९ भौंरे और जलपक्षी ।

४१. १ उत्तर; २ चर्चा; ३ यात्रियो का समूह, ४ परशुराम का क्रोध, ५ अच्छी तरह बँधे हुए; ६ पर्व के समय; ७ केरी=की; ८ शान्त करनेवाला; ९ जप और यज्ञ; १० कीचड ।

कीरति-सरित छहूँ रितु रूरी[1] । समय सुहावनि[2], पावनि भूरी[3] ॥
हिम[4] हिमसैलसुता[5] - सिव-ब्याहू । सिसिर सुखद प्रभु-जनम-उछाहू ॥
बरनब राम-बिबाह-समाजू । सो मुद-मंगलमय रितुराजू ॥
ग्रीषम दुसह राम-बनगवनू । पंथकथा खर आतप पवनू ।
बरषा घोर निसाचर-रारी[6] । सुरकुल - सालि[7] - सुमंगलकारी ॥
राम-राज सुख बिनय, बडाई । बिसद सुखद सोइ सरद सुहाई ॥
सती-सिरोमनि सिय-गुनगाथा । सोइ गुन अमल अनूपम पाथा[8] ॥
भरत-सुभाउ सुसीतलताई । सदा, एकरस, बरनि न जाई ॥
दो० अवलोकनि बोलनि, मिलनि प्रीति परसपर हास ।
भायप[9] भलि चहु बंधु की जल-माधुरी[10], सुबास[11] ॥ ४२ ॥

आरति, बिनय दीनता मोरी । लघुता[1] ललित सुबारि न थोरी ॥
अदभुत सलिल सुनत गुनकारी । आस - पिआस - मनोमल - हारी ॥
राम-सुप्रेमहि पोषत पानी । हरत सकल कलि-कलुष गलानी[2] ॥
भव-श्रम-सोषक[3], तोषक तोषा[4] । समन दुरित[5]-दुख दारिद-दोषा ॥
काम - कोह - मद - मोह-नसावन । बिमल-बिबेक-बिराग-बढ़ावन ॥
सादर मज्जन-पान किए तें । मिटहिं पाप-परिताप हिए तें ॥
जिन्ह एहिं बारि न मानस धोए । ते कायर कलिकाल बिगोए ॥
तृषित निरखि रबि-कर भव बारी[7] । फिरहहिं मृग-जिमि जीव दुखारी ॥
दो०— मति अनुहारि सुबारि-गुन-गन गनि, मन अन्हवाइ ।
सुमिरि भवानी-संकरहि कह कबि कथा सुहाइ ॥ ४३(क) ॥

७. भरद्वाज का मोह

अब रघुपति-पद पंकरुह[8] हियँ धरि पाइ प्रसाद ।
कहउँ जुगल मुनिबर्य[9] कर मिलन, सुभग संबाद ॥ ४३(ख) ॥
भरद्वाज मुनि बसहिं प्रयागा । तिन्हहि राम पद अति अनुरागा ॥
तापस, सम-दम दया निधाना । परमारथ-पथ परम सुजाना ॥
माघ मकरगत[1] रबि जब होई । तीरथपतिहिं[2] आव सब कोई ॥ ४४ ॥

---

४२. १ सुन्दर, २ सभी समय सुन्दर, ३ अत्यन्त (भूरि) पवित्र; ४ हेमन्त ऋतु, ५ हिमालय की पुत्री पार्वती; ६ राक्षसों से युद्ध; ७ देवसमूह-रूपी शालि; ८ जल, ९ भ्रातृत्व, १० जल की मधुरता, ११ सुगन्ध ।

४३. १ हलकापन, २. गलानी=ग्लानि, ३. संसार का श्रम (जन्म और मृत्यु) सोख लेता है, ४ सन्तोष को भी सन्तुष्ट कर देता है; ५ पाप, ६ ठगे गये; ७ सूर्य की किरणों से उत्पन्न जल, मृग-मरीचिका; ८ कमल; ९ मुनिवर ।

एक बार भरि मकर नहाए। सब मुनीस आश्रमन्ह सिधाए ॥
जागबलिक मुनि परम बिबेकी। भरद्वाज राखे पद टेकी ॥
सादर चरण-सरोज पखारे। अति पुनीत आसन बैठारे ॥
करि पूजा मुनि सुजसु बखानी। बोले अति पुनीत मृदु बानी ॥
"नाथ! एक संसउ बड मोरें। करगत बेदतत्त्व सबु तोरें[1] ॥ ४५ ॥
रामु कवन, प्रभु! पूछउँ तोही। कहिअ बुझाइ कृपानिधि! मोही ॥
एक राम अवधेस-कुमारा,। तिन्ह कर चरित बिदित संसारा ॥
नारि-बिरहँ दुखु लहेउ अपारा। भयउ रोषु, रन रावनु मारा ॥
दो०—प्रभु सोइ राम कि अपर[2] कोउ जाहि जपत त्रिपुरारि।
सत्यधाम[3] सर्बग्य तुम्ह कहहु बिबेकु बिचारि ॥" ४६ ॥

(भरद्वाज की इस प्रार्थना पर याज्ञवल्क्य यह कहते हैं कि वह उनके संशय के निवारण के लिए शिव और पार्वती का संवाद प्रस्तुत करने जा रहे हैं किन्तु वह संवाद बहुत आगे आरम्भ होता है, दे० मानस-कौमुदी, प्रसंग-संख्या ११ और १२। बीच में विस्तृत शिवचरित मिलता है।)

८ सती का मोह

(शिवचरित का आरम्भिक प्रसंग। त्रेता युग में एक बार सती के साथ शिव अगस्त्य ऋषि के यहाँ गये। वहाँ कुछ समय रह कर वह सती के साथ अपने निवास-स्थान की ओर लौट रहे थे।)

तेहि अवसर भंजन महिभारा[1]। हरि रघुबंस लीन्ह अवतारा ॥
पिता बचन तजि राजु उदासी। दंडक-बन बिचरत अबिनासी ॥
दो०—हृदयँ बिचारत जात हर केहि बिधि दरसनु होइ।
गुप्त रूप अवतरेउ प्रभु, गएँ जान सबु कोइ ॥ ४८ (क) ॥
सो०—संकर-उर अति छोभु[2], सती न जानहिं मरमु[3] सोइ।
तुलसी दरसन-लोभु मन डरु, लोचन लालची ॥ ४८ (ख) ॥
रावन मरन मनुज-कर जाचा[1]। प्रभु बिधि-बचनु कीन्ह चह साचा ॥
जौं नहिं जाउँ, रहइ पछितावा। करत बिचारु न बनत बनावा[2] ॥
एहि बिधि भए सोचबस ईसा। तेही समय जाइ दससीसा[3] ॥
लीन्ह नीच मारीचहि संगा। भयउ तुरत सोइ कपटकुरंगा[4] ॥

---

४४. १ मकर राशि में; २ प्रयाग में।

४५ १ वेदों के सभी तत्त्व आपकी मुट्ठी में है, अर्थात् आप वेदों के सभी तत्त्वों के ज्ञाता है।

४६. १ अवध के राजा (दशरथ) के पुत्र, २ अन्य; ३ सत्य के भण्डार।

४८. १ संसार का भार; २ दु ख, ३ रहस्य, भेद।

४९ १ रावण ने मनुष्य के हाथ से अपनी मृत्यु की याचना (ब्रह्मा से) की थी;

करि छलु मूढ़ हरी बैदेही। प्रभु प्रभाउ तस बिदित न तेही॥
मृग बधि बंधु सहित हरि आए। आश्रमु देखि नयन जल छाए॥
बिरह बिकल नर इव रघुराई। खोजत बिपिन[५] फिरत दोउ भाई॥
कबहूँ जोग बियोग न जाकें। देखा प्रगट बिरह दुखु ताकें॥
दो०—अति बिचित्र रघुपति चरित जानहिं परम सुजान।
जे मतिमंद बिमोह बस हृदयँ धरहिं कछु आन॥ ४९॥
संभु समय तेहि रामहि देखा। उपजा हियँ अति हरषु बिसेषा॥
भरि लोचन छबिसिंधु[१] निहारी। कुसमय जानि न कीन्हि चिन्हारी[२]॥
जय सच्चिदानंद जग पावन। अस कहि चलेउ मनोज नसावन[३]॥
चले जात सिव सती समेता। पुनि पुनि पुलकत कृपानिकेता[४]॥
सतीं सो दसा संभु कै देखी। उर उपजा संदेहु बिसेषी॥
संकरु जगतबंद्य जगदीसा। सुर नर मुनि सब नावत सीसा॥
तिन्ह नृपसुतहि कीन्ह परनामा। कहि सच्चिदानंद परधामा[५]॥
भए मगन छबि तासु बिलोकी। अजहुँ[६] प्रीति उर रहति न रोकी॥
दो०—ब्रह्म जो ब्यापक बिरज[७] अज अकल अनीह अभेद।
सो कि देह धरि होइ नर जाहि न जानत बेद॥ ५०॥
बिष्नु जो सुर हित नरतनु धारी। सोउ सर्बग्य जथा त्रिपुरारी॥
खोजइ सो कि अग्य इव नारी। ग्यानधाम श्रीपति[१] असुरारी॥

९ सती द्वारा राम की परीक्षा

सो०—लाग न उर उपदेसु जदपि कहेउ सिवँ बार बहु।
बोले बिहसि महेसु हरिमाया बलु जानि जियँ॥ ५१॥
जौं तुम्हरें मन अति संदेहू। तौ किन[१] जाइ परीछा लेहू॥
तब लगि बैठ अहउँ बटछाहीं। जब लगि तुम्ह ऐहहु मोहि पाहीं॥
चलीं सती सिव आयसु पाई। करहिं बिचारु करौं का भाई॥
इहाँ संभु अस मन अनुमाना। दच्छसुता[२] कहुँ नहिं कल्याना॥

---

२ कोई उपाय नहीं निकल रहा है ३ दस सिरवाला रावण, ४ कपटमृग, ५ वन।

५० १ सुंदरता के समुद्र राम, २ पहचान, ३ कामदेव का विनाश करनेवाले, ४ कृपा निधान ५ परमधाम परमेश्वर ६ अब भी, ७ निर्मल शुद्ध, ८ अखण्ड।

५१ १ श्री (लक्ष्मी) के पति।

५२ १ क्यों नहीं, २ दक्ष की पुत्री सती।

होइहि सोइ जो राम रचि राखा। को करि तर्क बढ़ावै साखा[3]॥
अस कहि लगे जपन हरिनामा। गईं सती जहँ प्रभु सुखधामा॥
दो०—पुनि-पुनि हृदयँ बिचारु करि धरि सीता कर रूप।
आगें होइ चलि पंथ तेहिं जेहिं आवत नरभूप॥५२॥
लछिमन दीख उमाकृत[1] बेषा। चकित भए, भ्रम हृदयँ बिसेषा॥
कहि न सकत कछु अति गंभीरा। प्रभु प्रभाउ जानत मतिधीरा॥
सती-कपटु जानेउ सुरस्वामी[2]। सबदरसी सब अंतरजामी॥
सुमिरत जाहि मिटइ अग्याना। सोइ सरबग्य रामु भगवाना॥
सती कीन्ह चह तहँहुँ दुराऊ[3]। देखहु नारि-सुभाव प्रभाऊ॥
निज माया-बलु हृदयँ बखानी। बोले बिहँसि रामु मृदु बानी॥
जोरि पानि प्रभु कीन्ह प्रनामू। पिता समेत लीन्ह निज नामू॥
कहेउ बहोरि कहाँ बृषकेतू[4]। बिपिन अकेलि फिरहु केहि हेतू॥
दो०—राम बचन मृदु गूढ़[5] सुनि उपजा अति सकोचु।
सती सभीत महेस पहिं चलीं हृदयँ बड़ सोचु॥५३॥
मैं संकर कर कहा न माना। निज अग्यानु राम पर आना॥
जाइ उतरु अब देहउँ काहा। उर उपजा अति दारुन दाहा[1]॥
जाना राम सती दुखु पावा। निज प्रभाउ कछु प्रगटि जनावा॥
सतीं दीख कौतुकु[2] मग जाता। आगें रामु सहित-श्री[3] भ्राता॥
फिरि चितवा[4] पाछें प्रभु देखा। सहित बंधु सिय सुंदर बेषा॥
जहँ चितवहिं तहँ प्रभु आसीना[5]। सेवहिं सिद्ध मुनीस प्रबीना॥
देखे सिव बिधि बिष्नु अनेका। अमित प्रभाउ एक तें एका॥
बंदत चरन करत प्रभु-सेवा। बिबिध बेष देखे सब देवा॥
दो०—सती बिधात्री[6] इंदिरा[7] देखीं अमित-अनूप।
जेहिं जेहिं बेष अजादि[8] सुर तेहि-तेहि तन-अनुरूप॥५४॥
देखे जहँ-तहँ रघुपति जेते। सक्तिन्ह सहित[1] सकल सुर तेते॥
जीव चराचर जो संसारा। देखे सकल अनेक प्रकारा॥

---

३ कौन तर्क वितर्क कर व्यर्थ सिर खपाये।

५३ १ सती द्वारा बनाया हुआ (सीता का) वेश सती का (सीता) रूप, २ देवताओं के स्वामी राम, ३ कपट, ४ शिव (वह, जिनके झण्डे पर बैल का निशान है), ५ रहस्यपूर्ण।

५४ १ तीव्र दुःख, २ लीला, ३ सीता, ४ देखा, ५ विराजमान, ६ ब्रह्माणी, ७ लक्ष्मी, ८ ब्रह्मा (अज) आदि।

५५ १ अपनी-अपनी शक्ति के साथ।

पूजहिं प्रभुहि देव बहु वेषा। राम-रूप दूसर नहिं देखा॥
अवलोके रघुपति बहुतेरे। सीता सहित, न वेष घनेरे[2]॥
सोइ रघुवर, सोइ लछिमनु-सीता। देखि सती अति भईं सभीता॥
हृदय कंप, तन सुधि कछु नाहीं। नयन मूँदि बैठीं मग माहीं॥
बहुरि बिलोकेउ नयन उघारी। कछु न दीख तहँ दच्छकुमारी॥
पुनि-पुनि नाइ राम-पद सीसा। चली तहाँ, जहँ रहे गिरीसा[3]॥५५॥

१० शिव का संकल्प

(शिव के पूछने पर सती ने यह कहा कि उन्होंने राम की परीक्षा नहीं ली।)

तब संकर देखेउ धरि ध्याना। सती जो कीन्ह चरित सबु जाना॥
बहुरि राममायहि[1] सिरु नावा। प्रेरि सतिहि जेहिं झूँठ कहावा॥
हरि-इच्छा भावी बलवाना। हृदयँ बिचारत संभु सुजाना॥
सती कीन्ह सीता कर वेषा। सिव-उर भयउ बिषाद बिसेषा॥
जौं अब करउँ सती सन प्रीती। मिटइ भगति पथु[2], होइ अनीती॥
दो०—परम पुनीत न जाइ तजि, किएँ प्रेम बड़ पापु।
प्रगटि न कहत महेसु कछु हृदयँ अधिक संतापु॥ ५६॥

तब संकर प्रभु पद सिरु नावा। सुमिरत रामु हृदयँ अस आवा॥
एहिं तन सतिहि भेट मोहि नाहीं। सिव संकल्पु कीन्ह मन माहीं॥
दो०—सती हृदयँ अनुमान किय, सबु जानेउ सर्बग्य।
कीन्ह कपटु मैं संभु सन नारि सहज जड़, अग्य॥५७(ख)॥

(दोहा सं० ५७ ख से छन्द सं० १०५/७ सती द्वारा अपने पिता दक्ष प्रजापति के यज्ञ में शिव का भाग न पा कर आत्मदाह और पार्वती के रूप में हिमालय के यहाँ जन्म, नारद के परामर्श पर पार्वती का शिव के लिए तप; शिव का तपोभंग करने के प्रयत्न में कामदेव का दाह; देवताओं की प्रार्थना पर पार्वती से विवाह के लिए शिव की सहमति, दोनों का विवाह तथा कैलास में निवास।)

---

२ किन्तु उनके वेश या रूप बहुत नहीं थे (सर्वत्र वही राम थे); ३ शिव।
५६. १ राम की माया को; २ पथ।

११ पार्वती के प्रश्न

(यहाँ से याज्ञवल्क्य द्वारा शिव पार्वती संवाद आरम्भ)

परम रम्य[1] गिरिबरु[2] कैलासू। सदा जहा सिव उमा निवासू ॥१०५॥
तेहि गिरि पर बट बिटप बिसाला। नित नूतन सुंदर सब काला ॥
एक बार तेहि तर प्रभु गयऊ। तरु बिलोकि उर अति सुखु भयऊ ॥
निज कर डासि नागरिपु छाला[1]। बैठ सहजहि संभु कृपाला ॥१०६॥
बैठ सोह कामरिपु[1] कैसे। धरें सरीरु सांतरसु[3] जैसें ॥
पारबती भल अवसरु जानी। गई संभु पहिं मातु भवानी ॥
जानि प्रिया आदरु अति कीन्हा। बाम भाग आसनु हर दीन्हा ॥
बैठी सिव समीप हरषाई। पूरुब जन्म-कथा चित आई ॥
पति हियँ हेतु अधिक अनुमानी। बिहसि उमा बोली प्रिय बानी ॥
कथा जो सकल लोक हितकारी। सोइ पूछन चह सैलकुमारी[4] ॥
बिस्वनाथ ! मम नाथ ! पुरारी। त्रिभुवन महिमा बिदित तुम्हारी ॥
चर अरु अचर नाग नर देवा। सकल करहिं पद पंकज सेवा ॥

दो०—प्रभु ! समरथ सर्बग्य सिव सकल कला गुन धाम।
जोग ग्यान बैराग्य निधि प्रनत-कल्पतरु नाम ॥ १०७ ॥

जौं मो पर प्रसन्न सुखरासी[1]। जानिअ सत्य मोहि निज दासी ॥
तौ प्रभु ! हरहु मोर अग्याना। कहि रघुनाथ कथा बिधि नाना ॥
जासु भवनु सुरतरु-तर[2]होई। सहि कि दरिद्र जनित दुखु सोई ॥
ससिभूषन[3] ! अस हृदय बिचारी। हरहु नाथ ! मम मति भ्रम भारी ॥
प्रभु ! जे मुनि परमारथबादी[4]। कहहिं राम कहुँ ब्रह्म अनादी ॥
सेष सारदा बेद पुराना। सकल करहिं रघुपति गुन गाना ॥
तुम्ह पुनि राम राम दिन राती। सादर जपहु अनग-आराती[5] ॥
रामु सो अवध नृपति सुत सोई। की अज अगुन अलखगति कोई ॥

---

१०५ १ अत्यन्त सुन्दर, २ पर्वतों मे श्रेष्ठ।

१०६ १ नाग (हाथी) के शत्रु (रिपु) अर्थात बाघ की छाल।

१०७ १ कामदेव के शत्रु, शिव, २ शान्तरस, ३ यश, ४ शैल (हिमालय पर्वत) की पुत्री, पार्वती, ५ शरणागतो के लिए कल्पवृक्ष के समान।

१०८ १ सुख के भण्डार, २ कल्पवृक्ष के नीचे, ३ शशिभूषण, शिव, ४ परमतत्त्व के ज्ञाता और वक्ता, ५ कामदेव (अनग) के शत्रु (अराति) शिव,

दो०—जौं नृप-तनय[६] त ब्रह्म किमि नारि-बिरहँ मति-भोरि[७]।
देखि चरित, महिमा सुनत, भ्रमति बुद्धि अति मोरि ॥१०८॥
जौं अनीह, ब्यापक, बिभु[१] कोऊ। कहहु बुझाइ नाथ! मोहि सोऊ॥
अग्य जानि, रिस उर जनि धरहू। जेहि बिधि मोह मिटै, सोइ करहू॥
मैं बन दीखि राम-प्रभुताई। अति भय बिकल न तुम्हहि सुनाई॥
तदपि मलिन मन बोधु न आवा। सो फलु भली भाँति हम पावा॥
अजहूँ कछु संसउ मन मोरें। करहु कृपा, बिनवउँ कर जोरें॥
प्रभु तब मोहि बहु भाँति प्रबोधा[२]। नाथ! सो समुझि करहु जनि क्रोधा॥
तब कर अस बिमोह अब नाहीं। रामकथा पर रुचि मन माहीं॥
कहहु पुनीत राम-गुन-गाथा। भुजगराज-भूषन![३] सुरनाथा॥
दो०—बंदउँ पद धरि धरनि सिरु[४], बिनय करउँ कर जोरि।
बरनहु रघुबर-बिसद-जसु श्रुति सिद्धांत निचोरि ॥१०९॥
जदपि जोषिता[१] नहिं अधिकारी। दासी मन-क्रम-बचन[२] तुम्हारी॥
गूढ़उ तत्त्व न साधु दुरावहिं[३]। आरत[४] अधिकारी जहँ पावहिं॥
अति आरति पूछउँ सुरराया[५]। रघुपति-कथा कहहु करि दाया॥
प्रथम सो कारन कहहु बिचारी। निर्गुन ब्रह्म सगुन-बपु-धारी॥
पुनि प्रभु! कहहु राम-अवतारा। बालचरित पुनि कहहु उदारा॥
कहहु जथा जानकी बिबाही। राज तजा सो दूषन[६] काहीं॥
बन बसि कीन्हे चरित अपारा। कहहु नाथ! जिमि रावन मारा॥
राज बैठि कीन्ही बहु लीला। सकल कहहु संकर! सुखसीला॥
दो०—बहुरि कहहु करुनायतन[७]! कीन्ह जो अचरज राम।
प्रजा-सहित रघुबंसमनि किमि गवने निज धाम ॥११०॥
पुनि प्रभु! कहहु सो तत्त्व बखानी। जेहिं बिग्यान-मगन मुनि ग्यानी॥
भगति, ग्यान, बिग्यान, बिरागा। पुनि सब बरनहु सहित बिभागा[१]॥
औरउ राम-रहस्य अनेका। कहहु नाथ! अति बिमल बिबेका॥
जो प्रभु! मैं पूछा नहिं होई। सोउ दयाल! राखहु जनि गोई[२]॥
तुम्ह त्रिभुवन-गुर बेद बखाना। आन जीव पाँवर[३] का जाना॥"
प्रस्न उमा कै सहज सुहाई। छल-बिहीन सुनि सिव-मन भाई॥

---

६ राजा के पुत्र; ७ भ्रान्त बुद्धिवाले।

१०९. १ सर्वसमर्थ; २ समझाया; ३ सर्पराज को आभूषण की तरह धारण करने वाले शिव; ४ धरती पर सिर टेक कर।

११०. १ स्त्री (योषिता), २ मन, कर्म और वचन; ३ छिपाते हैं; ४ आर्त्त, दु:खी, ५ देवताओं के स्वामी, ६ दोष, ७ कृपा के भण्डार, परम कृपालु।

१११. १ भेद सहित २ छिपा कर ३ पामर, नीच।

१२ शिव का उत्तर

हर हियँ रामचरित सब आए। प्रेम पुलक लोचन जल छाए ॥
श्रीरघुनाथ रूप उर आवा। परमानंद अमित[४] सुख पावा ॥
दो०—मगन ध्यानरस दंड जुग[५] पुनि मन बाहेर कीन्ह।
रघुपति चरित महेस तब हरषित बरनै लीन्ह ॥१११॥
दो०— राम कृपा तें पारबति ! सपनेहु तव मन माहिं।
सोक मोह संदेह भ्रम मम बिचार कछु नाहिं ॥११२॥
तदपि असंका कीन्हिहु सोई। कहत सुनत सब कर हित होई ॥
जिन्ह हरिकथा सुनी नहिं काना। श्रवन रंध्र[१] अहिभवन[२] समाना ॥
नयनन्हि संत दरस नहिं देखा। लोचन मोरपंख कर लेखा[३] ॥
ते सिर कटु तुंबरि[४] समतूला[५]। जे न नमत हरि गुर पद मूला[६] ॥
जिन्ह हरिभगति हृदय नहिं आनी। जीवत सव[७] समान तेइ प्रानी ॥
जो नहिं करइ राम गुन गाना। जीह[८] सो दादुर-जीह समाना ॥
कुलिस[९]-कठोर निठुर सोइ छाती। सुनि हरिचरित न जो हरषाती ॥
गिरिजा ! सुनहु राम कै लीला। सुर हित दनुज बिमोहनसीला[१०] ॥
दो०—रामकथा* सुरधेनु सम सेवत सब सुख दानि।
संतसमाज[११] सुरलोक सब को न सुनै अस जानि ॥११३॥
रामकथा सुंदर कर तारी[१]। संसय बिहग उड़ावनिहारी ॥
रामकथा कलि बिटप कुठारी[२]। सादर सुनु गिरिराजकुमारी ॥
राम-नाम गुन चरित सुहाए। जनम करम अगनित श्रुति गाए ॥
जथा[३] अनंत राम भगवाना। तथा[४] कथा कीरति गुन नाना ॥
तदपि जथा-श्रुत[५] जसि मति मोरी[६]। कहिहउँ देखि प्रीति अति तोरी ॥
उमा ! प्रस्न तव सहज सुहाई। सुखद संतसंमत[७] मोहि भाई ॥
एक बात नहिं मोहि सोहानी[८]। जदपि मोह बस कहेहु भवानी ॥
तुम्ह जो कहा राम कोउ आना। जेहि श्रुति गाव धरहिं मुनि ध्याना ॥

---

४ बहुत अधिक, ५ दो (युग) घड़ी (दण्ड)।

११३ १ कानों के छेद (रंध्र) २ साँप (अहि) का बिल, ३ मोरपंख की तरह, ४ तूँबी, ५ जैसा, ६ पद मूला=पद तल में पैरों के नीचे, ७ शव, मृतक ८ जीभ, ९ वज्र १० राक्षसों को भ्रम में डालनेवाली, ११ सत्पुरुषों का समाज।

११४ १ हाथ की ताली २ कलियुग रूपी वृक्ष को काटनेवाली कुल्हाड़ी के समान, ३ जैसे, ४ उसी तरह, ५ मैंने जैसा सुना है ६ मेरी बुद्धि जितनी है, ७ संतों के अनुकूल, ८ अच्छी लगी।

दो०—कहहिं सुनहिं अस अधम नर ग्रसे जे मोह पिसाच[९]।
पाषंडी, हरि पद बिमुख जानहिं झूठ न साच ॥११४॥
अग्य अकोबिद[१] अंध अभागी। काई बिषय[२] मुकुर मन[३] लागी॥
लंपट कपटी कुटिल बिसेषी। सपनेहुँ संतसभा नहिं देखी॥
कहहिं ते बेद असंमत[४] बानी। जिन्ह कें सूझ लाभु नहिं हानी॥
मुकुर मलिन[५] अरु नयन बिहीना। राम-रूप देखहिं किमि दीना॥
जिन्ह के अगुन न सगुन बिबेका। जल्पहिं[६] कल्पित बचन अनेका॥
हरिमाया-बस जगत भ्रमाहीं। तिन्हहि कहत कछु अघटित[७] नाहीं॥
बातुल[८] भूत बिबस मतवारे। ते नहिं बोलहिं बचन बिचारे॥
जिन्ह कृत महामोह मद पाना[९]। तिन्ह कर कहा करिअ नहिं काना॥
सो०—अस निज हृदयँ बिचारि तजु संसय भजु राम पद।
सुनु गिरिराज कुमारि! भ्रम तम रबि कर[१०] बचन मम ॥११५॥
सगुनहि अगुनहि नहिं कछु भेदा। गावहिं मुनि पुरान-बुध-बेदा॥
अगुन अरूप अलख अज जोई। भगत प्रेम बस सगुन सो होई॥
जो गुन-रहित सगुन सोइ कैसे। जलु हिम उपल[१] बिलग नहिं जैसें॥
जासु नाम भ्रम तिमिर-पतंगा[२]। तेहि किमि कहिअ बिमोह प्रसंगा[३]॥
राम सच्चिदानंद दिनेसा। नहिं तहँ मोह निसा लवलेसा[४]॥
सहज प्रकासरूप भगवाना। नहिं तहँ पुनि बिग्यान बिहाना[५]॥
हरष बिषाद ग्यान अग्याना। जीव धर्म अहमिति[६] अभिमाना॥
राम ब्रह्म ब्यापक जग जाना। परमानंद परेस[७] पुराना[८]॥
दो०—पुरुष प्रसिद्ध प्रकास निधि प्रगट परावर[९]-नाथ।
रघुकुलमनि मम स्वामि सोइ कहि सिवँ नायउ माथ ॥११६॥
निज भ्रम नहिं समुझहिं अग्यानी। प्रभु पर मोह धरहिं जड़ प्रानी॥

---

९ मोह का प्रेत।

११५ १ मूर्ख, २ विषय-रूपी काई, ३ मन रूपी दर्पण, ४ वेद विरुद्ध, ५ (जिनका मन रूपी) दर्पण मलिन है, ६ बकते फिरते हैं, ७ असम्भव, ८ वातरोग से पीड़ित, ९ जिन्होंने महामोह रूपी मदिरा का पान किया है, १० भ्रम के अन्धकार के लिए सूर्य की किरणों के समान।

११६. १ पानी और ओला (हिम उपल), २ भ्रम के अन्धकार (तिमिर) के लिए सूर्य (पतंग), ३ मोह की बात, ४ वहाँ मोह की रात्रि का लेशमात्र (लवलेश) भी नहीं है, ५ विज्ञान का प्रभात, ६ अहंकार, ७ बड़े से भी बड़े, ८ पुराणपुरुष, ९ ब्रह्मा आदि देवता और मनुष्य आदि जड़ चेतन पदार्थ।

जथा गगन घन पटल[1] निहारी । झापेउ भानु कहहिं कुबिचारी ॥
चितव जो लोचन अगुलि लाएँ । प्रगट जुगल ससि तेहि के भाएँ[3] ॥
उमा ! राम बिषइक अस मोहा । नभ तम धूम धूरि जिमि सोहा ॥
विषय करन सुर[4] जीव समेता । सकल एक तें एक सचेता[5] ॥
सब कर परम प्रकासक जोई । राम अनादि अवधपति सोई ॥
जगत प्रकास्य पकासक रामू[6] । मायाधीस ग्यान गुन धामू ॥
जासु सत्यता ते जड माया । भास सत्य इव मोह सहाया[7] ॥
दो०—रजत सीप महुँ भास जिमि[8] जथा भानु कर बारि[9] ।
जदपि मृषा[10] तिहुँ काल सोइ भ्रमन सकइ कोउ टारि ॥११७॥
एहि बिधि जग हरि आश्रित[1] रहई । जदपि असत्य देत दुख अहई[2] ॥
जौं सपने सिर काटै कोई । बिनु जागे न दूरि दुख होई ॥
जासु कृपाँ अस भ्रम मिटि जाई । गिरिजा ! सोइ कृपाल रघुराई ॥
आदि अंत कोउ जासु न पावा । मति-अनुमानि निगम अस गावा ॥
बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना । कर बिनु करम करइ बिधि नाना ॥
आनन रहित सकल रस भोगी । बिनु बानी बकता[4] बड जोगी ॥
तन बिनु परस नयन बिनु देखा । ग्रहइ घ्रान बिनु बास असेषा[5] ॥
असि सब भाँति अलौकिक करनी । महिमा जासु जाइ नहिं बरनी ॥
दो०—जेहि इमि गावहिं बेद बुध जाहि धरहिं मुनि ध्यान ।
सोइ दसरथ सुत भगत हित कोसलपति भगवान ॥११८॥

१३ अवतार-हेतु

सुनु गिरिजा ! हरिचरित सुहाए । बिपुल बिसद निगमागम गाए ॥
हरि अवतार हेतु जेहि होई । इदमित्थं[1] कहि जाइ न सोई ॥
राम अतर्क्य बुद्धि मन-बानी । मत हमार अस सुनहि सयानी ॥
तदपि संत मुनि बेद-पुराना । जस कछु कहहिं स्वमति[2] अनुमाना ॥

---

११७ १ बादलों का परदा, २ देखता है, ३ उसके लिए, ४ इन्द्रियों (करणों) के देवता, ५ ये सब एक के द्वारा एक सचेतन होते हैं; क्योंकि विषयों का प्रकाश इन्द्रियों से होता है, इन्द्रियों का प्रकाश अपने देवताओं से और इन्द्रिय-देवताओं का प्रकाश जीवात्मा से, ६ यह जगत प्रकाश्य है और राम इसके प्रकाशक हैं, ७ मोह की सहायता से यह जड माया सत्य प्रतीत होती है, ८ जैसे सीप में चाँदी (रजत) का आभास होता है, ९ जैसे सूर्य की किरणों में जल की प्रतीति होती है, १० झूठ, मिथ्या ।
११८ १ भगवान् पर निर्भर, २ दुःख देता है, ३ मुख ४, वक्ता, ५ अशेष (सब) ।
१२१ १ इतना ही है, २ अपनी बुद्धि ।

तस मैं सुमुखि ! सुनावउँ तोही । समुझि परइ जस कारन मोही ॥
जब-जब होइ धरम कै हानी । बाढ़हिं असुर अधम-अभिमानी ॥
करहिं अनीति, जाइ नहिं बरनी । सीदहिं[3] बिप्र, धेनु, सुर, धरनी ॥
तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा । हरहिं कृपानिधि सज्जन-पीरा ॥

दो०—असुर मारि थापहिं[4] सुरन्ह राखहिं निज श्रुति-सेतु[5] ।
जग बिस्तारहिं बिसद जस, राम जन्म कर हेतु ॥१२१॥

सोइ जस गाइ भगत भव तरहीं । कृपासिंधु जन-हित[1] तनु धरहीं ॥
राम-जनम के हेतु अनेका । परम बिचित्र एक तें एका ॥
जनम एक-दुइ कहउँ बखानी । सावधान सुनु सुमति भवानी ॥
द्वारपाल हरि के प्रिय दोऊ । जय अरु बिजय जान सब कोऊ ॥
बिप्र-श्राप तें दूनउ भाई । तामस असुर-देह[2] तिन्ह पाई ॥
कनककसिपु[3] अरु हाटकलोचन[4] । जगत-बिदित सुरपति-मद-मोचन[5] ॥
बिजई समर-बीर बिख्याता । धरि बराह-बपु[6] एक निपाता[7] ॥
होइ नरहरि[8] दूसर पुनि मारा । जन[9]-प्रह्लाद-सुजस बिस्तारा ॥

दो०—*भए निसाचर जाइ तेइ महाबीर बलवान ।*
कुंभकरण रावन सुभट सुर-बिजई जग जान" ॥१२२॥

१४ विष्णु की प्रतिज्ञा

(बन्द सं० १२३ से १८२ शिव द्वारा राम के अवतार के कारणों का उल्लेख (क) विष्णु द्वारा जलन्धर की पत्नी वृन्दा का सतीत्व-हरण और विष्णु को अपनी पत्नी के राक्षस द्वारा अपहरण का शाप, (ख) विष्णु की प्रेरणा से निर्मित मायानगर की राजकन्या से विवाह के लिए नारद की व्यग्रता और उसमें असफल होने पर विष्णु को नारी विरह तथा शिव के दो गणों को राक्षस के रूप में जन्म लेने का शाप; (ग) मनु द्वारा विष्णु—जैसे पुत्र की प्राप्ति के लिए तपस्या, और विष्णु द्वारा मनु और शतरूपा को यह वरदान कि वे *अयोध्या में दशरथ और*

---

३ कष्ट देते हैं, ४ स्थापित करते हैं, ५ वेदों की मर्यादा ।

१२२. १ अपने भक्तों के लिए, २ राक्षस का शरीर; ३ हिरण्यकशिपु ४ हिरण्याक्ष; ५ इन्द्र (सुरपति) का घमण्ड दूर करने वाले; ६ वराह का शरीर; ७ वध किया, ८ नृसिंह; ९ भक्त ।

कौशल्या के रूप में जन्म लेंगे और वह उनके पुत्र के रूप में अवतार ग्रहण करेंगे, और (घ) राजा प्रतापभानु का कपटमुनि वेशधारी शत्रु राजा और राक्षस कालकेतु के षड्यंत्र में आमन्त्रित ब्राह्मणों को ब्राह्मण का मांस परोसना और उनके शाप से रावण के रूप में जन्म।)

दो०—भुजबल बिस्व बस्य[1] करि राखेसि कोउ न सुतंत्र।
मंडलीक मनि[2] रावन राज करइ निज मंत्र[3]॥१८२(क)॥

छं०—जप जोग बिरागा तप मख भागा[1] श्रवन सुनइ दससीसा।
आपुनु उठि धावइ रहै न पावइ धरि सब घालइ खीसा[2]॥
अस भ्रष्ट अचारा[3] भा संसारा धर्म सुनिअ नहिं काना।
तेहिं बहुबिधि त्रासइ[4] देस निकासइ जो कह बेद पुराना॥

सो०—बरनि न जाइ अनीति घोर निसाचर जो करहिं।
हिंसा पर अति प्रीति तिन्ह के पापहि कवनि मिति[5]॥१८३॥

बाढ़े खल बहु चोर जुआरा। जे लंपट[1] परधन परदारा॥
मानहिं मातु पिता नहिं देवा। साधुन्ह सन करवावहिं सेवा॥
जिन्ह के यह आचरन भवानी। ते जानेहु निसिचर सब प्रानी॥
अतिसय देखि धर्म कै ग्लानी[2]। परम सभीत धरा अकुलानी॥
गिरि सरि सिंधु भार नहिं मोही। जस मोहि गरुअ[3] एक परद्रोही[4]॥
सकल धर्म देखइ बिपरीता। कहि न सकइ रावन भय भीता[5]॥
धेनु रूप धरि हृदयँ बिचारी। गई तहाँ जहँ सुर मुनि झारी[6]॥
निज संताप[7] सुनाएसि रोई। काहू तें कछु काज न होई॥

छं०—सुर मुनि गंधर्बा मिलि करि सर्बा गे बिरंचि के लोका।
सँग गोतनुधारी[8] भूमि बिचारी परम बिकल भय सोका॥
ब्रह्माँ सब जाना मन अनुमाना मोर कछू न बसाई[9]।
जा करि तैं दासी सो अबिनासी हमरेउ तोर सहाई[10]॥

---

१८२ १ अधीन, २ मण्डलीक=राजाओं का राजा, मणि=प्रधान। इस प्रकार 'मंडलीक—मनि' का अर्थ 'सार्वभौम सम्राट' है; ३ इच्छा।

१८३ १ यज्ञ (मख) में भाग, २ सबको पकड़कर नष्ट कर देता, ३ आचरण, ४ त्रास या यातना देता; ५ क्या ठिकाना?

१८४ १ लोभी, २ धर्म के प्रति अरुचि; ३ भारी, ४ दूसरों का अहित करनेवाला; ५ रावण के डर से; ६ झारी=समूह; ७ दुःख; ८ गौ का शरीर धारण कर; ९ मेरी एक भी नहीं चलेगी, यह मेरे वश का नहीं; १० सहायक।

सो०—धरनि[१] धरहि मन धीर", कह बिरंचि, "हरिपद सुमिरु।
जानत जन[११] की पीर प्रभु भंजिहि दारुन बिपति" ॥ १८४॥
दो०—जानि सभय सुर-भूमि, सुनि बचन समेत-सनेह।
गगनगिरा[१] गभीर भइ हरनि सोक - संदेह ॥ १८६॥
"जनि डरपहु मुनि-सिद्ध-सुरेसा। तुम्हहि लागि धरिहउँ नर - बेसा[१] ॥
असन्ह-सहित[२] मनुज अवतारा। लेहउँ दिनकर-बंस[३] उदारा" ॥१८७॥

१५ दशरथ-यज्ञ

यह सब रुचिर चरित मैं भाषा। अब सो सुनहु जो बीचहि राखा[१] ॥
अवधपुरी रघुकुलमनि राऊ। बेद-बिदित तेहि दसरथ नाऊँ॥
धरम-धुरंधर, गुननिधि, ग्यानी। हृदयँ भगति, मति सारँगपानी[२] ॥
दो० —कौसल्यादि नारि प्रिय सब आचरन-पुनीत।
पति-अनुकूल प्रेम दृढ, हरि-पद कमल बिनीत ॥ १८८॥
एक बार भूपति मन माहीं। भै गलानि[१] मोरें सुत नाहीं॥
गुर-गृह गयउ तुरत महिपाला[२]। चरन लागि करि बिनय बिसाला[३] ॥
निज दुख-सुख सब गुरहि सुनायउ। कहि बसिष्ठ बहुबिधि समुझायउ ॥
"धरहु धीर, होइहहिं सुत चारी। त्रिभुवन-बिदित[४] भगत भय-हारी"॥
सृंगी-रिषिहि[५] बसिष्ठ बोलावा। पुत्रकाम सुभ जग्य करावा[६] ॥
भगति-सहित मुनि आहुति दीन्हे। प्रगटे अगिनि चरू[७] कर लीन्हे ॥
"जो बसिष्ठ कछु हृदयँ बिचारा। सकल काजु भा सिद्ध तुम्हारा ॥
यह हबि[८] बाँटि देहु नृप जाई। जथा-जोग जेहि, भाग बनाई" ॥
दो०—तब अदृस्य भए पावक सकल सभहि समुझाइ।
परमानंद-मगन नृप, हरष न हृदयँ समाइ ॥ १८९॥
तबहिं रायँ प्रिय नारि बोलाईं। कौसल्यादि तहाँ चलि आईं ॥
अर्ध भाग कौसल्यहि दीन्हा। उभय[१] भाग आधे कर कीन्हा ॥
कैकेई कहँ नृप सो दयऊ। रह्यो सो उभय भाग पुनि भयऊ ॥
कौसल्या कैकेई हाथ धरि। दीन्ह सुमित्रहि मन प्रसन्न करि ॥

---

१८४ ११ भक्त।
१८६. १ आकाशवाणी।
१८७. १ मनुष्य का रूप; २ अंशो के साथ, ३ सूर्यवंश।
१८८. १ जो बीच में छोड़ दिया था; २ शार्ङ्गपाणि, विष्णु।
१८९. १ दुःख; २ राजा; ३ बहुत; ४ तीनो लोको में प्रसिद्ध; ५ ऋष्यशृंग को; ६ पुत्र की कामना से शुभ यज्ञ कराया; पुत्रेष्टि नामक यज्ञ कराया; ७ खीर; ८ हवन की सामग्री, खीर।
१९०. १ दो।

एहिं बिधि गर्भसहित सब नारी। भईं हृदयँ हरषित सुख भारी॥
जा दिन तें हरि गर्भहिं आए। सकल लोक सुख संपति छाए॥
मंदिर[2] महँ सब राजहिं रानी। सोभा सील तेज की खानी[3]॥
सुख जुत[4] कछुक काल चलि गयऊ। जेहिं प्रभु प्रगट सो अवसर भयऊ॥

१६ राम का जन्म

दो०—जोग लगन ग्रह बार तिथि सकल भए अनुकूल[5]।
चर अरु अचर हर्षजुत राम जनम सुखमूल॥ १९०॥

नौमी तिथि मधु मास[1] पुनीता। सकल पच्छ अभिजित हरिप्रीता[2]॥
मध्यदिवस अति सीत न घामा[3]। पावन काल लोक बिश्रामा[4]॥
सीतल मंद सुरभि बह बाऊ[5]। हरषित सुर संतन मन चाऊ[6]॥
बन कुसुमित गिरिगन मनिआरा[7]। स्रवहिं सकल सरिताऽमृतधारा[8]॥
सो अवसर बिरंचि जब जाना। चले सकल सुर साजि बिमाना॥
गगन बिमल संकुल[9] सुर जूथा[10]। गावहिं गुन गंधर्ब बरूथा[11]॥
बरषहिं सुमन सुअंजुलि साजी। गहगहि गगन दुंदुभी[12] बाजी॥
अस्तुति करहिं नाग मुनि देवा। बहुबिधि लावहिं निज निज सेवा[13]॥

दो०—सुर समूह बिनती करि पहुँचे निज निज धाम।
जगनिवास[14] प्रभु प्रगटे अखिल लोक बिश्राम॥ १९१॥

छं०—भए प्रगट कृपाला दीनदयाला कौसल्या हितकारी।
हरषित महतारी मुनि मन हारी अद्भुत रूप बिचारी॥
लोचन अभिरामा[1] तनु घनस्यामा निज आयुध भुज चारी[2]।
भूषन बनमाला[3] नयन बिसाला सोभासिंधु खरारी[4]॥
कह दुइ कर जोरी अस्तुति तोरी केहि बिधि करौं अनंता[5]।
माया गुन ग्यानातीत[6] अमाना बेद पुरान भनंता[7]॥

---

२ भवन; ३ खान, ४ सुखयुक्त, सुख से, ५ योग, लग्न, ग्रह, वार (दिन) और तिथि—सभी अनुकूल हो गये। (तिथि के चार अंग योग, लग्न, ग्रह और वार हैं।)

१९१ १ चैत का महीना, २ भगवान का प्रिय अभिजित नामक नक्षत्र; ३ न बहुत सरदी और न बहुत धूप या गरमी; ४ लोगों को आनन्द प्रदान करनेवाला, ५ वायु; ६ सन्तों के मन में प्रभु के दर्शन का चाव उत्पन्न हो गया था, ७ मणियों से प्रकाशित; ८ सभी नदियाँ अमृत की धारा बहा रही थीं; ९ भरा हुआ; १० देवताओं का समूह; ११ गन्धर्वसमूह; १२ नगाड़ा; १३ उपहार; १४ विश्वव्यापी।

१९२ १ अभिराम=सुन्दर; २ वे चारों भुजाओं में अपने आयुध या शस्त्र धारण किये हुए थे। विष्णु की भुजाओं में क्रमशः शंख, चक्र, गदा और पद्म हैं।)

करुना-सुख-सागर, सब-गुन-आगर[८], जेहि गावहिं श्रुति-संता।
सो मम हित लागी जन-अनुरागी[९], भयउ प्रगट श्रीकंता[१०] ॥
ब्रह्मांड-निकाया निर्मित माया रोम रोम प्रति, वेद कहै[११]।
मम उर सो बासी, यह उपहासी सुनत धीर मति थिर न रहै"॥
उपजा जब ग्याना प्रभु मुसुकाना, चरित बहुत बिधि कीन्ह चहै।
कहि कथा सुहाई मातु बुझाई जेहि प्रकार सुत-प्रेम लहै[१२] ॥
माता पुनि बोली सो मति डोली,"तजहु तात ! यह रूपा।
कीजै सिसुलीला अति प्रियसीला यह सुख परम अनूपा" ॥
सुनि बचन सुजाना रोदन ठाना होइ बालक सुरभूपा।
यह चरित जे गावहिं हरिपद पावहिं ते न परहिं भवकूपा[१३] ॥

दो०—बिप्र - धेनु - सुर - संत - हित लीन्ह मनुज-अवतार।
निज इच्छा-निर्मित तनु[१४], माया-गुन-गो-पार[१५] ॥ १९२ ॥

१७ नामकरण

कछुक दिवस बीते एहि भाँती। जात न जानिअ दिन अरु राती ॥
नामकरन कर अवसरु जानी। भूप बोलि पठए[१] मुनि ग्यानी ॥
करि पूजा भूपति अस भाषा[२]। 'धरिअ नाम जो मुनि ! गुनि राखा" ॥
इन्ह के नाम अनेक अनूपा। मैं नृप ! कहब स्वमति-अनुरूपा ॥
जो आनंद-सिंधु सुख-रासी। सीकर[३] तें त्रैलोक सुपासी[४] ॥
सो सुख-धाम राम अस नामा। अखिल लोक दायक-बिश्रामा ॥
बिस्व-भरन-पोषन[५] कर जोई। ताकर नाम भरत अस होई ॥
जाके सुमिरन तें रिपु-नासा। नाम सत्रुहन बेद-प्रकासा[६] ॥"

---

३ तुलसी, कुन्द, मन्दार, पारिजात और कमल, इन पाँच फूलों से बनी हुई माला को वनमाला कहते हैं; ४ खर नामक राक्षस के शत्रु; ५ हे अनन्त !; ६ माया, (सत्त्व, रज और तम नामक तीन) गुणों और ज्ञान से परे (अतीत); ७ कहते हैं; ८ आगर = भण्डार; ९ भक्तों पर प्रेम रखनेवाले; १० श्री (लक्ष्मी) के कन्त (पति) अर्थात् विष्णु; ११ वेद कहते हैं कि तुम्हारे प्रत्येक रोम में माया द्वारा निर्मित ब्रह्माण्डों के समूह हैं, १२ प्राप्त हो, १३ संसार रूपी कूप (में), १४ अपनी इच्छा से बनाया हुआ शरीर, १५ माया, तीन गुणों और सभी इन्द्रियों की पहुँच से परे

१९७ १ बुला भेजा; २ ऐसा कहा; ३ कण, ४ सुखी, ५ संसार का पालन-पोषण; ६ वेदों में प्रकाशित (प्रसिद्ध)।

दो०—लच्छन धाम[7] रामप्रिय सकल जगत आधार ।
गुरु बसिष्ट तेहि राखा लछिमन नाम उदार ॥१९७॥

धरे नाम गुर हृदयँ बिचारी । बेद तत्व[1] नृप तव सुत चारी ॥
मुनि धन[2] जन सरबस[3] सिव प्राना । बाल केलि[4] रस तेहि सुख माना ॥
बारेहि ते[5] निज हित पति[6] जानी । लछिमन राम चरन रति मानी ॥
भरत सत्रुहन दूनउ भाई । प्रभु सेवक जसि प्रीति बड़ाई ॥
स्याम गौर सुंदर दोउ जोरी । निरखहिं छबि जननीं तृन तोरी[7] ॥
चारिउ सील रूप-गुन धामा । तदपि अधिक सुखसागर रामा ॥१९८॥

१८ बालचरित

बालचरित हरि बहुबिधि कीन्हा । अति अनंद दासन्ह कहँ दीन्हा ॥
कछुक काल बीते सब भाई । बड़े भए परिजन-सुखदाई[1] ॥
चूडाकरन[2] कीन्ह गुरु जाई । बिप्रन्ह पुनि दछिना बहु पाई ॥
परम मनोहर चरित अपारा । करत फिरत चारिउ[3] सुकुमारा ॥
मन क्रम-बचन-अगोचर[4] जोई । दसरथ-अजिर[5] बिचर प्रभु सोई ॥
भोजन करत बोल जब राजा । नहिं आवत तजि बाल-समाजा ॥
कौसल्या जब बोलन जाई । ठुमुकु-ठुमुकु प्रभु चलहिं पराई[7] ॥
निगम नेति[8] सिव अंत न पावा । ताहि धरै जननी हठि धावा ॥
धूसर धूरि भरें तनु आए । भूपति बिहसि गोद बैठाए ॥

दो०—भोजन करत चपल चित इत उत अवसरु पाइ ।
भाजि चले किलकत मुख दधि-ओदन[9] लपटाइ ॥२०३॥

बालचरित अति सरल[1] सुहाए । सारद सेष संभु श्रुति गाए ॥
जिन्ह कर मन इन्ह सन नहिं राता[2] । ते जन बंचित किए बिधाता ॥
भए कुमार जबहिं सब भ्राता । दीन्ह जनेऊ गुरु पितु-माता ॥
गुरगृहँ गए पढ़न रघुराई । अलप[3] काल बिद्या सब आई ॥

---

७ शुभ लक्षणों के भण्डार, शुभ लक्षणों से परिपूर्ण ।

१९८ १ चारों वेदों के तत्त्व, २ मुनियों के धन, ३ भक्तों के सर्वस्व, ४ केलि — क्रीडा खेल, ५ बचपन से ही, ६ स्वामी, ७ तृण (तिनका) तोड़ती हैं जिससे उनके पुत्रों को अशुभ दृष्टि न लगे ।

२०३ १ सेवकों को सुख देनेवाले, २ चूड़ाकरण (मुण्डन), ३ चारों, ४ मन, कर्म और वाणी से अगोचर, ५ दशरथ के आँगन (अजिर) से, ६ बुलाते हैं, ७ भाग जाते हैं, ८ वेद जिन्हें नेति कहते हैं, ९ दही और भात ।

२०४ १ भोला भाला, २ अनुरक्त हुआ, ३ अल्प, थोड़ा ।

जासी सहज[४] स्वाम श्रुति चारी । सो हरि पढ, यह कौतुक[५] भारी ॥
विद्या-बिनय-निपुन, गुन-सीला । खेलहिं खेल सकल नृपलीला ॥
करतल[६] बान-धनुष अति सोहा । देखत रूप चराचर मोहा ॥
जिन्ह बीथिन्ह[७] बिहरहिं सब भाई । थकित[८] होहिं सब लोग-लुगाई ॥
दो०—कोसलपुर-बासी नर, नारि, बृद्ध अरु बाल ।
प्रानहु तें प्रिय लागत सब कहुँ राम कृपाल ॥२०४॥

१९ अहल्योद्धार

(छन्द-सं० २०५ से २१०/४ राक्षसों के उपद्रव से मुक्ति के लिए विश्वामित्र का अयोध्या-आगमन और दशरथ से राम और लक्ष्मण की याचना, राम द्वारा ताड़का और सुबाहु का वध तथा विश्वामित्र के आश्रम में लक्ष्मण के साथ कुछ समय तक निवास ।)

तब मुनि सादर कहा बुझाई । "चरित[१] एक प्रभु ! देखिअ जाई ॥"
धनुषजग्य सुनि रघुकुल-नाथा । हरषि चले मुनिबर के साथा ॥
आश्रम एक दीख मग माहीं । खग-मृग जीव-जंतु तहँ नाहीं ॥
पूछा मुनिहि सिला[२] प्रभु देखी । सकल कथा मुनि कहा बिसेषी[३] ॥
दो०—"गौतम-नारि[४] श्राप-बस उपल[५] देह धरि धीर ।
चरन-कमल-रज चाहति, कृपा करहु रघुबीर" ॥२१०॥

छं०—परसत पद पावन सोक-नसावन, प्रगट भई तपपुंज[१] सही[२] ।
देखत रघुनायक जन-सुखदायक, सनमुख[३] होइ कर जोरि रही ॥
अति प्रेम अधीरा, पुलक सरीरा, मुख नहिं आवइ बचन कही ।
अतिसय बड़भागी, चरनन्हि लागी, जुगल[४] नयन जलधार बही ॥
धीरजु मन कीन्हा, प्रभु कहुँ चीन्हा रघुपति-कृपा भगति पाई ।
अति निर्मल बानी अस्तुति ठानी[५], "ग्यानगम्य[६] जय रघुराई ॥
मैं नारि अपावन, प्रभु जग-पावन, रावन-रिपु जन-सुखदाई ।
राजीव[७]-बिलोचन, भव-भय-मोचन, पाहि-पाहि[८] ! सरनहिं आई ॥
मुनि श्राप जो दीन्हा, अति भल कीन्हा, परम अनुग्रह मैं माना ।
देखेउँ भरि लोचन हरि भवमोचन, इहइ[९] लाभ संकर जाना ॥

४ स्वाभाविक, ५ आश्चर्य; ६ हाथों में, ७ गलियों में; ८ मुग्ध ।

२१०. १ खेल, २ पत्थर, ३ विस्तार से; ४ गौतम ऋषि की पत्नी अहल्या, ५ पत्थर ।

२११. १ तप की मूर्ति, २ सचमुच; ३ सम्मुख, सामने, ४ दोनों, ५ प्रार्थना करने लगी; ६ ज्ञान के द्वारा ही समझ में आनेवाले, ७ कमल; ८ रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए; ९ इसको ।

बिनती प्रभु ! मोरी, मैं मति भोरी[१०] नाथ ! न मागउँ वर आना ।
पद-कमल-परागा, रस-अनुरागा मम मन-मधुप करै पाना ॥
जेहि पद सुरसरिता परम पुनीता प्रगट भई सिव सीस धरी ।
सोई पद-पंकज जेहि पूजत अज मम सिर धरेउ कृपाल हरी ॥
एहि भाँति सिधारी गौतम नारी बार बार हरि चरन परी ।
जो अति मन भावा, सो वरु पावा गै पतिलोक अनंद भरी ॥२११॥

२० राम-लक्ष्मण का जनकपुर दर्शन

(छन्द-सं० २१२ से २१७ विश्वामित्र के साथ राम और लक्ष्मण का जनकपुर आगमन ; राजा जनक द्वारा ऋषि की अभ्यर्थना साथ में आये हुए राजकुमारों के सम्बन्ध में जिज्ञासा तथा सबके लिए आवास का प्रबन्ध ।)

लखन-हृदयँ लालसा बिसेषी । जाइ जनकपुर आइअ देखी ॥
प्रभु-भय, बहुरि मुनिहि सकुचाहीं । प्रगट न कहहिं मनहिं मुसुकाहीं ॥
राम अनुज-मन की गति[१] जानी । भगत बछलता[२] हियँ हुलसानी ॥
परम बिनीत सकुचि मुसुकाई । बोले गुर अनुसासन[३] पाई ॥
"नाथ ! लखनु पुरु देखन चहहीं । प्रभु सकोच डर प्रगट न कहहीं ॥
जौं राउर आयसु[४] मैं पावौं । नगर देखाइ तुरत लै आवौं ॥
सुनि मुनीसु कह बचन सप्रीती । कस न राम ! तुम्ह राखहु नीती ॥
धरम-सेतु-पालक[५] तुम्ह ताता । प्रेम-बिबस[६] सेवक-सुखदाता ॥

दो०—जाइ देखि आवहु नगरु सुख निधान दोउ भाइ ।
करहु सुफल सब के नयन सुंदर बदन देखाइ' ॥२१८॥

मुनि पद-कमल बंदि दोउ भ्राता । चले लोक लोचन-सुखदाता[१] ॥
बालक-बृंद देखि अति सोभा । लगे संग, लोचन मनु लोभा[२] ॥
पीत बसन परिकर[३] कटि भाथा[४] । चारु चाप[५]-सर सोहत हाथा ॥
तन अनुहरत[६] सुचंदन खोरी[७] । स्यामल गौर मनोहर जोरी ॥
केहरि-कंधर,[८] बाहु बिसाला । उर अति रुचिर[९] नागमनि-माला[१०] ॥
सुभग सोन[११] सरसीरुह लोचन । बदन मयंक तापत्रय मोचन ॥

---

१० भोली बुद्धिवाली, ११ वरदान ।

२१८ १ मन की दशा, मन की बात, २ भक्त के प्रति प्रेम (वत्सलता), ३ गुरु का आदेश, ४ आज्ञा, ५ धर्म की मर्यादा के पालक, ६ प्रेम के वशीभूत हो कर ।

२१९ १ लोगों की आँखों को सुख देनेवाले, २ नेत्र और मन लुब्ध हो गये थे, ३ फेंटा, ४ तरकस, ५ धनुष, ६ शरीर के रंग के अनुसार, ७ चन्दन की रेखा, टीका, ८ सिंह की गरदन, ९ सुन्दर, १० गजमोतियों की माला, ११ शोण, लाल,

कानन्हि कनक-फूल[१२] छवि देहीं । चितवत चितहि[१३] चोरि जनु लेहीं ॥
चितवनि चारु, भृकुटि वर बांकी[१४] । तिलक-रेख-सोभा जनु चांकी[१५] ॥

दो०— रुचिर चौतनी[१६] सुभग सिर मेचक[१७] कुंचित[१८] केस ।
नख-सिख-सुंदर बधु दोउ, सोभा सकल सुदेस[१९] ॥२१९॥

देखन नगरु भूपसुत आए । समाचार पुरबासिन्ह पाए ॥
धाए धाम-काम सब त्यागी । मनहुँ रंक[१], निधि[२] लूटन लागी ॥
निरखि सहज सुंदर दोउ भाई । होहिं सुखी लोचन-फल पाई ॥
जुबतीं भवन-झरोखन्हि लागीं । निरखहिं राम-रूप अनुरागीं ॥
कहहिं परसपर बचन सप्रीती । "सखि! इन्ह कोटि-काम-छवि[३] जीती ॥
सुर, नर, असुर, नाग, मुनि माहीं । सोभा असि[४] कहुँ सुनिअति नाहीं ॥
बिष्नु चारि भुज, बिधि मुख चारी । बिकट बेष, मुख पंच पुरारी[५] ॥
अपर देउ[६] अस कोउ न आही । यह छवि सखी! पटतरिअ[७] जाही ॥

दो०—बय किसोर, सुषमा-सदन, स्याम-गौर सुख-धाम ।
अंग अंग पर वारिअहिं[८], कोटि-कोटि-सत काम ॥ २२० ॥

कहहु सखी! अस को तनुधारी[१] । जो न मोह यह रूप निहारी ॥
कोउ सप्रेम बोली मृदु बानी । "जो मैं सुना, सो सुनहु सयानी ॥
ए दोऊ दसरथ के ढोटा[२] । बाल मरालन्हि[३] के कल जोटा[४] ॥
मुनि-कौसिक[५] मख के रखवारे । जिन्ह रन-अजिर[६] निसाचर मारे ॥
स्याम गात, कल कंज-बिलोचन । जो मारीच-सुभुज[७]-मद-मोचन ॥
कौसल्या-सुत सो सुख-खानी । नाम रामु, धनु-सायक-पानी[८] ॥
गौर-किसोर बेषु-बर काछें[९] । कर सर-चाप राम के पाछें ॥
लछिमनु नामु राम-लघु-भ्राता । सुनु सखि! तासु सुमित्रा माता ॥

---

१२ कानों में सोने के (कर्ण) फूल । १३ चित्त को; १४ भौंहे सुन्दर और बाँकी हैं; १५ मुहर लगा दी है; १६ चार तनियों या बन्दोंवाली टोपी; १७ काले रंग के; १८ घुंघराले, १९ अंग के अनुरूप ।

२२०. १ दरिद्र, २ खजाना; ३ करोड़ों कामदेवों की सुन्दरता, ४ ऐसी; ५ शिव, ६ दूसरे देवता, ७ तुलना की जाय या उपमा दी जाय; ८ न्योछावर कर देना चाहिए ।

२२१ १ देहधारी अर्थात् प्राणी; २ पुत्र; ३ बाल हंस, ४ जोड़े; ५ विश्वामित्र मुनि; ६ युद्ध-भूमि; ७ सुबाहु, ८ हाथ (पाणि) में धनुष और बाण धारण करनेवाले ९ बनाये हुए ।

दो०—विप्रकाजु करि बंधु दोउ मग मुनिबधू उधारि।
आए देखन चापमख[10] सुनि हरषीं सब नारि ॥ २२१ ॥

देखि राम छबि कोउ एक कहई। जोगु जानकिहि यह बरु अहई[1] ॥
जौं सखि! इन्हहि देख नरनाहू[2]। पन परिहरि[3] हठि करइ बिबाहू ॥
कोउ कह, "ए भूपति पहिचाने। मुनि समेत सादर सनमाने ॥
सखि! परंतु पनु राउ न तजई। बिधि-बस[4] हठि अबिबेकहि भजई[5] ॥
कोउ कह, "जौं भल अहइ बिधाता। सब कहँ सुनिअ उचित फलदाता ॥
तौ जानकिहि मिलिहि बरु एहू। नाहिन आलि! इहाँ संदेहू ॥
जौं बिधि-बस अस बनै सँजोगू। तौ कृतकृत्य[6] होइ सब लोगू ॥
सखि! हमरें आरति[7] अति तातें। कबहुँक ए आवहिं एहि नातें ॥
दो०—नाहिं त हम कहुँ सुनहु सखि! इन्ह कर दरसनु दूरि।
यह संघटु[8] तब होइ जब पुन्य पुराकृत[9] भूरि[10] ॥ २२२ ॥

बोली अपर, "कहेहु! सखि नीका। एहिं बिआह अति हित सबही का ॥
कोउ कह "संकर-चाप कठोरा। ए स्यामल मृदुगात[1] किसोरा ॥
सबु असमंजस अहइ सयानी। यह सुनि अपर कहइ मृदु बानी ॥
'सखि! इन्ह कहँ कोउ-कोउ अस कहहीं। बड प्रभाउ देखत लघु अहहीं[2] ॥
परसि जासु पद पंकज धूरी। तरी अहल्या कृत अघ भूरी[3] ॥
सो कि रहिहि बिनु सिवधनु तोरें। यह प्रतीति परिहरिअ न भोरें[4] ॥
जेहिं बिरंचि रचि सीय सँवारी। तेहिं स्यामल बरु रचेउ बिचारी ॥'
तासु बचन सुनि सब हरषानी। ऐसेइ होउ, कहहिं मृदु बानी ॥
दो०—हियँ हरषहिं, बरषहिं सुमन सुमुखि सुलोचनि-बृंद।
जाहिं जहाँ जहँ बंधु दोउ तहँ-तहँ परमानंद ॥२२३ ॥

पुर पूरब दिसि गे दोउ भाई। जहँ धनुमख हित[1] भूमि बनाई ॥
अति बिस्तार चारु गच[2] ढारी[3]। बिमल बेदिका रुचिर सँवारी ॥

---

१० धनुषयज्ञ।

२२२ १ है, २ राजा, ३ प्रण छोड कर, ४ होनहार के वश मे होने के कारण, ५ अविवेक या हठ पर अड़े रहेंगे, ६ धन्य, ७ व्याकुलता, ८ संयोग, ९ पूर्वजन्मो मे अर्जित, १० बहुत।

२२३ १ कोमल शरीरवाले, २ ये केवल देखने मे छोटे हैं, पर इनका प्रभाव बहुत बडा है, ३ बहुत बडा पाप करनेवाली, ४ भूल से भी।

२२४ १ धनुष-यज्ञ के लिए, २ आँगन, ३ ढाला हुआ।

चहुँ दिसि कंचन-मंच बिसाला। रचे जहाँ बैठहिं महिपाला ॥
तेहि पाछें समीप चहुँ पासा। अपर मंच मंडली[४] बिलासा[५] ॥
कछुक ऊँचि सब भाँति सुहाई। बैठहिं नगर लोग जहँ जाई ॥
तिन्ह के निकट बिसाल सुहाए। धवल धाम[६] बहुबरन[७] बनाए ॥
जहँ बैठें देखहिं सब नारी। जथाजोगु निज कुल-अनुहारी ॥
पुर बालक कहि-कहि मृदु बचना। सादर प्रभुहि देखावहिं रचना ॥

दो०—सब सिसु एहि मिस[८] प्रेमबस परसि मनोहर गात।
तन पुलकहिं, अति हरषु हियँ देखि-देखि दोउ भ्रात ॥२२४॥

सिसु सब राम प्रेमबस जाने। प्रीति-समेत निकेत[१] बखाने[२] ॥
निज-निज रुचि सब लेहिं बोलाई। सहित-सनेह जाहिं दोउ भाई ॥
राम देखावहिं अनुजहि रचना। कहि मृदु मधुर, मनोहर बचना ॥
लव-निमेष[३] महुँ भुवन निकाया[४]। रचइ जासु अनुसासन[५] माया ॥
भगति-हेतु सोइ दीनदयाला। चितवत चकित धनुष-मखसाला ॥
कौतुक देखि चले गुरु पाहीं। जानि बिलंबु त्रास मन माहीं ॥
जासु त्रास डर कहुँ डर होई। भजन प्रभाउ देखावत सोई ॥
कहि बातें मृदु, मधुर, सुहाईं। किए बिदा बालक बरिआईं[६] ॥

दो०—सभय सप्रेम बिनीत अति सकुच सहित दोउ भाइ।
गुर पद-पंकज नाइ सिर बैठे आयसु पाइ ॥२२५॥

निसि-प्रबेस[१] मुनि आयसु दीन्हा। सबहीं संध्याबंदनु कीन्हा ॥
कहत कथा इतिहास पुरानी। रुचिर रजनि जुग जाम[२] सिरानी[३] ॥
मुनिबर सयन कीन्हि तब जाई। लगे चरन चापन दोउ भाई ॥
जिन्ह के चरन-सरोरुह लागी। करत बिबिध जप-जोग बिरागी ॥
तेइ दोउ बंधु प्रेम जनु जीते। गुर-पद-कमल पलोटत प्रीते[४] ॥
बार-बार मुनि अग्या दीन्ही। रघुबर जाइ सयन तब कीन्ही ॥
चापत चरन लखनु उर लाएँ[५]। सभय, सप्रेम, परम सचु[६] पाएँ ॥
पुनि-पुनि प्रभु कह सोवहु ताता। पौढ़े धरि उर पद-जलजाता[७] ॥

---

४ मचानों का मण्डलाकार घेरा; ५ सुशोभित था, ६ धवल गृह, ७ कई प्रकार के, ८ बहाने।

५२५ १ भवन, २ बतलाये, ३ पलक गिरने के चौथाई समय मे, ४ ब्रह्माण्डों के समूह, ५ आज्ञा से, ६ बड़ी कठिनाई से।

२२६ १ साँझ के समय, २ दो (युग) पहर (याम), ३ बीत गई, ४ प्रीति से, प्रेम-पूर्वक; ५ लगा कर, ६ सुख, ७ चरण-रूपी कमल।

दो०—उठे लखनु निमि बिगत सुनि अरुनसिखा धुनि[८] कान।
गुर तें पहिलेहि जगतपति जागे रामु सुजान ॥२२६॥
सकल सौच करि जाइ नहाए। नित्य निबाहि[१]मुनिहि सिर नाए॥

२१ पुष्पवाटिका

समय जानि, गुर आयसु पाई। लेन प्रसून चले दोउ भाई॥
भूप-बागु[२]-बर देखेउ जाई। जहँ बसंत रितु रही लोभाई॥
लागे बिटप[३] मनोहर नाना। बरन बरन बर बेलि बिताना[४]॥
नव पल्लव, फल सुमन सुहाए। निज संपति सुर रूख[५] लजाए॥
चातक कोकिल कीर[६] चकोरा। कूजत बिहग नटत[७] कल मोरा॥
मध्य बाग सरु सोह सुहावा। मनि सोपान[८] बिचित्र बनावा॥
बिमल सलिलु सरसिज बहुरंगा। जलखग[९] कूजत गुंजत भृंगा॥
दो०—बागु तड़ागु बिलोकि प्रभु हरषे बंधु समेत।
परम रम्य आरामु[१०] यहु जो रामहि सुख देत ॥२२७॥
चहुँ दिसि चितइ पूँछि मालीगन। लगे लेन दल फूल मुदित मन॥
तेहि अवसर सीता तहँ आई। गिरिजा[१] पूजन जननि पठाई॥
संग सखीं सब सुभग सयानीं। गावहिं गीत मनोहर बानीं॥
सर समीप गिरिजा गृह[२] सोहा। बरनि न जाइ देखि मनु मोहा॥
मज्जनु करि सर सखिन्ह समेता। गई मुदित मन गौरि निकेता[३]॥
पूजा कीन्हि अधिक अनुरागा। निज अनुरूप सुभग बरु मागा॥
एक सखी सिय-संगु बिहाई[५]। गई रही देखन फुलवाई॥
तेहिं दोउ बंधु बिलोके जाई। प्रेम बिबस सीता पहिं आई॥
दो०—तासु दसा देखी सखिन्ह, पुलक गात जलु नैन।
'कहु कारनु निज हरष कर पूछहिं सब मृदु बैन ॥२२८॥

---

८ मुर्गे की आवाज।

२२७ १ नित्यकर्म समाप्त कर, २ राजा (जनक) की फुलवारी, ३ वृक्ष, ४ लताओं के मण्डप; ५ कल्पवृक्ष, ६ सुग्गा, ७ नृत्य करते हैं, ८ मणियों से बनी हुई सीढ़ियाँ, ९ जलपक्षी, १० फुलवारी।

२२८ १ पार्वती, २ पार्वती का मन्दिर, ३ पार्वती का मन्दिर, ४ पति, ५ अलग हो कर।

देखन बागु कुअँर दुइ आए। बय किसोर सब भाँति सुहाए ॥
स्याम-गौर किमि कहौं बखानी। गिरा अनयन नयन बिनु बानी[1] ॥
सुनि हरषीं सब सखीं सयानी। सिय हियँ अति उतकंठा[2] जानी ॥
एक कहइ नृपसुत तेइ आली। सुने जे मुनि सँग आए काली[3] ॥
जिन्ह निज रूप मोहनी[4] डारी। कीन्ह स्वबस[5] नगर नर-नारी ॥
बरनत छबि जहँ-तहँ सब लोगू। अवसि[6] देखिअहिं देखन जोगू ॥
तासु बचन अति सियहि सोहाने। दरस लागि लोचन अकुलाने ॥
चली अग्र[7] करि प्रिय सखि सोई। प्रीति पुरातन लखइ न कोई ॥

दो०—सुमिरि सीय नारद-बचन उपजी प्रीति पुनीत।
चकित बिलोकति सकल दिसि जनु सिसु मृगी[8] सभीत ॥२२९॥

कंकन किंकिनि-नूपुर धुनि[1] सुनि। कहत लखन सन रामु हृदयँ गुनि[2]॥
मानहुँ मदन दुंदुभी दीन्ही। मनसा[4] बिस्व बिजय कहँ कीन्ही ॥
अस कहि फिरि चितए तेहि ओरा। सिय मुख ससि भए नयन चकोरा ॥
भए बिलोचन चारु अचंचल। मनहुँ सकुचि निमि तजे दिगंचल[5]॥
देखि सीय-सोभा सुखु पावा। हृदयँ सराहत बचनु न आवा ॥
जनु बिरंचि सब निज निपुनाई। बिरचि[6] बिस्व कहँ प्रगटि देखाई ॥
सुंदरता कहुँ सुंदर करई। छबिगृहँ दीपसिखा जनु बरई[7] ॥
सब उपमा कबि रहे जुठारी। केहिं पटतरौं बिदेहकुमारी[8] ॥

दो०—सिय-सोभा हियँ बरनि प्रभु आपनि दसा बिचारि।
बोले सुचि[9] मन अनुज सन बचन समय अनुहारि ॥२३०॥

तात[1] जनकतनया[1] यह सोई। धनुषजग्य जेहि कारन होई ॥
पूजन गौरि सखीं लै आईं। करत प्रकासु फिरइ फुलवाईं ॥
जासु बिलोकि अलौकिक सोभा। सहज पुनीत मोर मनु छोभा[2] ॥
सो सबु कारन जान बिधाता। फरकहिं सुभद[3] अंग सुनु भ्राता ॥
रघुबंसिन्ह कर सहज सुभाऊ। मनु कुपंथ पगु धरइ न काऊ ॥
मोहि अतिसय प्रतीति[4] मन केरी। जेहिं सपनेहुँ परनारि न हेरी ॥

२२९ १ वाणी बिना आंख की है और आखों को वाणी नहीं मिली है २, प्रबल इच्छा, ३ कल ४ रूप का जादू, ५ अपने वश में ६ अवश्य, ७ आगे, ८ बाल हिरनी।

२३० १ कंकण (कड़ा) कमरधनी और घुंघरू की आवाज, २ विचार कर, ३ कामदेव, ४ इच्छा निश्चय, ५ मानो संकोच के कारण (पलकों पर निवास करनेवाले) राजा निमि पलकों से हट गये हों, ६ रच कर, ७ वह छविगृह (शीशमहल) में दीपक की शिखा की तरह प्रज्वलित है, ८ जनक की पुत्री, ९ शुचि, पवित्र।

२३१ १ जनक की पुत्री, २ क्षोभ या चंचलता, ३ शुभ-सूचक, ४ विश्वास।

जिन्ह कै लहहिं न रिपु रन पीठी। नहिं पावहिं परतिय[५] मनु डीठी[६] ॥
मगन[७] लहहिं न जिन्ह कै नाहीं। ते नरबर[८] थोरे जग माहीं ॥"

दो०—करत बतकही अनुज सन मन सिय-रूप लोभान।
मुख-सरोज-मकरंद-छबि करइ मधुप-इव पान ॥२३१॥

चितवति चकित चहूँ दिसि सीता। कहँ गए नृपकिसोर, मनु चिंता ॥
जहँ बिलोक मृग-सावक-नैनी[१]। जनु तहँ बरिस कमल सित - श्रेनी[२] ॥
लता-ओट तब सखिन्ह लखाए। स्यामल गौर किसोर सुहाए ॥
देखि रूप लोचन ललचाने। हरषे जनु निज निधि पहिचाने ॥
थके नयन रघुपति-छबि देखे। पलकन्हिहूँ परिहरी निमेषें[३] ॥
अधिक सनेहँ देह भै भोरी। सरद-ससिहि जनु चितव चकोरी ॥
लोचन-मग[४] रामहि उर आनी। दीन्हे पलक-कपाट[५] सयानी ॥
जब सिय सखिन्ह प्रेमबस जानी। कहि न सकहिं कछु मन सकुचानी ॥

दो०—लताभवन ते प्रगट भे तेहि अवसर दोउ भाइ।
निकसे जनु जुग बिमल बिधु जलद-पटल बिलगाइ[६] ॥२३२॥

सोभा-सींवँ[१] सुभग दोउ बीरा। नील-पीत-जलजाभ[२] सरीरा ॥
मोरपख सिर सोहत नीके। गुच्छ बीच-बिच कुसुम-कली के ॥
भाल तिलक, श्रमबिंदु[३] सुहाए। श्रवन सुभग भूषन छबि छाए ॥
बिकट[४] भृकुटि, कच घूघरवारे[५]। नव-सरोज-लोचन रतनारे[६] ॥
चारु चिबुक[७], नासिका, कपोला। हास-बिलास[८] लेत मनु मोला ॥
मुखछबि कहि न जाइ मोहि पाहीं। जो बिलोकि बहु काम लजाहीं ॥
उर मनि-माल, कंबु[९] कल गीवा[१०]। काम-कलभ-कर-भुज[११] बल-सींवा ॥
"सुमन-समेत बाम कर दोना। सावँर कुअँर सखी ! सुठि लोना[१२] ॥"

दो०—केहरि-कटि, पट-पीत-धर[१३], सुषमा-सील-निधान।

---

५ पराई स्त्री; ६ दृष्टि डाली; ७ भिखारी, ८ श्रेष्ठ पुरुष।

२३२. १ मृगछौने की आँखवाली, २ उजले कमलों की पंक्ति; ३ गिरना, ४ आँखों के मार्ग से; ५ पलक-रूपी किवाड़; ६ बादलों का परदा हटा कर।

२३३. १ शोभा की सीमा, सबसे अधिक शोभावाले; २ श्यामल और पीले कमलों की आभावाले; ३ पसीने की बूंद ;४ टेढ़ी, ५ घुंघराले केश (कच), ६ लाल; ७ ठोडी।

२३३ ८ हँसी की सुन्दरता; ९ शख; १० ग्रीवा, कण्ठ, ११ कामदेव-रूपी हाथी

देखि भानुकुल भूषनहि बिसरा सखिन्ह अपान[१४] ॥ २३३ ॥
धरि धीरजु एक आलि सयानी । सीता सन बोली गहि पानी ॥
बहुरि गौरि कर ध्यान करेहू । भूपकिसोर देखि किन लेहू ॥
सकुचि सीयँ तब नयन उघारे । सनमुख दोउ रघुसिंघ[१] निहारे ॥
नख सिख देखि राम कै सोभा । सुमिरि पिता-पनु[२] मनु अति छोभा ॥
परबस सखिन्ह लखी जब सीता । भयउ गहरु[३] सब कहहिं सभीता ॥
पुनि आउब एहि बेरिआँ काली । अस कहि मन बिहसी एक आली ॥
गूढ़ गिरा[४] सुनि सिय सकुचानी । भयउ बिलंबु मातु भय मानी ॥
धरि बड़ि धीर रामु उर आने । फिरी अपनपउ पितुबस[५] जाने ॥

दो०—देखन मिस मृग बिहग तरु फिरइ बहोरि-बहोरि[६] ।
निरखि निरखि रघुबीर छबि बाढ़इ प्रीति न थोरि ॥२३४॥

जानि कठिन सिवचाप बिसूरति[१] । चली राखि उर स्यामल मूरति ॥
प्रभु जब जात जानकी जानी । सुख सनेह सोभा गुन खानी ॥
परम प्रेममय मृदु मसि कीन्ही[२] । चारु चित्त भीतीं लिखि लीन्ही[३] ॥
गई भवानी भवन[४] बहोरी । बंदि चरन बोली कर जोरी ॥
जय जय गिरिबरराज किसोरी[५] । जय महेस मुख-चंद-चकोरी ॥
जय गजबदन षडानन माता[६] । जगत जननि दामिनि दुति-गाता[७] ॥
नहिं तव आदि मध्य अवसाना[८] । अमित प्रभाउ बेदु नहिं जाना ॥
भव भव विभव पराभव-कारिनि[९] । बिस्व बिमोहनि स्वबस बिहारिनि[१०] ॥

दो०—पतिदेवता सुतीय महुँ[११] मातु प्रथम तव रेख ।
महिमा अमित न सकहिं कहि सहस सारदा-सेष ॥२३५॥

के बच्चे की सूड-जैसी (ढली हुई, कोमल किन्तु दृढ) भुजाएँ, १२ सुन्दर सलोना, १३ धर = धारण किये हुए, १४ अपना अस्तित्व, अपनी सुध बुध ।

२३४ १ रघुकुल के सिंह, २ पिता का प्रण ३ बहुत देर, ४ रहस्यभरी बात, ५ पिता के वश में, ६ बार-बार ।

२३५ १ मन ही मन रोती हुई, २ उन्होंने भी अपने परम प्रेम को कोमल स्याही बना लिया, ३ अपने सुन्दर चित्त की दीवार पर (सीता का चित्र) अंकित कर लिया, ४ पार्वती के मन्दिर में, ५ हिमालय की पुत्री, ६ हाथी की सूँड़वाले गणेश और छह मुखवाले कार्तिकेय की माता, ७ बिजली की चमक जैसी देहवाली, ८ अंत, ९ संसार (भव) की उत्पत्ति (भव), पालन (विभव) और विनाश (पराभव) का कारण, १० अपनी इच्छा से विहार करनेवाली, ११ पति को अपना देवता माननेवाली अर्थात पतिव्रता स्त्रियों मे ।

सेवत तोहि सुलभ फल चारी। बरदायनी ! पुरारि-पिआरी ॥
देबि ! पूजि पद-कमल तुम्हारे। सुर-नर-मुनि सब होहिं सुखारे ॥
मोर मनोरथु जानहु नीके[१]। बसहु सदा उर-पुर[२] सबही कें ॥
कीन्हेउँ प्रगट न कारन तेहीं।" अस कहि चरन गहे बैदेही ॥
बिनय-प्रेम-बस भई भवानी। खसी[३] माल मूरति मुसुकानी ॥
सादर सियँ प्रसादु सिर धरेऊ। बोली गौरि हरषु हियँ भरेऊ ॥
"सुनु सियँ ! सत्य असीस हमारी। पूजिहि[४] मन-कामना तुम्हारी ॥
नारद-बचन सदा सुचि-साचा। सो बरु मिलिहि जाहिं मनु राचा[५] ॥

छं०—मनु जाहिं राचेउ मिलिहि सो बरु, सहज, सुंदर, साँवरो।
करुना - निधान, सुजान सीलु - सनेहु जानत रावरो[६] ॥"
एहि भाँति गौरि-असीस सुनि, सिय-सहित हियँ हरषीं अली।
तुलसी भवानिहि पूजि पुनि-पुनि, मुदित मन मंदिर चली ॥

सो०—जानि गौरि अनुकूल[७] सिय-हिय हरषु न जाइ कहि।
मंजुल मंगल-मूल[८] बाम अंग फरकन लगे ॥ २३६ ॥

हृदयँ सराहत सीय-लोनाई[१]। गुर समीप गवने दोउ भाई ॥
राम कहा सबु कौसिक[२] पाहीं। सरल सुभाउ, छुअत छल नाहीं ॥
सुमन पाइ मुनि पूजा कीन्ही। पुनि असीस दुहु भाइन्ह दीन्ही ॥
'सुफल मनोरथ होहुँ तुम्हारे'। रामु-लखनु सुनि भए सुखारे ॥
करि भोजनु मुनिबर बिग्यानी[३]। लगे कहन कछु कथा पुरानी ॥
बिगत दिवसु गुरु-आयसु पाई। संध्या[४] करन चले दोउ भाई ॥
प्राची-दिसि ससि उयउ[५] सुहावा। सिय मुख सरिस देखि सुखु पावा ॥
बहुरि बिचारु कीन्ह मन माहीं। सीय-बदन-[६]-सम हिमकर[७] नाहीं ॥

दो०—जनमु सिंधु, पुनि बंधु बिषु, दिन मलीन, सकलंक।
सिय-मुख समता पाव किमि[८] चंदु बापुरो[९] रंक ॥ २३७ ॥

घटइ-बढ़इ बिरहिनि दुखदाई। ग्रसइ राहु निज संधिहिं[१] पाई ॥
कोक-सोकप्रद,[२] पंकज-द्रोही[३]। अवगुन बहुत चंद्रमा ! तोही ॥
बैदेही-मुख पटतर दीन्हे। होइ दोषु बड़ अनुचित कीन्हें ॥

---

२३६ १ अच्छी तरह; २ हृदय के नगर (में), ३ खिसक गई; ४ पूरी होगी ५ अनुरक्त है; ६ तुम्हारा; ७ प्रसन्न, ८ मंगलसूचक।

२३७ १ सीता की सुन्दरता; २ विश्वामित्र, ३ तत्त्वज्ञानी; ४ सन्ध्या-वन्दन; ५ उगा; ६ सीता का मुख, ७ चन्द्रमा ८ कैसे, ९ बेचारा।

२३८ १ सन्धि, अवसर; २ चकवों को दुःख देनेवाला, ३ कमल का शत्रु।

सिय मुख छबि बिधु-ब्याज[४] बखानी। गुर पहिं चले निसा बड़ि जानी ॥
करि मुनि चरन सरोज प्रनामा। आयसु पाइ कीन्ह बिश्रामा ॥२३८॥

२३ रंगभूमि में राम लक्ष्मण

(छन्द संख्या २३९ (अंशतः) से २४०।४ दूसरे दिन कुलगुरु शतानन्द द्वारा जनक का सन्देश पा कर राम और लक्ष्मण के साथ विश्वामित्र का धनुष यज्ञशाला में आगमन।)

रंगभूमि आए दोउ भाई। असि सुधि[१] सब पुरबासिन्ह पाई ॥
चले सकल गृह-काज बिसारी। बाल जुबान जरठ[२] नर नारी ॥
देखी जनक भीर भै भारी। सुचि[३] सेवक सब लिए हँकारी[४] ॥
तुरत सकल लोगन्ह पहिं जाहू। आसन उचित देहु सब काहू ॥

दो०—कहि मृदु बचन बिनीत तिन्ह बैठारे नर-नारि।
उत्तम मध्यम नीच लघु निज निज थल[५] अनुहारि ॥२४०॥

राजकुअँर तेहि अवसर आए। मनहुँ मनोहरता तन छाए ॥
गुन सागर नागर[१] बर बीरा। सुंदर स्यामल गौर सरीरा ॥
राज-समाज बिराजत रूरे[२]। उडगन महुँ जनु जुग बिधु पूरे[४] ॥
जिन्ह कें रही भावना जैसी। प्रभु मूरति तिन्ह देखी तैसी ॥
देखहिं रूप महा रनधीरा। मनहुँ बीर रसु धरें सरीरा ॥
डरे कुटिल नृप प्रभुहि निहारी। मनहुँ भयानक मूरति भारी ॥
रहे असुर छल छोनिप-बेषा[५]। तिन्ह प्रभु प्रगट कालसम देखा ॥
पुरबासिन्ह देखे दोउ भाई। नरभूषन[६] लोचन-सुखदाई ॥

दो०—नारि बिलोकहिं हरषि हियँ निज निज रुचि अनुरूप।
जनु सोहत सिंगार धरि मूरति परम अनूप ॥२४१॥

बिदुषन्ह[१] प्रभु बिराटमय दीसा। बहु मुख कर पग लोचन सीसा ॥
जनक-जाति[२] अवलोकहिं कैसें। सजन[३] सगे प्रिय लागहिं जैसें ॥
सहित बिदेह बिलोकहिं रानी। सिसु सम प्रीति न जाति बखानी ॥
जोगिन्ह परम तत्वमय भासा[४]। सांत सुद्ध सम सहज प्रकासा[५] ॥

---

४ चन्द्रमा के बहाने।

२४० १ ऐसा समाचार, २ वृद्ध, ३ विश्वासी, ४ बुलाया, ५ स्थान।

२४१ १ चतुर, २ भले, सुन्दर, ३ तारागण ४ दो (युग) पूर्ण (पूरे) चन्द्रमा, ५ राजाओं (छोणियों) के छद्म वेश में, ६ मनुष्यों के शृंगार, सबसे सुन्दर मनुष्य।

२४२ १ विद्वानों को, २ जनक के सम्बन्धी, ३ स्वजन, ४ दिखलाई दिये, ५ स्वयप्रकाश रूप।

हरिभगतन्ह देखे दोउ भ्राता। इष्टदेव इव सब सुख-दाता॥
रामहि चितव भाय[६] जेहि सीया। सो सनेहु सुख नहिं कथनीया॥
उर अनुभवति न कहि सक सोऊ। कवन प्रकार कहै कबि कोऊ॥
एहि बिधि रहा जाहि जस भाऊ। तेहिं तस देखेउ कोसलराऊ[७]॥

दो०—राजत राज समाज महु कोसलराज[८] किसोर।
सुंदर स्यामल गौर तन बिस्व बिलोचन चोर[९]॥२४२॥

सहज मनोहर मूरति दोऊ। कोटि *काम उपमा लघु सोऊ॥
सरद चंद निंदक[१] मुख नीके। नीरज-नयन भावते[२] जी के॥
चितवनि चारु मार मनु हरनी[३]। भावति हृदय जाति नहिं बरनी॥
कल कपोल श्रुति कुंडल[४] लोला[५]। चिबुक अधर सुंदर मृदु बोला॥
कुमुदबंधु कर निंदक हासा[६]। भृकुटी बिकट[७] मनोहर नासा॥
भाल बिसाल तिलक झलकाहीं। कच बिलोकि अलि अवलि[८] लजाहीं॥
पीत चौतनीं सिरन्हि सुहाईं। कुसुम कलीं बिच बीच बनाईं॥
रेखें रुचिर कंबु कल गीवाँ। जनु त्रिभुवन सुषमा की सीवाँ॥

दो०—कुंजर मनि कंठा कलित[९] उरन्हि तुलसिका माल।
बृषभ कंध[१०] केहरि ठवनि[११] बल निधि बाहु बिसाल॥२४३॥

कटि तूनीर पीत पट बाँधे। कर सर धनुष बाम बर काँधे॥
पीत जग्य उपबीत[१] सुहाए। नख सिख मंजु महाछबि छाए॥
देखि लोग सब भए सुखारे। एकटक लोचन चलत न तारे[२]॥
हरषे जनकु देखि दोउ भाई। मुनि पद कमल गहे तब जाई॥
करि बिनती निज कथा सुनाई। रंग अवनि[३] सब मुनिहि देखाई॥
जहँ जहँ जाहिं कुअँर बर दोऊ। तहँ तहँ चकित चितव सबु कोऊ॥

---

२४२ ६ भाव से ७ राम ८ दशरथ ९ संसार भर के लोगों की आँखें चुराने वाले।

२४३ १ शरत के चन्द्रमा को भी निन्दित करने वाला, अर्थात नीचा दिखाने वाला २ प्रिय ३ कामदेव के मन को हरने वाला ४ कान के कुण्डल, ५ चंचल ६ चन्द्रमा की किरणों को भी नीचा दिखाने वाली हँसी ७ बाँकी ८ भौंरों की पंक्तियाँ ९ गजमुक्ताओं के कण्ठहार से सुशोभित १० साँड जैसे पुष्ट कंध ११ सिंह जैसा खड़े होने का ढंग।

२४४ १ यज्ञोपवीत २ आँखों की पुतलियाँ ३ रंगभूमि।

निज-निज रुख रामहि सबु देखा[४]। कोउ न जान कछु मरमु बिसेषा[५]॥
"भलि रचना",मुनि नृप सन कहेऊ। राजाँ मुदित महासुख लहेऊ॥
दो० –सब मचन्ह ते मंचु एक सुन्दर, बिसद, बिसाल।
मुनि समेत दोउ बंधु तहँ बैठारे महिपाल[६] ॥२४४॥

प्रभुहि देखि सब नृप हियँ हारे। जनु राकेस[१] उदय भएँ तारे॥
असि प्रतीति सब के मन माहीं। "राम चाप तोरब, सक नाहीं॥
बिनु भंजेहुँ भव धनुषु[२] बिसाला। मेलिहि[३] सीय राम-उर माला॥
अस बिचारि गवनहु घर भाई। जसु प्रतापु बलु तेजु गवाँई॥"
बिहसे अपर भूप सुनि बानी। जे अबिबेक अंध अभिमानी॥
'तोरेहुँ धनुषु ब्याहु अवगाहा[४]। बिनु तोरें को कुअँरि बिआहा॥
एक बार कालउ[५] किन[६] होऊ। सिय हित[७]समर जितब हम सोऊ॥"
यह सुनि अवर[८] महिप मुसुकाने। धरमसील हरिभगत सयाने॥
सो०—"सीय बिआहबि राम गरब दूरि करि नृपन्ह के।
जीति को सक संग्राम दसरथ के रन बाँकुरे ॥२४५॥

ब्यर्थ मरहु जनि गाल बजाई। मन-मोदकन्हि[१] कि भूख बुताई[२]॥
सिख हमारि सुनि परम पुनीता। जगदंबा जानहु जियँ सीता॥
जगत पिता रघुपतिहि बिचारी। भरि लोचन छबि लेहु निहारी॥
सुंदर सुखद सकल गुन-रासी। ए दोउ बंधु संभु-उर-बासी[३]॥
सुधा समुद्र समीप बिहाई। मृगजलु[४] निरखि मरहु कत धाई॥
करहु जाइ जा कहुँ जोइ भावा। हम तौ आजु जनम फलु[५] पावा॥'
अस कहि भले भूप अनुरागे। रूप अनूप बिलोकन लागे॥
देखहिं सुर नभ चढे बिमाना। बरषहिं सुमन करहिं कल गाना॥

(२३) सीता का आगमन

दो०—जानि सुअवसरु सीय तब पठई जनक बोलाइ।
चतुर सखीं सुन्दर सकल सादर चलीं लवाइ॥२४६॥

---

२४४ ४ सबको ऐसा लगा कि राम उनकी ओर ही देख रहे हैं, ५ इसका विशेष रहस्य क्या है, यह कोई नहीं जान सका ६ राजा।

२४५ १ चन्द्रमा, २ शिव (भव) का धनुष, ३ डालेंगी, ४ कठिन, ५ मृत्यु भी, ६ क्यों न, ७ सीता के लिए, ८ दूसरे।

२४६ १ मन (कल्पना) के लड्डू, २ बुझती है, ३ शिव के हृदय में निवास करने वाले, ४ मृगमरीचिका, ५ जन्म लेने (या जीने) का फल।

सिय-सोभा नहिं जाइ बखानी। जगदंबिका[1] रूप-गुन-खानी ॥
उपमा सकल मोहि लघु लागी। प्राकृत नारि-अंग अनुरागीं[2] ॥
सिय बरनिअ तेइ उपमा देई। कुकबि कहाइ अजसु को लेई ॥
जौं पटतरिअ तीय[3] सम सीया। जग असि जुबति कहाँ कमनीया ॥
गिरा मुखर[4],तन अरध भवानी[5]। रति अति दुखित अतनु पति जानी[6]॥
बिष बारुनी[7] बंधु प्रिय[8] जेही। कहिअ रमासम[9] किमि बैदेही ॥
जौं छबि-सुधा पयोनिधि होई। परम रूपमय कच्छपु सोई ॥
सोभा रजु[10] मंदरु सिंगारू[11]। मथै पानि-पंकज निज मारू[12]॥

दो०—एहि बिधि उपजै लच्छि[13] जब सुंदरता-सुख-मूल।
तदपि सकोच समेत कबि कहहिं सीय-समतूल[14] ॥२४७॥

चलीं संग लै सखीं सयानी। गावत गीत मनोहर बानी ॥
सोह नवल तनु सुंदर सारी। जगत-जननि अतुलित छबि भारी ॥
भूषन सकल सुदेस सुहाए[1]। अंग-अंग रचि सखिन्ह बनाए ॥
रंगभूमि जब सिय पगु धारी। देखि रूप मोहे नर-नारी ॥
हरषि सुरन्ह दुंदुभी[2] बजाई। बरषि प्रसून[3] अपछरा[4] गाई ॥
पानि सरोज सोह जयमाला। अवचट[5] चितए[6] सकल भुआला[7]॥
सीय चकित चित रामहि चाहा[8]। भए मोहबस सब नरनाहा ॥
मुनि समीप देखे दोउ भाई। लगे ललकि लोचन-निधि[9] पाई ॥

दो०—गुरजन-लाज समाजु बड़ देखि सीय सकुचानि।
लागि बिलोकन सखिन्ह तन[10] रघुबीरहि उर आनि ॥२४८॥

राम रूप अरु सिय छबि देखें। नर नारिन्ह परिहरीं निमेषें ॥
सोचहिं सकल, कहत सकुचाहीं। बिधि सन बिनय करहिं मन माहीं ॥

---

२४७ १ संसार की माता, २ वे (उपमाएँ) सांसारिक स्त्रियों के अंगों से अनुराग रखने वाली हैं (उनके लिए ही इन उपमाओं का प्रयोग होता है), ३ साधारण स्त्री, ४ सरस्वती तो वाचाल हैं; ५ (अर्द्धनारीश्वर के रूप में) पार्वती आधे शरीर वाली हैं, ६ अपने पति कामदेव को शरीर-रहित (अतनु) जानकर रति बहुत दुखित रहती है, ७ विष और मदिरा, ८ प्रिय भाई, ९ लक्ष्मी-जैसी, १० रज्जु, रस्सी; ११ शृंगार रस, १२ कामदेव, १३ लक्ष्मी, १४ सीता के समान।

२४८. १ अपने-अपने स्थान पर सुशोभित थे, २ नगाड़े, ३ फूल; ४ अप्सरा, ५ चकित होकर, ६ देखा, ७ राजा, ८ देखा, ९ आँखों की सारी निधि या सर्वस्व, १० सखियों की ओर।

"हरु विधि! वेगि जनक-जड़ताई। मति हमारि-असि[1] देहि सुहाई॥
बिनु बिचार पनु तजि नरनाहू। सीय राम कर करैं बिवाहू॥
जगु भल कहिहि, भाव सब काहू[2]। हठ कीन्हें अतहुँ उर दाहू[3]॥"
एहिं लालसाँ मगन सब लोगू। बरु साँवरो जानकी-जोगू॥
तब बंदीजन जनक बोलाए। बिरिदावली[4] कहत चलि आए॥
कह नृपु, "जाइ कहहु पन मोरा"। चले भाट, हियँ हरषु न थोरा॥
दो०—बोले बंदी बचन बर "सुनहु सकल महिपाल!
पन बिदेह कर कहहिं हम भुजा उठाइ बिसाल॥२४६॥
"नृप-भुजबलु बिधु, सिवधनु-राहू[1]। गरुअ कठोर बिदित सब काहू॥
रावनु-बानु[2] महाभट[3] भारे। देखि सरासन[4] गवँहिं[5] सिधारे॥
सोइ *पुरारि-कोदंडु[6] कठोरा। राज-समाज आजु जोइ तोरा॥
त्रिभुवन-जय समेत बैदेही। बिनहिं बिचार बरइ[7] हठि तेही॥"
दो०—तमकि धरहिं धनु मूढ़ नृप, उठइ न, चलहिं लजाइ।
मनहुँ पाइ भट-बाहुबलु[8] अधिकु-अधिकु गरुआइ[9]॥२५०॥

(२४) लक्ष्मण की गर्वोक्ति

श्रीहत[1] भए हारि हियँ राजा। बैठे निज-निज जाइ समाजा॥
नृपन्ह बिलोकि जनकु अकुलाने। बोले बचन रोष जनु साने॥
"दीप-दीप[2] के भूपति नाना। आए सुनि हम जो पनु ठाना॥
देव-दनुज[3] धरि मनुज सरीरा। बिपुल बीर आए रनधीरा॥
दो०—कुअँरि मनोहर, बिजय बड़ि, कीरति अति कमनीय।
पावनिहार[4] बिरंचि जनु रचेउ न धनु-दमनीय[5]॥२५१॥
कहहु, काहि यहु लाभु न भावा। काहुँ न संकर-चाप चढ़ावा॥
रहउ चढ़ाउब तोरब भाई। तिलु भरि भूमि न सके छड़ाई[1]॥

२४९ १ हमारी जैसी, २ सब का भाव या विचार भी यही है, ३ पछतावा; ४ (जनक के) वंश की कीर्ति।

२५० १ राजाओं की भुजाओं का बल चन्द्रमा है और शिव का यह धनुष राहु है, २ रावण और वाणासुर, ३ महान् योद्धा, ४ धनुष, ५ चुपके-से, ६ शिव का धनुष, ७ वरण करेगी विवाह करेगी, ८ योद्धाओं की भुजाओं का बल; ९ और भी भारी होता जाता है।

२५१ १ श्रीहीन (कीर्त्ति-रहित), २ द्वीप द्वीप, ३ देवता और दैत्य, ४ पाने वाला, ५ धनुष को झुकाने (तोड़ने) वाला।

२५२. १ छुड़ा सके, सरका सके।

अब जनि कोउ माखै भट-मानी[2]। बीर-बिहीन मही मैं जानी ॥
तजहु आस निज निज गृह जाहू। लिखा न बिधि बैदेहि बिबाहू ॥
सुकृतु जाइ जौ पनु परिहरऊँ[3]। कुअँरि कुआरि रहउ, का करऊँ ॥
जौ जनतेउँ बिनु भट भुबि[4] भाई। तौ पनु करि होतेउँ न हँसाई ॥"
जनक बचन सुनि सब नर नारी। देखि जानकिहि भए दुखारी ॥
माखे[5] लखनु, कुटिल भइँ भौंहें। रदपट[6] फरकत, नयन रिसौंहें ॥

दो०—कहि न सकत रघुबीर-डर, लगे बचन जनु बान।
नाइ राम पद-कमल सिरु बोले गिरा प्रमान[7] ॥२५२॥

"रघुबंसिन्ह महुँ जहँ कोउ होई। तेहिं समाज अस कहइ न कोई ॥
कही जनक जसि[1] अनुचित बानी। बिद्यमान[2] रघुकुल-मनि[3] जानी ॥
सुनहु भानुकुल पंकज-भानू[4]। कहउँ सुभाउ[5], न कछु अभिमानू ॥
जौ तुम्हारि अनुसासन पावौं। कंदुक-इव[6] ब्रह्मांड उठावौं ॥
काँचे घट-जिमि डारौं फोरी। सकउँ मेरु[7] मूलक-जिमि[8] तोरी ॥
तव प्रताप महिमा भगवाना। को बापुरो पिनाक पुराना ॥
नाथ ! जानि अस आयसु होऊ। कौतुकु[9] करौं, बिलोकिअ सोऊ ॥
कमल नाल जिमि चाप चढ़ावौं। जोजन सत प्रमान[10] लै धावौं ॥

दो० —तोरौं छत्रक दंड[11] जिमि तव प्रताप-बल नाथ !
जौं न करौं, प्रभु पद सपथ, कर न धरौं धनु-भाथ[12]॥ ५३॥"

लखन सकोप[1] बचन जे बोले। डगमगानि महि, *दिग्गज[2] डोले ॥
सकल लोग, सब भूप डेराने। सिय-हियँ हरषु, जनकु सकुचाने ॥
गुर, रघुपति सब मुनि मन माहीं। मुदित भए पुनि-पुनि पुलकाहीं ॥
सयनहिं[3] रघुपति लखनु नेवारे[4]। प्रेम-समेत निकट बैठारे ॥

---

२५२ २ भट या वीर होने का दम भरने वाला; ३ यदि मैं प्रण का त्याग करता हूँ, तो मेरा पुण्य चला जाता है, ४ पृथ्वी, ५ क्रुद्ध हो गये, ६ ओठ, ७ यथार्थ।

२५३ १ जैसी, २ उपस्थित, ३ रघुकुल के शिरोमणि राम, ४ सूर्यकुल-रूपी कमल के सूर्य (राम), ५ स्वभाव; ६ गेंद की तरह, ७ सुमेरु पर्वत, ८ मूली की तरह, ९ खेल, १० पर्यन्त, तक, ११ कुकुरमुत्ते का डण्ठल, १२ धनुष और तरकस।

२५४ १ क्रोध के साथ, २ दिशाओं के हाथी, ३ संकेत या इशारे से, ४ मना किया।

(२५) धनुर्भंग

विस्वामित्र समय सुभ जानी। बोले अति सनेहमय बानी॥
"उठहु राम! भजहु[5] भवचापा। मेटहु तात! जनक-परितापा[6]॥"
सुनि गुरु-बचन चरन सिरु नावा। हरषु-विषादु न कछु उर आवा॥
ठाढ़े भए उठि सहज सुभाएँ। ठवनि[7] जुबा मृगराजु[8] लजाएँ॥
दो०—उदित उदयगिरि-मंच[9] पर रघुबर-बालपतंग[10]।
बिकसे संत-सरोज सब हरषे लोचन भृंग[11]॥२५४॥
नृपन्ह केरि आसा निसि[1] नासी। बचन नखत अवली[2] न प्रकासी॥
मानी महिप-कुमुद[3] सकुचाने। कपटी भूप-उलूक[4] लुकाने॥
भए बिसोक कोक[5] मुनि-देवा। बरिसहिं सुमन, जनावहिं सेवा॥
गुर पद बंदि सहित अनुरागा। राम मुनिन्ह सन आयसु मागा॥
सहजहिं चले सकल जग स्वामी। मत्त - मंजु - बर कुंजर - गामी[6]॥
चलत राम सब पुर नर-नारी। पुलक-पूरि तन, भए सुखारी॥
बंदि पितर गुर, सुकृत सँभारे[7]। "जौं कछु पुन्य-प्रभाउ हमारे॥
तौ सिवधनु मृनाल[8] की नाईं। तोरहुँ रामु, गनेस गोसाईं॥"
दो०—रामहि प्रेम-समेत लखि, सखिन्ह समीप बोलाइ।
सीता-मातु सनेह-बस बचन कहइ बिलखाइ॥२५५॥
"सखि! सब कौतुकु देखनिहारे। जेउ कहावत हितू हमारे॥
कोउ न बुझाइ कहइ गुर पाहीं। ए बालक, असि हठ भलि नाहीं।
रावन बान छुआ नहिं चापा। हारे सकल भूप करि दापा[1]॥
सो धनु राजकुअँर कर देहीं। बाल मराल कि *मंदर लेहीं[2]॥
भूप-सयानप[3] सकल सिरानी[4]। सखि! बिधि-गति कछु जाति न जानी।"
बोली चतुर सखी मृदु बानी। "तेजवंत लघु गनिअ न रानी॥
कहँ कुंभज,[5] कहँ सिंधु अपारा। सोषेउ सुजसु सकल संसारा॥
रबि-मंडल देखत लघु लागा। उदयँ तासु तिभुवन तम भागा॥

---

२५४ ५ तोड़ो, ६ जनक का सन्ताप, ७ खड़े होने का ढंग, ८ सिंह, ९ मंच-रूपी उदयाचल (पूर्व दिशा) १० राम रूपी बाल सूर्य ११ आँख रूपी भौंरे।

२५५ १ आशा रूपी रात्रि २ (राजाओं के) वचन रूपी नक्षत्रों के समूह, ३ राजा-रूपी कुमुद पुष्प, ४ राजा रूपी उल्लू, ५ चकवा, ६ मतवाले, सुन्दर और श्रेष्ठ हाथी की तरह चलने वाले ७ अपने अपने पुण्यों का स्मरण किया, ८ कमल।

२५६ १ दर्प या घमण्ड करके, २ क्या हंस के बच्चे मन्दराचल पर्वत उठा सकते हैं? ३ राजा जनक की समझदारी, ४ नष्ट हो गयी, ५ अगस्त्य ऋषि।

दो० —मत्त परम लघु, जासु बस बिधि हरि हर सुर सर्ब।
महामत्त गजराज कहुँ बस कर अंकुस खर्ब[६] ॥२५६॥
काम कुसुम धनु सायक[१] लीन्हे। सकल भुवन अपनें बस कीन्हे॥
देबि! तजिअ संसउ अस जानी। भंजब धनुषु राम, सुनु रानी॥"
सखी बचन सुनि भै परतीती[२]। मिटा बिषादु बढ़ी अति प्रीती॥
तब रामहि बिलोकि बैदेही। सभय हृदयँ बिनवति जेहि तेही॥
मनहीं मन मनाव अकुलानी। "होहु प्रसन्न महेस-भवानी॥
करहु सफल आपनि सेवकाई। करि हितु हरहु चाप गरुआई[३]॥
गननायक बरदायक देवा! आजु लगें कीन्हिउँ तुअ सेवा॥
बार बार बिनती सुनि मोरी। करहु चाप गुरुता[४] अति थोरी॥"
दो० —देखि देखि रघुबीर तन सुर मनाव धरि धीर।
भरे *बिलोचन प्रेम जल,* पुलकावली[५] सरीर ॥२५७॥
नीकें निरखि नयन भरि सोभा। पितु-पनु सुमिरि बहुरि मनु छोभा॥
"अहह तात! दारुनि[१] हठ ठानी। समुझत नहिं कछु लाभु न हानी॥
सचिव[२]सभय सिख[३]देइ न कोई। बुध-समाज[४] बड़ अनुचित होई॥
कहँ धनु कुलिसहु चाहि कठोरा[५]। कहँ स्यामल मृदुगात किसोरा॥
बिधि! केहि भाँति धरौं उर धीरा। सिरस-सुमन कन[६] बेधिअ हीरा॥
सकल सभा कै मति भै भोरी। अब मोहि संभुचाप! गति तोरी॥
निज जड़ता लोगन्ह पर डारी। होहि हरुअ[७]रघुपतिहि निहारी॥'
अति परिताप सीय मन माहीं। लव निमेष जुग-सय सम[८] जाहीं॥
दो० —प्रभुहि चितइ पुनि चितव महि राजत लोचन लोल।
खेलत मनसिज मीन जुग जनु बिधु मंडल डोल[९] ॥२५८॥
गिरा-अलिनि[१] मुख पंकज रोकी। प्रगट न लाज निसा अवलोकी॥
लोचन जलु रह लोचन कोना। जैसें परम कृपन कर सोना॥

---

२५६ ६ छोटा।

२५७ १ फूलों का धनुष बाण, २ विश्वास, ३ धनुष का भारीपन, ४ *धनुष का भारीपन* ५ *रोमांच।*

२५८ १ कठिन, २ मन्त्री ३ सलाह, ४ विद्वानों की सभा ५ कहाँ तो वज्र से भी कठोर धनुष ६ शिरीष के फूल का कण, ७ हल्का, ८ सौ युगों के समान, ९ मानो चन्द्रमण्डल रूपी डोल में कामदेव की दो मछलियाँ क्रीड़ा कर रही हैं।

२५९. १ वाणी रूपी भौंरी।

सकुची ब्याकुलता बडि जानी। धरि धीरजु प्रतीती उर आनी॥
"तन-मन-वचन मोर पनु[२] साचा। रघुपति-पद-सरोज चितु राचा[३]॥
तौ भगवानु सकल-उर-बासी। करिहि मोहि रघुबर कै दासी॥
जेहि कें जेहि पर सत्य सनेहू। सो तेहि मिलइ, न कछु संदेहू॥"
प्रभु तन चितइ प्रेम तन ठाना[४]। कृपानिधान राम सबु जाना॥
सियहि बिलोकि, तकेउ धनु कैसें। चितव गरुरु[५] लघु ब्यालहि[६] जैसें॥

दो०—लखन लखेउ रघुबसमनि ताकेउ हर-कोदंडु।
पुलकि गात बोले बचन, चरन चापि[७] ब्रह्मांडु॥२५९॥

"दिसि-कुंजरहु।[१]कमठ।[२]अहि।[३]कोला।[४]धरहु धरनि धरि धीर,न डोला॥
रामु चहहिं संकर-धनु तोरा। होहु सजग सुनि आयसु[५] मोरा॥"
चाप समीप रामु जब आए। नर नारिन्ह सुर सुकृत मनाए॥
सब कर संसउ अरु अग्यानू। मंद महीपन्ह कर अभिमानू॥
भृगुपति[६] केरि गरब गरुआई। सुर मुनिबरन्ह केरि कदराई[७]॥
सिय कर सोचु, जनक-पछितावा। रानिन्ह कर दारुन दुख-दावा[८]॥
संभुचाप बड बोहितु[९] पाई। चढे जाइ सब संगु बनाई॥
राम-बाहुबल-सिंधु अपारू। चहत पारु नहिं कोउ कड़हारू[१०]॥

दो०—राम बिलोके लोग सब चित्र-लिखे से देखि।
चितई सीय कृपायतन[११] जानी बिकल बिसेषि॥२६०॥

देखी बिपुल[१] बिकल बैदेही। निमिष बिहात[२] कलप-सम[३] तेही॥
तृषित[४] बारि[५] बिनु जो तनु त्यागा। मुएँ करइ का सुधा तडागा[६]॥
का बरषा सब कृषी सुखानें। समय चुकें पुनि का पछितानें॥
अस जियँ जानि जानकी देखी। प्रभु पुलके लखि प्रीति बिसेषी॥
गुरहि प्रनामु मनहि मन कीन्हा। अति लाघवँ[७] उठाइ धनु लीन्हा॥

---

२५९. २ प्रण, ३ आसक्त हो गया है, ४ प्रभु की ओर देखकर तन या शरीर से प्रण ठान लिया, अर्थात् यह प्रण किया कि उनका शरीर केवल राम का होकर रहेगा, ५ गरुड, ६ सर्प को, ७ चांप कर, दबा कर।

२६० १ दिशाओ के हाथी,*दिग्गज, २ *कच्छप, ३ *शेषनाग, ४ *वाराह, ५ आज्ञा, ६ परशुराम, ७ भय, ८ दुख रूपी दावानल, ९ जहाज, १० केवट, ११ कृपा के धाम।

२६१ १ बहुत, २ बीत रहा है, ३ कल्प के समान (चार अरब बत्तीस करोड वर्षों का एक *कल्प होता है), ४ प्यासा आदमी, ५ पानी, ६ अमृत का सरोवर, ७ फुरती से।

दमकेउ दामिनि-जिमि जब लयऊ। पुनि नभ धनु मंडल सम भयऊ[८]॥
लेत, चढ़ावत, खैंचत गाढ़ें[९]। काहुँ न लखा, देख सबु ठाढ़ें॥
तेहि छन राम मध्य धनु तोरा। भरे भुवन धुनि घोर-कठोरा॥
छं०—भरे भुवन घोर कठोर रव,[१०] रबि-बाजि[११] तजि मारगु चले।
चिक्करहिं दिग्गज, डोल महि, अहि-कोल-कूरुम[१२] कलमले[१३]॥
सुर असुर मुनि कर कान दीन्हें[१४] सकल बिकल बिचारहीं।
कोदंड खंडेउ राम तुलसी जयति बचन उचारहीं॥
सो०—संकर-चापु जहाजु सागरु रघुबर-बाहुबलु।
बूड सो सकल समाजु चढ़ा जो प्रथमहिं मोह-बस॥२६१॥
प्रभु दोउ चापखंड महि डारे। देखि लोग सब भए सुखारे॥
कौसिकरूप पयोनिधि[१] पावन। प्रेम-बारि[२] अवगाहु[३] सुहावन।
रामरूप - राकेसु[४] निहारी। बढ़त बीचि-पुलकावलि[५] भारी॥
बाजे नभ गहगहे[६] निसाना[७]। देवबधू[८] नाचहिं करि गाना॥
ब्रह्मादिक सुर-सिद्ध मुनीसा। प्रभुहि प्रसंसहिं, देहिं असीसा॥
बरिसहिं सुमन रंग बहु माला। गावहिं किंनर गीत रसाला॥
रही भुवन भरि जय-जय बानी। धनुषभंग - धुनि जात न जानी॥
मुदित कहहिं, जहँ-तहँ नर-नारी। "भंजेउ राम संभुधनु भारी॥
दो०—बंदी मागध सूतगन बिरुद बदहिं[९] मतिधीर।
करहिं निछावरि लोग सब हय[१०] गय[११] धन मनि चीर॥२६२॥
झाँझि मृदंग संख सहनाई। भेरि ढोल दुंदुभी सुहाई॥
बाजहिं बहु बाजने[१] सुहाए। जहँ-तहँ जुबतिन्ह मंगल[२] गाए॥
सखिन्ह सहित हरषी अति रानी। सूखत धान परा जनु पानी॥
जनक लहेउ सुखु सोचु बिहाई[३]। पैरत[४] थकें थाह जनु पाई॥
श्रीहत भए भूप धनु टूटे। जैसें दिवस दीप छबि[५] छूटे॥

---

२६१ ८ फिर वह धनुष आकाश मे मण्डलाकार हो गया, ९ तेजी से १० ध्वनि, ११ सूर्य के घोड़े, १२ शेषनाग वाराह और कच्छप, १३ कलमलाने या छटपटाने लगे, १४ कानो पर हाथ रखकर या कान बन्द कर।

२६२ १ विश्वामित्र रूपी समुद्र, २ प्रेम का जल ३ परिपूर्ण रूप से भरा हुआ था, ४ राम रूपी चन्द्रमा, ५ पुलकावली (रोमांच) रूपी लहरें, ६ जोर जोर से, ७ नगाड़े ८ अप्सराएँ, ९ वर्णन करते हैं, १० घोड़े, ११ हाथी।

२६३ १ बाजे, २ मंगलगीत, ३ छोड़ कर, ४ तैरते हुए, ५ दीपक का प्रकाश।

सीय सुखहि बरनिअ केहि भाँति । जनु चातकी पाइ जलु स्वाती ॥
रामहि लखनु बिलोकत कैसें । ससिहि चकोर-किसोरकु[६] जैसें ॥
सतानन्द तब आयसु दीन्हा । सीताँ गमनु राम पहिं कीन्हा ॥

दो०—संग सखी सुदर चतुर गावहिं मंगलचार[७] ।
गवनी बाल-मराल गति[८], सुषमा अंग अपार ॥२६३॥

सखिन्ह मध्य सिय सोहति कैसें । छबिगन मध्य महाछबि जैसें ॥
कर सरोज जयमाल सुहाई । बिस्व-बिजय सोभा जेहिं छाई ॥
तन सकोचु, मन परम उछाहू । गूढ़ प्रेमु लखि परइ न काहू ॥
जाइ समीप राम-छबि देखी । रहि जनु कुअँरि चित्र-अवरेखी[१] ॥
चतुर सखीं लखि कहा बुझाई । "पहिरावहु जयमाल सुहाई ॥"
सुनत जुगल कर माल उठाई । प्रेम-बिबस पहिराइ न जाई ॥
सोहत जनु जुग जलज सनाला[२] । ससिहि सभीत देत जयमाला[३] ॥
गावहिं छबि अवलोकि सहेली । सियँ जयमाल राम-उर मेली ॥

सो०—रघुबर उर जयमाल देखि देव बरिसहिं सुमन ।
सकुचे सकल भुआल जनु बिलोकि रबि कुमुदगन ॥२६४॥

पुर अरु ब्योम बाजने बाजे । खल भए मलिन, साधु सब राजे[१] ॥
सुर किंनर नर नाग मुनीसा । जय जय जय कहि देहिं असीसा ॥
नाचहिं गावहिं बिबुध बधूटीं[२] । बार-बार कुसुमांजलि छूटीं ॥
जहँ-तहँ बिप्र बेदधुनि करहीं । बंदी बिरिदावलि[३] उच्चरहीं ॥
महि पाताल नाक[४] जसु ब्यापा । "राम बरी सिय, भंजेउ चापा ॥"
करहिं आरती पुर-नर-नारी । देहिं निछावरि बित्त बिसारी ॥
सोहति सीय राम कै जोरी । छबि-सिंगारु[५] मनहुँ एक ठोरी[६] ॥
सखीं कहहिं, "प्रभुपद गहु सीता" । करति न चरन-परस अति भीता ॥

दो०—गौतम-तिय गति सुरति करि[७] नहिं परसति पग पानि ।
मन बिहसे रघुबसमनि प्रीति अलौकिक जानि ॥२६५॥

---

२६३ ६ चकोर का बच्चा, ७ मंगलगीत, ८ बाल हंसिनी की चाल से ।

२६४ १ चित्र में अंकित, चित्रलिखित, २–३ (जयमाल पहनाते समय सीता के हाथ ऐसे लग रहे थे) मानो दो नालयुक्त कमल सुशोभित हो और वे डरते डरते (राम के मुख रूपी) चन्द्रमा को माला पहना रहे हों ।

२६५ १ सुशोभित हुए, प्रसन्न हुए, २ देवताओं की पत्नियाँ, ३ वंश की कीर्ति, ४ स्वर्ग, ५ सुन्दरता और शृंगार रस, ६ स्थान, ७ स्मरण कर, (राम के चरणों के स्पर्श से अहल्या दिव्यलोक चली गयी थी) ।

(२६) परशुराम का आगमन

तेहि अवसर सुनि सिवधनु-भंगा । आयउ भृगुकुल-कमल-पतंगा[1] ॥
देखि महीप सकल सकुचाने । बाज-झपट जनु लवा[2] लुकाने ॥
गौरि सरीर भूति[3] भल भ्राजा[4] । भाल बिसाल त्रिपुंड बिराजा ॥
सीस जटा, ससिबदनु सुहावा । रिस बस कछुक अरुन[5] होइ आवा ॥
भृकुटी कुटिल, नयन रिस-राते[6] । सहजहुँ चितवत मनहुँ रिसाते ॥
बृषभ-कंध, उर-बाहु बिसाला । चारु जनेउ माल मृगछाला ॥
कटि मुनिबसन,[7] तून[8] दुइ बाँधें । धनु-सर कर, कुठारु कल काँधें ॥
दो०—सांत बेषु, करनी कठिन, बरनि न जाइ सरूप ।
धरि मुनितनु जनु बीर रसु आयउ जहँ सब भूप ॥२६८॥
देखत भृगुपति-बेषु कराला । उठे सकल भय-बिकल भुआला ॥
पितु समेत कहि-कहि निज नामा । लगे करन सब दंड-प्रनामा[1] ॥
जेहि सुभायँ[2] चितवहिं हितु जानी । सो जानइ जनु आइ[3] खुटानी[4] ॥
जनक बहोरि आइ सिरु नावा । सीय बोलाइ प्रनामु करावा ॥
आसिष दीन्हि, सखीं हरषानीं । निज समाज लै गईं सयानीं ॥
बिस्वामित्रु मिले पुनि आई । पद-सरोज मेले दोउ भाई ॥
"रामु-लखनु दसरथ के ढोटा[5] ।" दीन्हि असीस देखि भल जोटा ॥
रामहि चितइ रहे थकि लोचन । रूप अपार मार मद मोचन[6] ॥
दो०—बहुरि बिलोकि बिदेह सन, "कहहु काह अति भीर ।"
पूँछत जानि अजान-जिमि,[7] ब्यापेउ कोपु सरीर ॥२६९॥
समाचार कहि जनक सुनाए । जेहि कारण महीप सब आए ॥

(२७) परशुराम का क्रोध

सुनत बचन फिरि अनत[1] निहारे । देखे चापखंड महि डारे ॥
अति रिस बोले बचन कठोरा । "कहु जड़ जनक! धनुष कै तोरा ॥
बेगि देखाउ मूढ़ ! न त आजू । उलटउँ महि जहँ लहि तव राजू ॥"

---

२६८ १ भृगुवंश-रूपी कमल के सूर्य (परशुराम), २ बटेर, ३ भभूत, भस्म, ४ सुन्दर लग रहा था, ५ लाल, ६ क्रोध से लाल, ७ वल्कल वस्त्र, ८ तूणीर (तरकस) ।

२६९. १ दण्डवत्–प्रणाम, २ प्रसन्न भाव से, ३ आयु, ४ पूरी हो गयी, ५ पुत्र, ६ कामदेव के भी मद को दूर करने वाला, ७ अनजान की तरह ।

२७० १ अन्यत्र, दूसरी ओर ।

अति डर उतरु देत नृपु नाहीं। कुटिल भूप हरषे मन माहीं॥
सुर मुनि नाग नगर नर नारी। सोचहिं सकल, त्रास उर भारी॥
मन पछिताति सीय महतारी। बिधि! अब सँवरी बात[२] बिगारी॥
भृगुपति कर सुभाउ सुनि सीता। अरध निमेष[३] कलप-सम बीता॥
दो०—सभय बिलोके लोग सब जानि जानकी भीरु।
हृदयँ न हरषु बिषादु कछु बोले श्रीरघुबीरु॥२७०॥
"नाथ! संभुधनु भंजनिहारा[१]। होइहि केउ एक दास तुम्हारा।
आयसु काह, कहिअ किन मोही।" सुनि रिसाइ बोले मुनि कोही[२]॥
"सेवकु सो जो करै सेवकाई। अरि-करनी[३] करि, करिअ लराई॥
सुनहु राम! जेहिं सिवधनु तोरा। सहसबाहु सम सो रिपु मोरा॥
सो बिलगाउ बिहाइ समाजा। न त मारे जैहहिं सब राजा॥"
सुनि मुनि-बचन लखन मुसुकाने। बोले परसुधरहि अपमाने॥
"बहु धनुहीं तोरीं लरिकाईं। कबहुँ न असि रिस कीन्हि गोसाईं॥
एहि धनु पर ममता केहि हेतू।" सुनि रिसाइ कह भृगुकुलकेतू[४]॥
दो०—"रे नृप बालक! काल बस बोलत तोहि न सँभार[५]।
धनुही-सम तिपुरारि[६] धनु बिदित सकल संसार॥२७१॥"
लखन कहा हँसि, "हमरें जाना। सुनहु देव! सब धनुष समाना॥
का छति-लाभु[१] जून[२] धनु तोरें। देखा राम नये के भोरें[३]॥
छुअत टूट, रघुपतिहु न दोसू। मुनि! बिनु काज[४] करिअ कत रोसू॥"
बोले चितइ[५] परसु की ओरा। "रे सठ! सुनेहि सुभाउ न मोरा॥
बालकु बोलि बधउँ नहिं तोही। केवल मुनि जड़! जानहि मोही॥
बाल ब्रह्मचारी, अति कोही। बिस्व बिदित छत्रियकुल-द्रोही[६]॥
भुजबल भूमि भूप बिनु कीन्ही। बिपुल बार महिदेवन्ह[७] दीन्ही॥
सहसबाहु भुज-छेदनिहारा[८]। परसु बिलोकु महीपकुमारा[९]॥
दो०—मातु पितहि जनि सोचबस करसि महीसकिसोर[१०]।
गर्भन्ह के अर्भक दलन[११] परसु मोर अति घोर॥२७२॥"

२७० २ बनी हुई बात, ३ आधा पल।

२७१ १ शिव का धनुष तोड़ने वाला २ क्रोधी ३ शत्रु का काम, ४ भृगु-कुल की ध्वजा अर्थात् परशुराम ५ होश, ६ त्रिपुरारि, शिव।

२७२ १ हानि और लाभ, २ जीर्ण, पुराना, ३ नये के धोखे में, ४ व्यर्थ ही, ५ देख कर ६ मैं संसार भर में क्षत्रिय कुल के शत्रु के रूप में प्रसिद्ध हूँ, ७ ब्राह्मणों को ८ काटने वाला, ९ राजकुमार, १० राजकुमार, ११ गर्भ के बच्चों का भी दलन करने वाला (काट डालने वाला)।

बिहसि लखनु बोले मृदु बानी। "अहो मुनीसु! महा भटमानी॥
पुनि-पुनि मोहि देखाव कुठारू। चहत उड़ावन फूँकि पहारू॥
इहाँ कुम्हड़बतिया[1] कोउ नाहीं। जे तरजनी[2] देखि मरि जाहीं॥
देखि कुठारु - सरासन - बाना। मैं कछु कहा सहित अभिमाना॥
भृगुसुत समुझि, जनेउ बिलोकी। जो कछु कहहु, सहउँ रिस रोकी॥
सुर, महिसुर, हरिजन, अरु गाई। हमरें कुल इन्ह पर न सुराई[3]॥
बधें पापु, अपकीरति हारें। मारतहूँ पा[4] परिअ तुम्हारें॥
कोटि कुलिस-सम बचनु तुम्हारा। ब्यर्थ धरहु धनु-बान-कुठारा॥
दो०—जो बिलोकि अनुचित कहेउँ छमहु महामुनि धीर।"
मुनि, सरोष भृगुबसमनि बोले गिरा गभीर॥२७३॥

"कौसिक! सुनहु, मंद[1] यहु बालकु। कुटिल, कालबस, निज कुल घालकु[2]॥
भानु - बंस - राकेस - कलंकू। निपट निरंकुस, अबुध, असंकू[3]॥
काल-कवलु[4] होइहि छन माहीं। कहउँ पुकारि, खोरि[5] मोहि नाहीं॥
तुम्ह हटकहु[6], जौं चहहु उबारा। कहि प्रतापु, बलु, रोषु हमारा॥"
लखन कहेउ, "मुनि! सुजसु तुम्हारा। तुम्हहि अछत को बरनै पारा॥
अपने मुँह तुम्ह आपनि करनी। बार अनेक भाँति बहु बरनी॥
नहिं संतोषु त पुनि कछु कहहू। जनि रिस रोकि दुसह दुख सहहू॥
बीरब्रती तुम्ह, धीर, अछोभा[7]। गारी देत न पावहु सोभा॥
दो०—सूर समर करनी करहिं, कहि न जनावहिं आपु।
बिद्यमान रन पाइ रिपु कायर कथहिं प्रतापु[8]॥२७४॥

तुम्ह तौ कालु हाँक जनु लावा[1]। बार-बार मोहि लागि बोलावा॥'
सुनत लखन के बचन कठोरा। परसु सुधारि धरेउ कर घोरा॥
'अब जनि देइ दोसु मोहि लोगू। कटुबादी[2] बालक बध - जोगू॥
बाल बिलोकि बहुत मैं बाँचा। अब यहु मरनिहार[3] भा साँचा॥"
कौसिक कहा, "छमिअ अपराधू। बाल-दोष-गुन गनहिं न साधू॥"

---

२७३. १ कुम्हड़े का नया फल, २ तर्जनी उँगली, ३ शूरता, ४ पैर।

२७४. १-मूढ़, २ अपने कुल का घातक या विनाश करने वाला, ३ निडर, ४ काल का कौर, ५ दोष, ६ मना कर दो, ७ क्षोभ-रहित, शान्त, ८ अपना प्रताप कहते हैं, अर्थात् डींग मारते हैं।

२७५ १ (आपके द्वारा बार-बार काल के उल्लेख से ऐसा लगता है कि) आप अपने साथ काल को हाँक लाये हैं, २ कटु वचन बोलने वाला, ३ मारने योग्य।

'खर[४] कुठार, मैं अकरुन कोही। आगें अपराधी गुरुद्रोही ॥
उतर देत छोडउँ बिनु मारें। केवल कौसिक[१] सील तुम्हारें ॥
न त एहि काटि कुठार कठोरें। गुरहि उरिन "होतेउँ श्रम थोरें ॥"

दो०—गाधिसूनु[६] कह हृदयँ हँसि, मुनिहि हरिअरइ सूझ[७]।
अयमय खाँड, न ऊखमय[८], अजहुँ न बूझ अबूझ ॥२७५॥

कहेउ लखन, "मुनि! सीलु तुम्हारा। को नहिं जान बिदित संसारा ॥
माता-पितहि उरिन भए नीकें। गुर-रिनु रहा, सोचु बड़ जीकें ॥
सो जनु हमरेहि माथे काढ़ा। दिन चलि गए, ब्याज बड़ बाढ़ा॥
अब आनिअ ब्यवहरिआ[१] बोली। तुरत देउँ मैं थैली खोली ॥"
सुनि कटु बचन कुठार सुधारा[२]। हाय हाय सब सभा पुकारा ॥
"भृगुबर! परसु देखावहु माही। बिप्र बिचारि बचउँ[३] नृपद्रोही[४]॥
मिले न कबहुँ सुभट रन गाढ़े। द्विज-देवता[५] घरहि के बाढ़े[६] ॥'
अनुचित कहि सब लोग पुकारे। रघुपति सयनहिं लखनु नेवारे[७]॥

दो०—लखन-उतर आहुति-सरिस[८], भृगुबर-कोपु कृसानु[९]।
बढ़त देखि जल-सम बचन बोले रघुकुलभानु ॥२७६॥

'नाथ! करहु बालक पर छोहू। सूध[१] दूधमुख[२] करिअ न कोहू[३]॥
जौं पै प्रभु प्रभाउ कछु जाना। तौ कि बराबरि करत अयाना[४] ॥
जौं लरिका कछु अचगरि[५] करहीं। गुर पितु मातु मोद मन भरहीं ॥
करिअ कृपा सिसु[६] सेवक जानी। तुम्ह सम सील[७] धीर मुनि ग्यानी ॥"
राम-बचन सुनि कछुक जुड़ाने[८]। कहि कछु लखनु बहुरि मुसुकाने ॥
हँसत देखि नख-सिख रिस ब्यापी। "राम! तोर भ्राता बड़ पापी ।।

---

२७५ ४ तेज धार वाला, ५ ऋणमुक्त, ६ राजा गाधि के पुत्र विश्वामित्र, ७ मुनि (परशुराम) को हरा-ही हरा सूझ रहा है (अर्थात् उन्हें दूसरे क्षत्रियों की तरह राम-लक्ष्मण पर भी अपनी विजय ही दिखायी दे रही है), ८ खाँड (खड्ग) लोहे का बना होता है, ऊख का नहीं।

२७६ १ हिसाब करने वाला, २ सँभाल लिया, ३ छोड रहा हूँ, ४ क्षत्रियों के शत्रु, ५ ब्राह्मण और देवता, ६ बड़े, ७ निवारण किया, रोका, ८ आहुति की तरह, ९ अग्नि।

२७७ १ भोला, २ दुधमुहाँ, ३ क्रोध, ४ बेसमझ, ५ ढिठाई, ६ इस शिशु को, ७ समदर्शी, ८ शान्त हुए।

गौर सरीर, स्याम मन माहीं[९]। कालकूटमुख[१०], पयमुख[११]नाहीं ॥
सहज टेढ, अनुहरइ न तोही[१२]। नीचु मीचु-सम[१३] देख न मोही ॥"

दो०—लखन कहेउ हँसि, "सुनहु मुनि! क्रोधु पाप कर मूल।
जेहि बस जन अनुचित करहिं, चरहिं[१४]विस्व-प्रतिकूल ॥२७७॥

"मैं तुम्हार अनुचर मुनिराया। परिहरि कोपु करिअ अब दाया ॥
टूट चाप नहिं जुरिहि[१] रिसाने। बैठिअ, होइहिं पाय पिराने[२] ॥
जौं अति प्रेम तो करिअ उपाई। जोरिअ कोउ बड गुनी बोलाई ॥"
बोलत लखनहिं जनकु डेराही। 'मष्ट[३]करहु, अनुचित भल नाही ॥"
थर-थर काँपहिं पुर-नर-नारी। छोट कुमार खोट बड भारी ॥
भृगुपति सुनि-सुनि निरभय बानी। रिस तन जरइ, होइ बल-हानी[४] ॥
बोले रामहि देइ निहोरा। "बचउँ बिचारि बंधु लघु तोरा ॥
मनु मलीन, तनु सुंदर कैसे। बिष-रस भरा कनकु-घटु जैसे ॥"

दो०—सुनि लछिमन बिहसे बहुरि, नयन तरेरे राम।
गुर-समीप गवने सकुचि, परिहरि बानी बाम[५] ॥२७८॥

अति बिनीत मृदु सीतल बानी। बोले रामु जोरि जुग पानी ॥
"सुनहु नाथ!तुम्ह सहज सुजाना। बालक-बचनु करिअ नहिं काना[१] ॥
बररै[२] बालकु एकु सुभाऊ। इन्हहि न संत बिदूषहिं[३] काऊ ॥
तेहिं नाहीं कछु काज बिगारा। अपराधी मैं नाथ! तुम्हारा ॥
कृपा कोपु बधु बँधब[४] गोसाईं। मो पर करिअ दास की नाईं ॥
कहिअ बेगि जेहि बिधि रिस जाई। मुनिनायक सोइ करौं उपाई ॥"
कह मुनि, "राम!जाइ रिस कैसें। अजहुँ अनुज तव चितव अनैसें[५] ॥
एहि कें कंठ कुठारु न दीन्हा। तौ मैं काह कोपु करि कीन्हा ॥

दो०—गर्भ स्रवहिं अवनिप-रवनि[६] सुनि कुठार-गति घोर।
परसु अछत[७] देखउँ जिअत बैरी भूपकिसोर ॥ ७९॥

---

२७७ ९ मन या हृदय का काला, १० विषमुख, ११ दुधमुँहा, १२ तुम्हारे जैसा नहीं हैं, १३ काल के समान, १४ आचरण करते है।

२७८ १ जुड़ जायेगा, २ आपके पाँव दुख गये होंगे ३ चुप रहें, ४ बल घटता जा रहा था, ५ प्रतिकूल, कटु या व्यंग्यपूर्ण।

२७९ १ ध्यान नहीं दें, २ बर्रे, ३ छेड़ते हैं, ४ बन्धन ५ टेढे, ६ राजाओं की पत्नियाँ, ७ रहते हुए भी।

चहइ न हाथु [1] दहइ रिस छाती। भा कुठारु कुंठित नृपघाती ॥
भयउ बाम बिधि, फिरेउ सुभाऊ। मोरे हृदयँ कृपा कसि[2] काऊ[3] ॥
आजु दया दुखु दुसह सहावा।' सुनि सौमित्रि[4] बिहसि सिरु नावा ॥
'बाउ कृपा[5] मूरति अनुकूला[6]। बोलत बचन झरत जनु फूला ॥
जौं पै कृपाँ जरिहि मुनि ! गाता। क्रोध भएँ, तनु राख बिधाता ॥"
'देखु जनक ! हठि बालकु एहू। कीन्ह चहत जड़ जमपुर गेहू[7] ॥
बेगि करहु किन आँखिन्ह ओटा। देखत छोट, खोट नृप-ढोटा ॥'
बिहसे लखनु कहा मन माहीं। मूदें आँखि कतहुँ कोउ नाहीं ॥

(२८) परशुराम का मोहभंग

दो०—परसुरामु तब राम प्रति[8] बोले, उर अति क्रोधु।
'संभु-सरासनु तोरि सठ ! करसि हमार प्रबोधु[9] ॥२८०॥
बंधु कहइ कटु संमत[1] तोरें। तू छल बिनय[2] करसि कर जोरें ॥
करु परितोषु[3] मोर संग्रामा। नाहिं त छाड़ कहाउब रामा ॥
छलु तजि करहि समरु सिवद्रोही[4] ! बंधु-सहित न त मारउँ तोही ॥"
भृगुपति बकहिं कुठार उठाएँ। मन मुसुकाहिं रामु सिर नाएँ ॥
गुनह लखन कर हम पर रोषू। कतहुँ सुधाइहु ते बड़ दोषू[5] ॥
टेढ़ जानि सब बंदइ काहू। बक्र चंद्रमहि ग्रसइ न राहू ॥
राम कहेउ, 'रिस तजिअ मुनीसा ! कर कुठारु आगें यह सीसा ॥
जेहिं रिस जाइ, करिअ सोइ स्वामी ! मोहि जानिअ आपन अनुगामी ॥
दो०—प्रभुहि सेवकहि[6] समरु कस,[7] तजहु बिप्रबर ! रोषु।
बेषु बिलोकें कहेसि कछु, बालकहू नहिं दोसु ॥२८१॥
देखि कुठार-बान धनु धारी। भै लरिकहि रिस, बीरु बिचारी ॥
नामु जान पै तुम्हहि न चीन्हा। बंस-सुभायँ उतरु तेहिं दीन्हा ॥

---

२८० १ हाथ नही चलता २ कैसी, ३ कभी, ४ सुमित्रा पुत्र, लक्ष्मण, ५ कृपा की वायु ६ आपकी मूर्त्ति के अनुकूल, ७ यह जड यमपुर को अपना घर बनाना चाहता हैं (अर्थात् मरना चाहता है), ८ राम से, ९ शिक्षा देता है, समझाता है।

२८१ १ सम्मति से, २ मिथ्या विनय, ३ सन्तुष्ट करो (अर्थात् युद्ध करो), ४ अरे शिव के शत्रु, ५ कहीं कहीं सिधाई मे भी बडा दोष होता है, ६ स्वामी और सेवक मे, ७ लडाई कैसी।

जौं तुम्ह औतेहु[1] मुनि की नाईं । पद-रज सिर सिसु धरत गोसाईं ॥
छमहु चूक अनजानत केरी[2] । चहिअ बिप्र-उर कृपा घनेरी ॥
हमहि-तुम्हहि सरिबरि[3]कसि नाथा ! कहहु न, कहाँ चरन, कहँ माथा ॥
राम मात्र लघु नाम हमारा । परसु-सहित बड नाम तोहारा ॥
देव ! एकु गुनु[4] धनुष हमारें । नव गुन[5] परम पुनीत तुम्हारें ॥
सब प्रकार हम तुम्ह सन हारे । छमहु बिप्र ! अपराध हमारे ॥"

दो० — बार - बार मुनि बिप्रबर, कहा राम सन राम[6] ।
बोले भृगुपति सरुष[7] हसि, "तहूँ बंधु सम बाम ॥२८२॥

निपटहिं[1] द्विज करि जानहि मोही । मैं जस[2] बिप्र, सुनावउँ तोही ॥
चाप स्रुवा,[3] सर आहुति जानू । कोपु मोर अति घोर कृसानू ॥
समिधि[4] सेन चतुरंग[5] सुहाई । महा महीप भए पसु आई ॥
मैं एहिं परसु काटि बलि दीन्हे । समर-जग्य[6]जप कोटिन्ह कीन्हे ॥
मोर प्रभाउ बिदित नहिं तोरें । बोलसि निदरि[7] बिप्र के भोरें ।
भंजेउ चापु, दापु[8] बड बाढ़ा । अहमिति[9]मनहुँ जीति जगु ठाढ़ा ॥"
राम कहा, 'मुनि! कहहु बिचारी । रिस अति बड़ि,लघु चूक हमारी ॥
छुअतहिं टूट पिनाक[10] पुराना । मैं केहि हेतु करौं अभिमाना ॥

दो० — जौं हम निदरहिं बिप्र बदि[11], सत्य सुनहु भृगुनाथ !
तौ अस को जग सुभटु जेहि भय-बस नावहिं माथ ॥२८ ॥

देव दनुज भूपति भट नाना । समबल अधिक होउ बलवाना ॥
जौं रन हमहि पचारै[1] कोऊ । लरहिं सुखेन[2], कालु किन होऊ ॥
छत्रिय-तनु धरि समर सकाना[3] । कुल कलंकु तेहिं पावँर[4] आना ॥

---

२८२ १ आते, २ केरो की, ३ बराबरी ४ (क, गुण, (ख) डोरी, ५ नौ गुणो या डोरियों वाला यज्ञोपवीत, ६ परशुराम से राम ने कहा, सरोष क्रोध से ।

२८३ १ केवल, २ जैसा ३ धनुष ही मेरी स्रुवा (आहुति देने की लकडी की कलछी) है ४ समिधा, यज्ञ की लकडी, ५ चतुरंग (हाथी, घोडा, रथ और पैदल, चारो अंगों वाली) सेना, ६ युद्ध रूपी यज्ञ ७ निरादर कर ८ दर्प, घमण्ड, ९ इतना अहंकार (हो गया है), १० धनुष, ११ कह कर ।

२८४. १ पुकारे, ललकारे, २ सुख से प्रसन्नता से ३ डर जावे, ४ पामर, पापी ।

कहउँ सुभाउ, न कुलहि प्रससी। कालहु डरहिं न रन रघुबंसी॥
बिप्रबंस कै असि प्रभुताई। अभय होइ, जो तुम्हहि डेराई॥"
सुनि मृदु-गूढ़ बचन रघुपति के। उघरे पटल[५] परसुधर-मति[६] के॥
"राम! रमापति! कर धनु लेहू। खैंचहु, मिटै मोर संदेहू॥"
देत चापु आपुहि चलि गयऊ। परसुराम मन बिसमय[७] भयऊ॥
दो०— जाना राम-प्रभाउ तब पुलक-प्रफुल्लित गात।
जोरि पानि बोले बचन, हृदयँ न प्रेमु अमात[८]॥२८४॥
'जय रघुबंस-बनज-बन-भानू[१]! गहन-दनुज-कुल-दहन-कृसानू[२]॥
जय सुर-बिप्र-धेनु-हितकारी! जय मद-मोह-कोह-भ्रम-हारी॥
बिनय-सील-करुना-गुन-सागर! जयति बचन-रचना[३]-अति-नागर[४]॥
सेवक-सुखद, सुभग सब अंगा। जय सरीर-छबि कोटि *अनंगा॥
करौं काह मुख एक प्रसंसा। जय महेस-मन-मानस-हंसा[५]॥
अनुचित बहुत कहेउँ अग्याता[६]। छमहु छमामंदिर[७] दोउ भ्राता॥"
कहि "जय-जय-जय रघुकुलकेतू।" भृगुपति गए बनहि तप-हेतू॥
अपभयँ[८] कुटिल महीप डेराने। जहँ-तहँ कायर गवँहि पराने॥
दो०- देवन्ह दीन्ही दुंदुभी, प्रभु पर बरषहिं फूल।
हरषे पुर-नर-नारि सब, मिटी मोहमय सूल[९]॥२८५॥
अति गहगहे बाजने बाजे। सबहि मनोहर मंगल साजे॥
जूथ-जूथ मिलि सुमुखि सुनयनी। करहि गान कल कोकिलबयनी[१]॥
सुखु बिदेह कर बरनि न जाई। जन्मदरिद्र मनहुँ निधि पाई॥
बिगत त्रास[२] भइ सीय सुखारी। जनु बिधु-उदयँ चकोरकुमारी॥२८६॥

(२६) जनकपुर की सजावट

[छन्द-संख्या २८६ (शेषांश) से छन्द-संख्या २८७/२ : अयोध्या के लिए दूतों का प्रेषण]

बहुरि महाजन सकल बोलाए। आइ सबन्हि सादर सिर नाए॥

---

२८४ ५ परदा, ६ परशुराम की बुद्धि, ७ विस्मय, आश्चर्य, ८ समाता है।

२८५ १ रघुवंश-रूपी कमल-वन के सूर्य, २ राक्षसों के कुल-रूपी घने जंगल को जलाने वाली अग्नि, ३ वचन की रचना में, बोलने में, ४ बहुत चतुर, ५ शिव के मन रूपी मानसरोवर के हंस, ६ अनजान में, ७ क्षमा के मन्दिर, अत्यन्त क्षमा-शील, ८ कल्पित भय के कारण, ९ अज्ञान से उत्पन्न पीड़ा।

२८६. १ कोकिल की तरह मधुर वाणी बोलने वाली, २ भयमुक्त।

"हाट, बाट, मंदिर, सुरबासा[1]। नगर सँवारहु, चारिहुँ पासा[2] ॥"
हरषि चले, निज-निज गृह आए। पुनि परिचारक[3] बोलि पठाए॥
"रचहु बिचित्र बितान[4] बनाई।" सिर धरि बचन चले सचु[5] पाई॥
पठए बोलि गुनी तिन्ह नाना। जे बितान बिधि कुसल[6] सुजाना॥
बिधिहि[7] बंदि तिन्ह कीन्ह अरंभा। बिरचे कनक कदलि[8] के खंभा॥

दो० – हरित मनिन्ह के पत्र फल[9] पदुमराग के फूल[10]।
रचना देखि बिचित्र अति मनु बिरंचि कर भूल ॥२८७॥

बेनु[1] हरित-मनिमय सब कीन्हे। सरल, सपरब[2] परहिं नहिं चीन्हे॥
कनक-कलित अहिबेलि[3] बनाई। लखि नहिं परइ सपरन[4] सुहाई॥
तेहि के रचि पचि[5] बंध बनाए। बिच बिच मुकुता दाम[6] सुहाए॥
मानिक मरकत कुलिस[7] पिरोजा[8]। चीरि, कोरि,[9] पचि[10] रचे सरोजा॥
किए भृंग, बहुरंग बिहंगा। गुंजहिं-कूजहिं पवन प्रसंगा[11]॥
सुर-प्रतिमा खंभन गढ़ि काढ़ी। मंगल द्रव्य[12] लिएँ सब ठाढ़ी॥
चौकें भाँति अनेक पुराईं। सिंधुर मनिमय[13] सहज सुहाईं॥

दो० – सौरभ-पल्लव सुभग सुठि किए नीलमनि कोरि।
हेम बौर,[14] मरकत-घवरि[15] लसत पाटमय डोरि[16]॥२८८॥

रचे रुचिर बर बंदनिवारे। मनहुँ मनोभवँ[1] फंद सँवारे॥
मंगल कलस अनेक बनाए। ध्वज, पताक, पट, चमर[2] सुहाए॥
दीप मनोहर मनिमय नाना। जाइ न बरनि, बिचित्र बिताना॥

---

२८७ १ देवालय २ चारों ओर ३ सेवक ४ मण्डप, ५ सुख, ६ मण्डप बनाने में निपुण ७ ब्रह्मा को, ८ सोने के केले ९ हरित मणि या पन्ने के पत्ते और फल, १० पद्मराग या मानिक के फूल।

२८८ १ बांस, २ गाँठ वाले, ३ नागबेलि या पान की लता ४ पत्तों से युक्त, ५ परिश्रम से रच कर ६ मोतियों की लड़ियाँ ७ हीरा ८ फिरोजा, ९ काट कर, १० पच्चीकारी कर, (पच्ची ऐसे जड़ाव को कहते हैं जो आधार की सतह के बराबर हो जाये।) ११ पवन के चलने से १२ मंगलद्रव्य (दूब, दही रोचन, कुंकुम, चन्दन पान सुपारी, अक्षत आदि से भरा पात्र) १३ गजमोतियों के १४ सोने की मंजरियाँ, १५ पन्ने के फलों के गुच्छे १६ रेशम की डोरी।

२८९. १ कामदेव ने, २ ध्वजा, पताका, वस्त्र और चवर।

जेहि मण्डप दुलहिनि बैदेही। सो बरनै असि मति कवि केही॥
दूलहु रामु रूप गुन-सागर। सो बितानु तिहुँ-लोक-उजागर॥
जनक-भवन कै सोभा जैसी। गृह-गृह प्रति पुर देखिअ तैसी॥
जेहि तेरहुति तेहि समय निहारी। तेहि लघु लगहि भुवन दस-चारी[3]॥२८६॥

(३०) बरात के शकुन

(छन्द-सं० २६० से ३०२ जनक की पत्रिका के साथ दूतो का दशरथ की सभा मे आगमन तथा सीता के स्वयवर और राम द्वारा धनुष-भग का वर्णन, अवध मे उल्लास और जनकपुर के लिए बरात का प्रस्थान)

बनइ न बरनत बनी बराता। होहिं सगुन सुंदर सुभदाता॥
चारा[1] चाषु[2] बाम दिसि लेई। मनहुँ सकल मंगल कहि देई॥
दाहिन काग सुखेत[3] सुहावा। नकुल[4]-दरसु सब काहूँ पावा॥
सानुकूल बह त्रिबिध बयारी। सघट[5] सबाल[6] आव बर नारी॥
लोवा[7] फिरि-फिरि दरसु देखावा। सुरभी[8] सनमुख सिसुहि पिआवा॥
मृगमाला[9] फिरि दाहिनि आई। मंगल गन[10] जनु दीन्हि देखाई॥
छेमकरी[11] कह छेम[12] बिसेषी। स्यामा[13] बाम सुतरु पर देखी॥
सनमुख आयउ दधि अरु मीना। कर पुस्तक दुइ बिप्र प्रबीना॥

दो०—मंगलमय, कल्यानमय, अभिमत[14] फल दातार[15]।
जनु सब साचे होन हित[16] भए सगुन एक बार॥३०३॥

मंगल सगुन सुगम सब ताकें। सगुन ब्रह्म सुंदर सुत जाकें॥
राम-सरिस बरु, दुलहिनि सीता। समधी दसरथु जनकु पुनीता॥
सुनि अस ब्याहु सगुन सब नाचे। अब कीन्हे बिरंचि हम साँचे॥
एहि बिधि कीन्ह बरात पयाना। हय गय गाजहिं, हने निसाना[1]॥३०४॥

---

२८६ ३ चौदह।

३०३ १ चारा चुग रहा है, २ नीलकण्ठ पक्षी, ३ हरा भरा खेत ४ नेवला, ५ घड़ा लिये हुए ६ गोद मे बालक लिये हुए, ७ लोमड़ी, ८ गाय, ९ हरिणों का झुण्ड, १० मगलो का समूह ११ क्षेमकरी (सफेद सिर वाली चील) १२ कल्याण, १३ श्यामा काली मैना १४ मनोवाछित, इच्छित, १५ फल देने वाली १६ सत्य होने के लिए सचाई प्रमाणित करने के लिए।

३०४ १ निशाना पर चोट पड़ने लगी, अर्थात निशान बजने लगे।

(३१) राम-सीता-विवाह

[छन्द-सं० ३०४ (शेषांश) से ३२३/७ जनकपुर में बरात का स्वागत और उल्लास, कुछ दिन बाद विवाह का मुहूर्त आने पर, *अवसर के अनुरूप साज-सज्जा के साथ राम एवं बरातियों का जनक* के प्रासाद के लिए प्रस्थान तथा द्वारपूजा के बाद विवाह-मण्डप में सीता का परिवार की स्त्रियों और सखियों के साथ प्रवेश]

तेहि अवसर कर बिधि-ब्यवहारू[1] । दुहुँ कुलगुर सब कीन्ह अचारू[2] ॥

छं०—*आचारु करि गुर-गौरि-गनपति[3] मुदित बिप्र पुजावहीं ।*
सुर प्रगटि पूजा लेहिं, देहिं असीस, अति सुखु पावहीं ॥
मधुपर्क[4] मंगल-द्रब्य जो जेहि समय मुनि मन महुँ चहैं ।
भरे कनक-कोपर[5]-कलस सो तब लिएहिं परिचारक रहैं ॥ १ ॥
कुल-रीति प्रीति समेत रबि कहि देत,[6] सबु सादर कियो ।
एहि भाँति देव पुजाइ सीतहि सुभग सिंघासनु दियो ॥
सिय-राम-अवलोकनि परसपर[7], प्रेमु काहु न लखि परै ।
मन बुद्धि-बर-बानी-अगोचर[8], प्रगट कबि कैसें करै ॥ २ ॥

दो०—होम समय तनु धरि अनलु अति सुख आहुति लेहिं ।
बिप्र बेष धरि बेद सब, कहि बिबाह-बिधि देहिं ॥३२३॥

जनक-पाटमहिषी[1] जग जानी । सीय-मातु किमि जाइ बखानी ॥
सुजसु सुकृत सुख सुंदरताई । सब समेटि बिधि रची बनाई ॥
समउ जानि मुनिबरन्ह बोलाईं । सुनत सुआसिनि[2] सादर ल्याईं ॥
जनक बाम-दिसि सोह सुनयना । हिमगिरि संग बनी जनु मयना[3]॥
कनक-कलस मनि-कोपर रूरे । सुचि - सुगंध - मंगल-जल-पूरे ॥

---

३२३ १ विवाह सम्बन्धी विधियाँ और व्यवहार, २ विवाह-सम्बन्धी कुलाचार, ३ गुरु, पार्वती और गणेश, ४ मधु घी और दही का विषम मिश्रण, ५ सोने का गहरा और बड़ा थाल, ६ स्वयं सूर्य प्रीति से कुल की रीति बता रहे थे, ७ सीता और राम का एक-दूसरे को देखना, ८ सीता राम का वह प्रेम, जो मन बुद्धि और श्रेष्ठ वाणी से भी परे है ।

३२४. १ जनक की पटरानी सुनयना, २ सुहागिनें, ३ (हिमालय की पत्नी) मेना ।

निज कर मुदित रायँ अरु रानी। धरे राम के आगें आनी॥
पढ़हिं बेद मुनि मंगल बानी। गगन सुमन झरि अवसरु जानी॥
बरु बिलोकि दंपति अनुरागे। पाय पुनीत पखारन लागे॥

छं०—लागे पखारन पाय पंकज प्रेम तन पुलकावली।
नभ-नगर गान निसान जय धुनि उमगि जनु चहुँ दिसि चली॥
जे पद सरोज मनोज अरि उर सर[4] सदैव बिराजहीं।
जे सकृत सुमिरत, बिमलता मन सकल कलि मल भाजहीं॥ १ ॥

जे परसि मुनिबनिता[5] लही गति, रही जो पातकमई[6]॥
मकरंदु जिन्ह को[7] संभु सिर सुचिता अवधि[8] सुर बरनई॥
करि मधुप मन मुनि, जोगिजन जे सेइ[9] अभिमत गति[10] लहैं॥
ते पद पखारत भाग्य भाजनु जनकु जय-जय सब कहैं॥ २ ॥

बर कुअँरि करतल जोरि साखोचारु[11] दोउ कुलगुर करैं।
भयो पानिगहनु बिलोकि बिधि सुर मनुज मुनि आनँद भरैं॥
सुखमूल दूलहु देखि दंपति पुलक तन, हुलस्यो हियो।
करि लोक बेद बिधानु[12] कन्यादानु नृपभूषन[13] कियो॥ ३ ॥

हिमवंत जिमि गिरिजा महेसहि, हरिहि श्री सागर दई[14]।
तिमि जनक रामहि सिय समरपी[15], बिस्व कल कीरति नई॥
क्यों करै बिनय बिदेहु[16] कियो बिदेहु मूरति सावँरी[17]।
करि होमु बिधिवत गाँठि जोरी होन लागीं भावँरीं[18]॥ ४ ॥

---

३२४ ४ कामदेव के शत्रु शिव के हृदय रूपी सरोवर में ५ मुनि पत्नी *अहल्या ६ पापमयी जिन चरणों का मकरन्द (गंगा नदी जो विष्णु के चरणों से निकली) ८ पवित्रता की सीमा अर्थात परम पवित्र ९ जिसकी सेवा कर १० इच्छित गति अर्थात मोक्ष ११ शाखोच्चार अर्थात वर और वधू की शाखा (वंश-परम्परा) का उल्लेख [विवाह के समय दोनों पक्षों के पुरोहित वर और वधू के गोत्र और प्रवर के साथ प्रपितामह पितामह और पिता के नाम का उच्चारण तीन-तीन बार करते हैं।] १२ लौकिक और वैदिक विधान १३ राजाओं के भूषण स्वरूप जनक १४ जैसे समुद्र ने *विष्णु (हरि) को लक्ष्मी (श्री) का दान दिया १५ समर्पित की १६ १७ उस सांवली मूर्ति (राम) ने विदेह जनक को विदेह (देह की सुधबुध से रहित) कर दिया १८ अग्नि की परिक्रमा (भांवरे) होने लगी।

दो०—जय - धुनि, बंदी - बेद-धुनि[१९], मंगल-गान, निसान।
सुनि हरषहिं, बरषहिं बिबुध सुरतरु-सुमन[२०] सुजान ॥३२४॥

कुअँरु-कुअँरि कल भावँरि देहीं। नयन-लाभु सब सादर लेहीं॥
जाइ न बरनि मनोहर जोरी। जो उपमा कछु कहौं, सो थोरी॥
राम - सीय सुंदर प्रतिछाहीं[१]। जगमगात मनि-खंभन माहीं॥
मनहुँ मदन-रति धरि बहु रूपा। देखत राम - बिआहु अनूपा॥
दरस-लालसा, सकुच न थोरी। प्रगटत - दुरत बहोरि - बहोरी॥
भए मगन सब देखनिहारे। जनक-समान अपान बिसारे[२]॥
प्रमुदित मुनिन्ह भावँरी फेरी। नेगसहित सब रीति निबेरीं[३]॥
राम सीय - सिर सेंदुर देहीं। सोभा कहि न जाति बिधि केहीं॥
अरुन पराग जलजु भरि नीकें[४]। ससिहि भूष अहि लोभ अमी कें[५]॥
बहुरि बसिष्ठ दीन्हि अनुसासन। बरु-दुलहिनि बैठे एक आसन॥

छं०—बैठे बरासन[६] रामु-जानकि, मुदित-मन दसरथु भए।
तनु पुलक, पुनि-पुनि देखि अपने सुकृत-सुरतरु-फल नए॥
भरि भुवन रहा उछाहु[७], राम-बिबाहु भा[८], सबहीं कहा।
केहि भाँति बरनि सिरात रसना एक, यहु मंगलु महा[९]॥३२५॥

[बन्द-सं० ३२५ (शेषांश) से ३२६ (छन्द सं० ४ तक). भरत, शत्रुघ्न और लक्ष्मण का क्रमश माण्डवी, श्रुतकीर्ति और उर्मिला से विवाह, जनक द्वारा दशरथ तथा बरातियों को वस्त्र, आभूषण आदि का विपुल उपहार]

---

३२४. १९ बन्दी जनों की विरुदावली और वेदों की ध्वनि, २० कल्पवृक्ष के फूल।

३२५. १ प्रतिविम्ब, २ अपनी सुधबुध खो बैठे ३ नेग या दक्षिणा के साथ सभी वैवाहिक रीतियाँ पूरी कीं ४-५ (अपने हाथ से सेंदुर लेकर राम सीता की मांग भर रहे हैं। ऐसा लगता है, मानो) कोई सर्प कमल में लाल पराग भरकर अमृत के लोभ से चन्द्रमा का शृंगार कर रहा हो। (यहां राम की साँवली बाँह सर्प है उनकी तलहथी कमल है सेंदुर पराग है और सीता का मुखमण्डल चन्द्रमा है।) ६ श्रेष्ठ या उच्च आसन, ७ उल्लास, ८ हो गया (भा) ९ किस प्रकार यह एक जिह्वा इस विशाल मंगल कार्य का वर्णन करे ?

(३२) लहकौर

दो०—पुनि-पुनि रामहि चितव सिय, सकुचति मनु सकुचै न।
हरत मनोहर मीन-छबि[1] प्रेम-पिआसे नैन॥३२६॥

स्याम सरीरु सुभायँ सुहावन। सोभा कोटि-मनोज-लजावन॥
जावक-जुत[1] पद-कमल सुहाए। मुनि-मन-मधुप रहत जिन्ह छाए॥
पीत पुनीत मनोहर धोती। हरति बाल-रबि दामिनि-जोती[2]॥
कल किंकिनि, कटि-सूत्र[3] मनोहर। बाहु बिसाल, बिभूषन सुंदर॥
पीत जनेउ महाछबि देई। कर-मुद्रिका[4] चोरि चितु लेई॥
सोहत ब्याह साज सब साजे। उर आयत[5] उरभूषन राजे[6]॥
पिअर उपरना[7] काखासोती[8]। दुहुँ आँचरन्हि लगे मनि मोती॥
नयन-कमल कल कुंडल काना। बदनु सकल सौंदर्ज-निधाना॥
सुंदर भृकुटि मनोहर नासा। भाल तिलकु रुचिरता-निवासा॥
सोहत मौरु मनोहर माथे। मंगलमय मुकुता-मनि गाथे॥

छं०—गाथे महामनि मौर मंजुल अंग सब चित चोरहीं।
पुर-नारि सुर-सुंदरीं बरहि[9] बिलोकि सब तिन तोरहीं[10]॥
मनि-बसन-भूषन वारि[11] आरति करहिं मंगल गावहीं।
सुर सुमन बरिसहिं सूत-मागध बंदि सुजसु सुनावहीं॥ १ ॥
कोहबरहिं आने कुअँर कुअँरि सुआसिनिन्ह सुख पाइ कै।
अति प्रीति लौकिक रीति लागीं करन, मंगल गाइ कै॥
लहकौरि गौरि सिखाव रामहि सीय सन सारद कहैं[12]।
रनिवासु हास बिलास-रस बस[13], जन्म को फलु सब लहैं॥ २ ॥

---

३२६ १ (सीता की आँखें) सुन्दर मछली की सुन्दरता हर लेने वाली थीं।

३२७ १ महावर से रँगे हुए, २ प्रातःकालीन सूर्य और बिजली की ज्योति, ३ डोरे की करधनी ४ हाथ की अँगूठी, ५ चौड़ी छाती, ६ छाती का हार सुशोभित था, ७ दुपट्टा, चादर ८ जनेऊ की तरह दुपट्टा डालने का ढंग (इसमें दुपट्टे को बायें कन्धे और पीठ से दाहिनी तरफ नीचे ले जाते हैं और फिर उसे बायें कन्धे पर डाल देते हैं), ९ वर या दूल्हे को १० (कुदृष्टि से बचाने के लिए) तृण तोड़ रही थीं, ११ न्योछावर कर, १२ राम को पार्वती और सीता को सरस्वती लहकौर-सम्बन्धी सलाह दे रही थीं [लहकौर वर वधू द्वारा कोहबर में खेला जाने वाला जुआ (कौड़ियों का खेल) है], १३ हास और विलास के रस में मग्न।

निज पानि-मनि महुँ[14] देखिअति मूरति सुरूपनिधान की ।
चालति न भुजबल्ली[15], बिलोकनि-बिरह-भय-बस जानकी ॥
कौतुक बिनोद प्रमोदु प्रेमु न जाइ कहि, जानहिं अली ।
बर कुअँरि सुंदर सकल सखी लवाइ जनवासेहि चली ॥ ३ ॥
तेहि समय सुनिअ असीस जहँ तहँ नगर नभ आनँदु महा ।
"चिरु जिअहुँ जोरी चारु चार्‌यो", मुदित मन सबही कहा ॥
जोगींद्र[16] सिद्ध मुनीस देव बिलोकि प्रभु, दुंदुभि हनी ।
चले हरषि बरषि प्रसून निज-निज लोक जय जय-जय भनी ॥ ४ ॥
दो०—सहित बधूटिन्ह[17] कुअँर सब तब आए पितु पास ।
सोभा - मंगल - मोद भरि उमगेउ जनु जनवास ॥३२७॥

(३३) बरात की विदाई

(छन्द-सं० ३२८ से ३३२ ज्योनार, दूसरे दिन जनक द्वारा ऋषियों, ब्राह्मणों और याचकों को विपुल दान बरात का बहुत दिनों तक सत्कार और विश्वामित्र तथा शतानन्द के समझाने पर जनक द्वारा बरात की विदाई पर सहमति)

पुरबासी सुनि, चलिहि बराता । बूझत बिकल परस्पर बाता[1] ॥
सत्य गवनु सुनि, सब बिलखाने । मनहु साँझ सरसिज सकुचाने ॥
जहँ - जहँ आवत बसे बराती । तहँ तहँ सिद्ध[2] चला बहु भाँती ॥
बिबिध भाँति मेवा - पकवाना । भोजन साजु न जाइ बखाना ॥
भरि-भरि बसहँ[3], अपार कहारा । पठईं जनक अनेक सुसारा[4] ॥
तुरग[5] लाख, रथ सहस पचीसा[6] । सकल सँवारे नख अरु सीसा[7] ॥
मत्त सहस-दस[8] सिंधुर साजे । जिन्हहि देखि दिसि-कुंजर लाजे ॥
कनक बसन मनि भरि-भरि जाना । महिषी[9] धेनु बस्तु बिधि नाना ॥
दो०—दाइज[10] अमित, न सकिअ कहि दीन्ह बिदेहँ बहोरि ।
जो अवलोकत लोकपति[11] लोक - संपदा थोरि ॥३३३॥

---

३२७. १४ अपने हाथ की मणि मे १५ बाहु रूपी लता १६ योगिराज, १७ बन्धुओं के साथ ।

३३३ १ बहुत व्याकुलता के साथ (बरात के विदा होने की) बात पूछ रहे हैं, २ रसोई का सामान (सिद्धान्न) ३ बैल ४ रसोइये, ५ घोड़े, ६ पच्चीस हजार, ७ नख से शिख तक (ऊपर से नीचे तक), ८ दस हजार, ९ भैंस, १० दहेज, उपहार, ११ लोकपाल ।

सबु समाजु एहि भाँति बनाई। जनक अवधपुर दीन्ह पठाई॥
चलिहि बरात, सुनत सब रानी। बिकल मीनगन जनु लघु पानीं॥
पुनि-पुनि सीय गोद करि लेहीं। देइ असीस सिखावनु देहीं॥
'होएहु संतत[1] पियहि पिआरी। चिरु अहिबात[2] असीस हमारी॥
सासु ससुर गुर सेवा करेहू। पति रुख[3] लखि आयसु अनुसरेहू॥'
अति सनेह-बस सखीं सयानी। नारि-धरम सिखवहिं मृदु बानी॥
सादर सकल कुअँरि समुझाई। रानिन्ह बार - बार उर लाई॥
बहुरि-बहुरि भेटहिं महतारी। कहहिं, "बिरंचि रचीं कत नारीं॥"
दो० - तेहि अवसर भाइन्ह - सहित रामु भानु - कुल - केतु।
चले जनक - मंदिर मुदित, बिदा करावन - हेतु॥३३४॥

चारिउ भाइ सुभायँ सुहाए। नगर - नारि - नर देखन धाए॥
कोउ कह 'चलन चहत हहिं आजू। कीन्ह बिदेह बिदा कर साजू[1]॥
लेहु नयन - भरि रूप निहारी। प्रिय पाहुने भूप-सुत चारी॥
को जानै केहिं सुकृत सयानी। नयन-अतिथि[2] कीन्हे बिधि आनी॥
मरनसीलु[3] जिमि पाव पिऊषा[4]। सुरतरु लहै जनम कर भूखा॥
पाव नारकी[5] हरिपदु जैसें। इन्ह कर दरसनु हम कहँ तैसें॥
निरखि राम-सोभा उर धरहू। निज मन-फनि मूरति-मनि करहू[6]॥"
एहि बिधि सबहि नयन-फलु देता। गए कुअँर सब राज-निकेता[7]॥
दो० —रूप - सिंधु सब बंधु लखि हरषि उठा रनिवासु।
करहिं निछावरि - आरती महा - मुदित - मन सासु॥३३५॥

देखि राम-छबि अति अनुरागीं। प्रेमबिबस पुनि-पुनि पद लागीं॥
रही न लाज, प्रीति उर छाई। सहज सनेहु बरनि किमि जाई॥
भाइन्ह सहित उबटि अन्हवाए[1]। छरस असन[2] अति हेतु[3] जेवाँए॥
बोले रामु सुअवसरु जानी। सील-सनेह-सकुचमय बानी॥

---

३३४ १ सर्वदा, २ सुहाग, ३ पति की इच्छा।

३३५ १ विदा की तैयारी, २ आँखों का अतिथि, अर्थात् कुछ समय तक ही दर्शन का विषय, ३ मरता हुआ, ४ अमृत, ५ नरक में रहने वाला, ६ अपने मन को सर्प और राम की मूर्ति को मणि बना लीजिए, ७ राजा जनक का महल।

३३६ १ उबटन लगा कर नहलाया, २ षट्रस (छरस) भोजन, ३ अत्यन्त प्रेम से।

"राउ[४] अवधपुर चहत सिधाए[५]। बिदा होन हम इहाँ पठाए ॥
मातु ! मुदित मन आयसु देहू। बालक जानि, करब नित नेहू[६] ॥'
सुनत बचन बिलखेउ रनिवासू। बोलि न सकहिं प्रेमबस सासू ॥
हृदयँ लगाइ कुअँरि सब लीन्ही। पतिन्ह सौंपि बिनती अति कीन्ही ॥

छं०—करि बिनय सिय रामहि समरपी जोरि कर पुनि पुनि कहै।
'बलि जाउँ तात सुजान'तुम्ह कहुँ बिदित गति सब की अहै ॥
परिवार पुरजन मोहि[७] राजहि प्रानप्रिय सिय जानिबी[८]।
तुलसीस ! सीलु सनेहु लखि निज किंकरी[९] करि मानिबी ॥

सो०—तुम्ह परिपूरन काम, ग्यान सिरोमनि[१०], भावप्रिय[११]।
जन-गुन-गाहक[१२] राम ! दोष दलन[१३], करुनायतन ॥३३६॥"

अस कहि रही चरन गहि रानी। प्रेम-पंक[१] जनु गिरा समानी।
सुनि सनेहसानी बर बानी। बहुबिधि राम सासु सनमानी[२] ॥
राम बिदा मागत कर जोरी। कीन्ह प्रनामु बहोरि बहोरी ॥
पाइ असीस बहुरि सिरु नाई। भाइन्ह सहित चले रघुराई ॥
मंजु मधुर मूरति उर आनी। भई सनेह सिथिल[३] सब रानी ॥
पुनि धीरजु धरि कुअँरि हँकारी[४]। बार-बार भेटहिं महतारी ॥
पहुँचावहिं, फिरि मिलहिं बहोरी। बढ़ी परस्पर प्रीति न थोरी ॥
पुनि-पुनि मिलत सखिन्ह बिलगाई। बाल बच्छ[५] जिमि धेनु लवाई[६]॥

दो०—प्रेमबिबस नर नारि सब सखिन्ह-सहित रनिवासु।
मानहुँ कीन्ह बिदेहपुर करुनाँ बिरहँ[७] निवासु ॥३३७॥

सुक सारिका जानकी ज्याए[१]। कनक पिंजरन्हि राखि पढ़ाए ॥
ब्याकुल कहहिं, 'कहाँ बैदेही।' सुनि धीरजु परिहरइ न केही[२] ॥
भए बिकल खग मृग एहि भाँती। मनुज दसा कैसें कहि जाती ॥

---

३३६ ४ राजा (दशरथ) ५ लौटना चाहते हैं ६ प्रेम ७ मुझको, ८ जानियेगा मानियेगा ९ दासी १० ज्ञानियों के शिरोमणि ११ जिनको प्रेम प्यारा है १२ भक्तों के गुण ग्राहक १३ दोष दूर करने वाले।

३३७ १ प्रेम का कीच या दलदल २ सम्मान किया (समझाया) ३ प्रेम से बेसुध या व्याकुल ४ बुला बुला कर ५ बछड़ा ६ तुरन्त ब्याई हुई गाय, ७ करुणा और विरह ने।

३३८ १ पाली थीं, २ किसका धीरज न छूट जायेगा ?

बधु - समेत जनकु तब आए। प्रेम उमगि लोचन जल छाए ॥
सीय बिलोकि धीरता भागी। रहे कहावत परम बिरागी ॥
लीन्हि रायँ उर लाइ जानकी। मिटी महामरजाद ग्यान की[3] ॥
समुझावत सब सचिव सयाने। कीन्ह बिचारु न अवसर जाने[4] ॥
बारहिं बार सुता उर लाई। सजि सुंदर पालकी मगाई ॥

दो०—प्रेमबिबस परिवारु सबु जानि सुलगन[5] नरेस।
कुअँरि चढ़ाईं पालकिन्ह सुमिरे सिद्धि - गनेस[6] ॥३३८॥

बहुबिधि भूप सुता समुझाईं। नारिधरमु कुलरीति सिखाईं ॥
दासी - दास दिए बहुतेरे। सुचि सेवक जे प्रिय सिय केरे ॥
सीय चलत ब्याकुल पुरबासी। होहिं सगुन सुभ मंगल-रासी ॥
भूसुर[1] - सचिव - समेत समाजा। संग चले पहुँचावन राजा ॥
समय बिलोकि बाजने बाजे। रथ गज बाजि बरातिन्ह साजे ॥
दसरथ बिप्र बोलि सब लीन्हे। दान - मान परिपूरन[2] कीन्हे ॥
चरन-सरोज धूरि धरि सीसा। मुदित महीपति पाइ असीसा ॥
सुमिरि गजाननु कीन्ह पयाना[3]। मंगलमूल सगुन भए नाना ॥

दो०—सुर प्रसून बरषहिं हरषि, करहिं अपछरा[4] गान।
चले अवधपति अवधपुर मुदित बजाइ निसान ॥३३९॥

नृप करि बिनय महाजन फेरे। सादर सकल मागने टेरे[1] ॥
भूषन बसन बाजि गज दीन्हे। प्रेम पोषि, ठाढ़े सब कीन्हे[2] ॥
बार - बार बिरिदावलि भाषी। फिरे सकल रामहि उर राखी ॥
बहुरि-बहुरि कोसलपति कहहीं। जनकु प्रेमबस फिरै न चहहीं ॥
पुनि कह भूपति बचन सुहाए। 'फिरिअ महीस! दूरि बड़ि आए ॥'
राउ बहोरि उतरि भए ठाढ़े। प्रेम-प्रबाह[3] बिलोचन[4] बाढ़े ॥
तब बिदेह बोले कर जोरी। बचन सनेह-सुधाँ जनु बोरी ॥
"करौं कवन बिधि बिनय बनाई। महाराज! मोहि दीन्हि बड़ाई ॥"

---

३३८ ३ ज्ञान की प्रबल मर्यादा (अर्थात, अज्ञान से उत्पन्न मोह आदि भावनाओं के प्रति निःसगता) ४ यह अवसर दुःख करने का नहीं है ऐसा जान कर उन्होंने विचार किया ५ शुभ लग्न ६ सभी सिद्धियों और गणेश को।

३३९ १ ब्राह्मण, २ परिपूर्ण, भरपूर, ३ प्रयाण किया, ४ अप्सरा।

३४० १ भिखमगो को बुलाया, २ सब को संतुष्ट किया, ३ प्रेम के आंसुओ की धारा, ४ नेत्र।

दो०—कोसलपति समधी सजन[५] सनमाने सब भाँति।
मिलनि परसपर बिनय अति, प्रीति न हृदयँ समाति ॥३४०॥

मुनि-मंडलिहि जनक सिरु नावा। आसिरबादु सबहि सन पावा ॥
सादर पुनि भेंटे जामाता। रूप-सील-गुन-निधि सब भ्राता ॥
जोरि पंकरुह-पानि[१] सुहाए। बोले बचन प्रेम जनु जाए[२] ॥
"राम! करौं केहि भाँति प्रसंसा। मुनि-महेस-मन-मानस-हंसा ॥
करहिं जोग[३] जोगी जेहि लागी[४]। कोहु मोहु ममता मदु त्यागी ॥
ब्यापकु ब्रह्म अलखु[५] अबिनासी। चिदानंदु[६] निरगुन गुनरासी ॥
मन-समेत जेहि जान न बानी। तरकि[७] न सकहिं, सकल अनुमानी ॥
महिमा निगमु नेति कहि कहई। जो तिहुँ काल[८] एकरस[९] रहई ॥

दो०—नयन-विषय मो कहुँ भयउ[१०] सो समस्त सुख-मूल।
सबइ लाभु जग जीव कहँ, भएँ ईसु अनुकूल ॥३४१॥

सबहि भाँति मोहि दीन्हि बड़ाई। निज जन[१] जानि लीन्ह अपनाई ॥
होहिं सहस दस सारद, सेषा। करहिं कलप कोटिक भरि लेखा ॥
मोर भाग्य, राउर[२] गुन-गाथा[३]। कहि न सिराहिं, सुनहु रघुनाथा ॥
मैं कछु कहउँ, एक बल मोरे[४]। तुम्ह रीझहु सनेह सुठि थोरें[५] ॥
बार-बार मागउँ कर जोरे। मनु परिहरै चरन जनि भोरे[६] ॥"
सुनि बर बचन प्रेम जनु पोषे[७]। पूरनकाम रामु परितोषे[८] ॥
करि बर बिनय ससुर सनमाने। पितु कौसिक बसिष्ठ-सम जाने ॥
बिनती बहुरि भरत सन कीन्ही। मिलि सप्रेमु पुनि आसिष दीन्ही ॥

दो० मिले लखन-रिपुसूदनहि[९], दीन्हि असीस महीस।
भए परसपर प्रेमबस फिरि-फिरि नावहिं सीस ॥३४२॥

---

३४०. ५ स्वजन, अपने।

३४१. १ कमल-जैसे हाथ, २ उत्पन्न, ३ योग-साधना, ४ जिस के लिए, ५ अलक्ष्य, अगोचर, ६ चित् (ज्ञान) और आनन्दमय, ७ तर्क द्वारा जानना या सिद्ध करना, ८ तीनों कालों में, ९ एक-जैसा, अपरिवर्तित या विकार-रहित, १० मेरी आँखों के विषय बने, अर्थात् मुझे प्रत्यक्ष दिखलायी पड़े।

३४२. १ अपना भक्त, २ आप के, ३ गुणों की कहानी, ४ (उसके सम्बन्ध में) मेरा एकमात्र भरोसा यह है, ५ बहुत थोड़े प्रेम से ही, ६ भूल से भी, ७ प्रेम से परिपूर्ण, ८ प्रसन्न हुए, ९ लक्ष्मण और शत्रुघ्न से।

बार-बार करि बिनय-बड़ाई[1]। रघुपति चले संग सब भाई ॥
जनक गहे कौसिक-पद जाई। चरन रेनु सिर-नयनन्ह[2] लाई ॥
"सुनु मुनीस-बर ! दरसन तोरें। अगमु न कछु, प्रतीति मन मोरें ॥
जो सुखु सुजसु लोकपति[3] चहहीं। करत मनोरथ सकुचत अहहीं ॥
सो सुखु सुजसु सुलभ मोहि स्वामी ! सब सिधि[4] तव दरसन अनुगामी[5]॥"
कीन्हि बिनय पुनि पुनि सिरु नाई। फिरे महीसु आसिषा[6] पाई ॥
चली बरात निसान बजाई। मुदित छोट-बड़ सब समुदाई ॥
रामहि निरखि ग्राम नर-नारी। पाइ नयन-फलु होहिं सुखारी ॥

दो०— बीच-बीच बर बास[7] करि, मग लोगन्ह सुख देत।
अवध समीप पुनीत दिन पहुँची आइ जनेत[8] ॥३४३॥

(३४) अवध मे उल्लास

(छन्द सख्या ३४४ से ३६१/८ अयोध्या म बरात की वापसी, माताओ द्वारा वर वधुओ की आरती तथा अ त पुर मे समारोह, ब्राह्मणो आ।द को विपुल दान, और कुछ दिन बाद विश्वामित्र की विदाई)

आए ब्याहि रामु घर जब तें। बसइ अनंद[1] अवध सब तब तें ॥
प्रभु बिबाहँ जस भयउ उछाहू। सकहिं न बरनि गिरा अहिनाहू[2]॥
कबिकुल-जीवनु-पावन[3] जानी। राम सीय जसु मंगल खानी ॥
तेहि ते मैं कछु कहा बखानी। करन पुनीत हेतु निज बानी ॥
सो०— सिय-रघुबीर बिबाहु जे सप्रेम गावहिं-सुनहिं।
तिन्ह कहुँ सदा उछाहु मंगलायतन[4] राम जसु ॥३६१॥

---

३४३ १ विनती और बड़ाई २ सिर और आंखो पर, ३ लोकपाल, ४ सिद्धियाँ ५ आपके दर्शन के पीछे पीछे चलती हैं ६ आशिष ७ पड़ाव ८ बरात।

३६१ १ आनन्द २ सरस्वती और शेष ३ कवियो के समुदाय के जीवन को पवित्र करने वाला ४ कल्याण या मंगल का धाम।

(३५) अभिषेक की तैयारियाँ

दो०—श्रीगुरु-चरन-सरोज-रज[१] निज मनु-मुकुरु सुधारि[२]।
बरनउँ रघुबर बिमल जसु, जो दायकु फल चारि॥

जब तें रामु ब्याहि घर आए। नित नव मंगल, मोद बधाए[3]॥
*भुवन चारिदस भूधर[४] भारी। सुकृत-मेघ बरषहिं सुख-बारी[५]॥
रिधि-सिधि[६]-संपति - नदी सुहाई। उमगि अवध-अंबुधि[७] कहुँ आई॥
मनिगन पुर-नर-नारि सुजाती[८]। सुचि, अमोल[९], सुंदर सब भाँती॥
कहि न जाइ कछु नगर-बिभूती[१०]। जनु एतनिअ बिरंचि-करतूती[११]॥
सब बिधि सब पुर-लोग सुखारी। रामचंद - मुख - चंदु निहारी॥
मुदित मातु सब सखीं सहेली। फलित[१२]बिलोकि मनोरथ-बेली[१३]॥
राम - रूपु - गुन - सीलु सुभाऊ। प्रमुदित होइ देखि-सुनि राऊ[१४]॥

दो०—सब कें उर अभिलाषु अस कहहिं मनाइ महेसु।
आप अछत[१५] जुबराज-पद[१६] रामहि देउ नरेसु॥ १॥

एक समय सब सहित समाजा। राजसभाँ रघुराजु[१] बिराजा॥
सकल - सुकृत - मूरति नरनाहू। राम-सुजसु सुनि अतिहि उछाहू॥
नृप सब रहहिं कृपा अभिलाषें[२]। लोकप[३] करहिं प्रीति रुख राखें॥
तिभुवन तीनि काल जग माहीं। भूरिभाग[४] दसरथ-सम नाहीं॥

---

१ १ श्रीगुरुदेव के चरण-कमलों की धूलि (से), २ अपने मन के दर्पण (मुकुर) को साफ कर, ३ मोद (आनन्द) के बधावे बज रहे हैं, ४ पर्वत, ५ पुण्य के मेघ सुख का जल बरसाते हैं, ६ *ऋद्धि (सम्पत्ति) और *सिद्धि, ७ अयोध्या-रूपी समुद्र, ८ अच्छी जातियों के, ९ अमूल्य १० नगर की समृद्धि, ११ मानो ब्रह्मा का कौशल बस इतना ही (एतनिअ) हो, १२—१३ मन कामना की लता को फला हुआ देख कर, १४ राऊ = राजा (दशरथ), १५ रहते हुए, १६ युवराज (उत्तराधिकारी) का पद।

२. १ रघुकुल के राजा (दशरथ), २ (दशरथ की) कृपा को अभिलाषा करते हैं, ३ लोकपाल, ४ बड़ा भाग्यशाली।

मंगलमूल रामु सुत जासू। जो कछु कहिअ, थोर सबु तासू ॥
रायँ सुभायँ मुकुरु कर लीन्हा। बदन बिलोकि, मुकुटु सम कीन्हा ॥
श्रवन-समीप भए सित[५] केसा। मनहुँ जरठपनु[६] अस उपदेसा ॥
'नृप! जुबराजु राम कहुँ देहू। जीवन-जनम-लाहु किन लेहू[७] ॥'
दो०—यह बिचारु उर आनि नृप सुदिनु सुअवसरु पाइ।
प्रेम-पुलकि तन मुदित मन गुरहि सुनायउ जाइ ॥ २ ॥

कहइ भुआलु, "सुनिअ मुनिनायक! भए राम सब बिधि सब लायक ॥
सेवक, सचिव, सकल पुरबासी। जे हमारे अरि, मित्र, उदासी[१] ॥
सबहि रामु प्रिय,जेहि बिधि मोही। प्रभु-असीस[२] जनु तनु धरि सोही ॥
बिप्र, सहित-परिवार गोसाईं। करहिं छोहु सब रौरिहि नाईं[३] ॥
जे गुर-चरन-रेनु सिर धरहीं। ते जनु सकल बिभव बस करहीं ॥
मोहि सम यहु अनुभयउ[४] न दूजें। सबु पायउँ रज पावनि पूजें ॥
अब अभिलाषु एकु मन मोरें। पूजिहि[५] नाथ! अनुग्रह तोरें ॥"
मुनि प्रसन्न लखि सहज सनेहू। कहेउ, 'नरेस! रजायसु देहू[६] ॥
दो०—राजन! राउर नामु जसु, सब अभिमत-दातार[७]।
फल-अनुगामी महिप मनि! मन-अभिलाषु तुम्हार[८] ॥ ३ ॥"

सब बिधि गुरु प्रसन्न जियँ जानी। बोलेउ राउ रहँसि[१] मृदु बानी ॥
"नाथ! रामु करिअहिं जुबराजू। कहिअ कृपा करि, करिअ समाजू[२] ॥
मोहि अछत यहु होइ उछाहू। लहहिं लोग सब लोचन-लाहू[३] ॥
प्रभु-प्रसाद सिव सबइ निबाहीं। यह लालसा एक मन माहीं ॥
पुनि न सोच, तनु रहउ कि जाऊ। जेहिं न होइ पाछें पछिताऊ ॥"
सुनि मुनि दसरथ-बचन सुहाए। मंगल मोद-मूल मन भाए ॥
"सुनु नृप!जासु बिमुख पछिताहीं। जासु भजन बिनु जरनि[४] न जाहीं ॥
भयउ तुम्हार तनय[५] सोइ स्वामी। रामु पुनीत-प्रेम-अनुगामी ॥

---

२. ५ उजले, ६ बुढ़ापा, ७ जीवन और जन्म को क्यों नहीं सफल बनाते ?

३ १ उदासी=उदासीन या तटस्थ लोग, २ आप का आशीर्वाद, ३ आप की तरह, ४ अनुभव हुआ, ५ पूर्ण होगी ६ इच्छा बतलाइये, ७ इच्छित वस्तुओं को देने वाला, ८ हे राजाओं के सिरोमणि! आप के मन की अभिलाषा फल का अनुगमन करने वाली है (अर्थात् आप के इच्छा करने से पहले ही आप को उस का फल मिल जाता है)।

४ १ प्रसन्न हो कर, २ तैयारी की जाये, ३ आँखों का लाभ (आँखों से देखने का सुख), ४ दुःख, पीड़ा, ५ पुत्र।

दो० – बेगि बिलंबु न करिअ नृप ! साजिअ सबुइ समाजु ।
सुदिन-सुमंगलु तबहिं जब रामु होहिं जुबराजु ॥ ४ ॥"
मुदित महीपति मंदिर आए । सेवक, सचिव, सुमंतु बोलाए ॥
कहि जयजीव[१], सीस तिन्ह नाए । भूप सुमंगल बचन सुनाए ॥
"जौं पाँचहि[२] मत लागै नीका । करहु हरषि हियँ रामहि टीका ॥"
मंत्री मुदित सुनत प्रिय बानी । अभिमत बिरवँ[३]परेउ जनु पानी ॥
बिनती सचिव करहिं कर जोरी । "जिअहु जगतपति[४]बरिस करोरी ॥
जग-मंगल भल काजु बिचारा । बेगिअ नाथ न लाइअ बारा[५] ॥"
नृपहिं मोदु, सुनि सचिव-सुभाषा[६] । बढ़त बौंड़ जनु लही सुसाखा[७] ॥
दो० — कहेउ भूप 'मुनिराज कर जोइ जोइ आयसु होइ ।
राम-राज-अभिषेक-हित बेगि करहु सोइ-सोइ ॥ ५ ॥"

हरषि मुनीस कहेउ मृदु बानी । "आनहु सकल सुतीरथ-पानी[१] ॥"
औषध, मूल, फूल, फल, पाना । कहे नाम गनि मंगल[२] नाना ॥
चामर, चरम[३], बसन बहु भाँती । रोम-पाट-पट[४] अगनित जाती ॥
मनिगन, मंगल - बस्तु अनेका । जो जग जोगु[५] भूप-अभिषेका ॥
बेद-बिदित कहि सकल बिधाना । कहेउ, "रचहु पुर बिबिध बिताना ॥
सफल-रसाल[६], पूगफल[७], केरा । रोपहु बीथिन्ह, पुर चहुँ फेरा[८] ॥
रचहु मंजु मनि - चौकें चारू । कहहु बनावन बेगि बजारू ॥
पूजहु गनपति, गुर, कुलदेवा । सब बिधि करहु भूमिसुर-सेवा ॥
दो० - ध्वज, पताक, तोरन, कलस, सजहु तुरग[९], रथ, नाग ।"
सिर धरि मुनिबर-बचन सबु निज-निज काजहिं लाग ॥ ६ ॥

जो मुनीस जेहि आयसु दीन्हा । सो तेहि काजु प्रथम जनु कीन्हा ॥
बिप्र, साधु, सुर पूजत राजा । करत राम-हित मंगल काजा ॥
सुनत राम - अभिषेक सुहावा । बाज गहागह अवध बधावा ॥
राम - सीय - तन सगुन जनाए । फरकहिं मंगल अंग सुहाए ॥
पुलकि सप्रेम परसपर कहहीं । "भरत-आगमनु - सूचक अहहीं ॥

५ १ 'जय जीव !' कह कर, २ पचों को, ३ बिरवे या पौधे, ४ राजा, ५ देर नहीं कीजिए, ६ सचिवों की इच्छित वाणी, ७ जैसे ऊपर बढ़ती हुई लता को अच्छी शाखा का सहारा मिल गया हो ।

६. १ श्रेष्ठ तीर्थों का जल, २ मांगलिक पदार्थ, ३ चर्म, ४ रोम (ऊन) और पाट (रेशम) के वस्त्र, ५ योग्य, उपयुक्त, ६ फल वाले आम, ७ सुपारी, ८ चारो ओर, ९ घोड़ा ।

भए बहुत दिन, अति अवसेरी[1]। सगुन-प्रतीति[2] भेंट प्रिय केरी॥
भरत-सरिस प्रिय को जग माहीं। इहइ[3] सगुन फलु, दूसर नाहीं॥
रामहि बंधु-सोच दिन राती। अंडन्हि कमठ-हृदउ[4]जेहि भाँती॥
दो०—एहि अवसर मंगलु परम सुनि रहँसेउ[5] रनिवासु।
सोभत लखि बिधु बढ़त जनु बारिधि-बीचि-बिलासु[6]॥ ७॥

प्रथम जाइ जिन्ह बचन सुनाए। भूषन-बसन भूरि[1] तिन्ह पाए।
प्रेम-पुलकि तन मन अनुरागी। मंगल कलस सजन सब लागी॥
चौकें चारु सुमित्राँ पूरी। मनिमय बिबिध भाँति अति रूरी[2]॥
आनँद-मगन राम-महतारी। दिए दान, बहु बिप्र हँकारी॥
पूजीं ग्रामदेवि, सुर, नागा। कहेउ बहोरि देन बलिभागा[3]॥
"जेहि बिधि होइ राम-कल्यानू। देहु दया करि सो बरदानू॥"
गावहिं मंगल कोकिलबयनी। बिधुबदनी मृगसावकनयनी[4]॥

दो०—राम-राज अभिषेकु सुनि हियँ हरषे नर-नारि।
लगे सुमंगल सजन सब बिधि अनुकूल बिचारि॥ ८॥

तब नरनाहँ बसिष्ठु बोलाए। रामधाम सिख देन पठाए॥
गुर-आगमनु सुनत रघुनाथा। द्वार आइ पद नायउ माथा॥
सादर अरघ देइ घर आने। सोरह भाँति पूजि सनमाने[1]॥
गहे चरन सिय-सहित बहोरी। बोले रामु कमल कर जोरी॥
"सेवक-सदन[2] स्वामि आगमनू। मंगल-मूल, अमंगल-दमनू॥
तदपि उचित, जनु बोलि सप्रीती। पठइअ काज नाथ! असि नीती॥
प्रभुता तजि प्रभु कीन्ह सनेहू। भयउ पुनीत आजु यहु गेहू॥
आयसु होइ सो करौं गोसाईं। सेवकु लहइ स्वामि-सेवकाईं॥"

दो०—सुनि सनेह-साने बचन मुनि रघुबरहि प्रसंस।
"राम! कस न तुम्ह कहहु अस, हंस-बंस-अवतंस[3]॥ ९॥"

---

७ १ बहुत अवसेर (कितने की इच्छा) हो रही है, २ शकुनों से यह विश्वास होता है, ३ यही, ४ कछुए (कमठ) के हृदय या मन में, ५ हर्षित हो गया, ६ समुद्र में लहरों का विलास (उल्लास)।

८. १ बहुत, २ बहुत सुन्दर (रूरी), ३ बलि की भेंट, ४ हरिण के बच्चे जैसी आँखों वाली।

९ १ सोलह प्रकार की पूजा (षोडशोपचार पूजा) से उनका सम्मान किया, २ सेवक के घर में; ३ सूर्य (हंस) वंश के भूषण।

बरनि राम - गुन - सीलु-सुभाऊ । बोले प्रेम - पुलकि मुनिराऊ ॥
"भूप सजेउ अभिषेक - समाजू । चाहत देन तुम्हहि जुबराजू ॥
राम ! करहु सब संजम आजू[1] । जौं बिधि कुसल निबाहै काजू ॥"
गुरु, सिख देइ राय पहिं गयऊ । राम-हृदयँ अस बिसमउ[2] भयऊ ॥
जनमे एक संग सब भाई । भोजन सयन, केलि, लरिकाई ॥
करनबेध[3] उपबीत, बिआहा । संग - संग सब भए उछाहा ॥
बिमल बंस यहु अनुचित एकू । बंधु बिहाइ[4] बड़ेहि अभिषेकू ॥
प्रभु सप्रेम पछितानि सुहाई । हरउ भगत - मन कै कुटिलाई ॥

दो०—तेहि अवसर आए लखन मगन प्रेम - आनंद ।
सनमाने प्रिय बचन कहि रघुकुल - कैरव - चंद[5] ॥ १० ॥

बाजहिं बाजने बिबिध बिधाना । पुर-प्रमोदु नहिं जाइ बखाना ॥
भरत - आगमनु सकल मनावहिं । आवहुँ बेगि नयन फलु पावहिं ॥
हाट, बाट, घर, गली अथाई[1] । कहहिं परसपर लोग-लोगाई ॥
"कालि लगन भलि केतिक बारा[2] । पूजिहि बिधि अभिलाषु हमारा ॥
कनक - सिंघासन सीय - समेता । बैठहिं रामु, होइ चित चेता[3] ॥"

(३६) मंथरा का सम्मोहन

सकल कहहिं कब होइहि काली । बिघन मनावहिं देव कुचाली[4] ॥
तिन्हहि सोहाइ न अवध-बधावा । चोरहि चंदिनि राति[5]न भावा ॥
सारद बोलि बिनय सुर करहीं । बारहिं बार पाय लै परहीं ॥

दो० — 'बिपति हमारि बिलोकि बड़ि मातु[1] करिअ सोइ आजु ।
रामु जाहिं बन राजु तजि, होइ सकल सुरकाजु[6] ॥ ११ ॥"

सुनि सुर-बिनय ठाढ़ि पछिताती । भइउँ सरोज-बिपिन हिमराती[1] ॥
देखि देव पुनि कहहिं निहोरी । "मातु[1] तोहि नहिं थोरिउ खोरी ॥

---

१० १ हे राम ! तुम आज सब संयम का पालन करो, २ दुःख, ३ कनछेदन, ४ छोड़ कर ५ रघुकुल-रूपी कुमुदों को खिलाने वाले चन्द्रमा (रामचन्द्र)।

११ १ बैठक या चौपाल, २ किस समय, ३ हमारी अभिलाषा पूरी हो, ४ षड्यन्त्री, कुचक्री, ५ चाँदनी रात, ६ देवताओं के कार्य ।

१२ १ मैं कमल-वन के लिए हेमन्त की रात हो गयी ।

विसमय-हरष-रहित रघुराऊ। तुम्ह जानहु सब राम-प्रभाऊ॥
जीव करम-बस[2] सुख-दुख-भागी। जाइअ अवध देव हित लागी॥"
बार-बार गहि चरन सँकोची। चली बिचारि बिबुध-मति पोची[3]॥
ऊँच निवासु, नीचि करतूती। देखि न सकहिं पराइ बिभूती[4]॥
आगिल काजु, बिचारि बहोरी। करिहहिं चाह कुसल कबि मोरी॥
हरषि हृदयँ दसरथ-पुर आई। जनु ग्रह-दसा दुसह दुखदाई॥
दो०—नामु मथरा मंदमति चेरी[5] कैकइ केरि।
अजस-पेटारी[6] ताहि करि गई गिरा मति फेरि॥ १२॥

(३७) कैकेयी-मंथरा संवाद

दीख मंथरा नगरु-बनावा। मंजुल, मंगल, बाज बधावा॥
पूछेसि लोगन्ह, "काह उछाहू"। राम-तिलकु, सुनि भा उर दाहू॥
करइ बिचारु कुबुद्धि-कुजाती। होइ अकाजु[1] कवनि बिधि राती॥
देखि लागि मधु कुटिल किराती[2]। जिमि गवँ तकइ, लेउँ केहि भाँती[3]॥
भरत-मातु पहिं गइ बिलखानी। "का अनमनि हसि,"[4] कह हँसि रानी॥
ऊतरु देइ न लेइ उसासू। नारि-चरित करि ढारइ आँसू॥
हँसि कह रानि, "गालु बड़ तोरें। दीन्ह लखन सिख, अस मन मोरें॥"
तबहुँ न बोल चेरि बड़ि पापिनि। छाड़इ स्वास कारि जनु[5] साँपिनि॥
दो०—सभय रानि कह, 'कहसि किन कुसल रामु महिपालु।
लखनु, भरतु, रिपुदमनु," सुनि भा कुबरी उर सालु[6]॥ १३॥

"कत सिख देइ हमहि कोउ माई। गालु करब[1] केहि कर बलु पाई॥
रामहि छाड़ि कुसल केहि आजू। जेहि जनेसु[2] देइ जुबराजू॥
भयउ कौसिलहि बिधि अति दाहिन। देखत गरब रहत उर नाहिन॥

---

१२ २ अपने कर्मों के कारण, ३ (सरस्वती) यह विचार कर चली कि देवताओं की बुद्धि ओछी है, ४ ऐश्वर्य, बढ़ती, ५ दासी, ६ अपयश (बदनामी) की पिटारी।

१३ १ बिगाड़ा, २-३ जैसे कुटिल भीलनी मधु का छत्ता लगा हुआ देख कर यह घात लगाती है कि मैं उसे किस तरह ले लूं, ४ उदास क्यों हो, ५ जैसे, ६ भारी पीड़ा।

१४. १ बढ़ बढ़ कर बातें करूंगी, २ राजा (दशरथ)।

देखहु कस न जाइ सब सोभा । जो अवलोकि मोर मनु छोभा ॥
पूतु बिदेस, न सोचु तुम्हारें । जानति हहु बस नाहु[3] हमारें ॥
नीद बहुत प्रिय सेज - तुराई[4] । लखहु न भूप - कपट-चतुराई ॥"
सुनि प्रिय बचन मलिन मनु जानी । झुकी रानि, "अब रहु अरगानी[5]॥
पुनि अस कबहुँ कहसि घरफोरी । तब धरि जीभ कढ़ावउँ[6] तोरी ॥
दो०—काने, खोरे[7], कूबरे, कुटिल - कुचाली जानि ।
तिय बिसेषि, पुनि चेरि," कहि भरतमातु मुसुकानि ॥ १४ ॥

"प्रियबादिनि! सिख दीन्हिउँ तोही । सपनेहुँ तो पर कोपु न मोही ॥
सुदिनु सुमंगल दायकु सोई । तोर कहा फुर[1] जेहि दिन होई ॥
जेठ स्वामि, सेवक लघु भाई । यह दिनकर-कुल-रीति[2] सुहाई ॥
राम तिलकु जौं साँचेहुँ काली । देउँ, मागु मन-भावत[3] आली[4] ॥
कौसल्या - सम सब महतारी । रामहि सहज सुभायँ पिआरी ॥
मो पर करहिं सनेहु बिसेषी । मैं करि प्रीति - परीछा देखी ॥
जौं बिधि जनमु देइ करि छोहू । होहुँ राम - सिय पूत - पुतोहू ॥
प्रान तें अधिक रामु प्रिय मोरें । तिन्ह कें तिलक, छोभु कस तोरें ॥
दो०—भरत-सपथ तोहि, सत्य कहु परिहरि कपट-दुराउ[5]।
हरष-समय बिसमउ[6] करसि, कारन मोहि सुनाउ ॥ १५ ॥"

"एकहिं बार आस सब पूजी[1] । अब कछु कहब जीभ करि दूजी ॥
फोरै जोगु कपारु अभागा । भलेउ कहत दुख रउरेहि लागा ॥
कहहिं झूठि फुरि[2] बात बनाई । ते प्रिय तुम्हहि, करुइ मैं माई ॥
हमहुँ कहबि अब ठकुरसोहाती[3] । नाहिं त मौन रहब दिनु राती ॥
करि कुरूप बिधि परबस कीन्हा । बवा सो लुनिअ, लहिअ जो दीन्हा[4]॥
कोउ नृप होउ हमहि का हानी । चेरि छाड़ि अब होब कि रानी ॥
जारै जोगु सुभाउ हमारा । अनभल[5] देखि न जाइ तुम्हारा ॥
तातें कछुक बात अनुसारी[6] । छमिअ देवि ! बड़ि चूक हमारी ॥"

---

१४ ३ स्वामी (पति), ४ गद्देदार पलंग, ५ अब चुप रहो, ६ निकलवा दूँगी, ७ विकलांग (लँगड़ा लूला) ।

१५ १ सत्य, २ सूर्यकुल की रीति ३ इच्छित, ४ सखी, ५ छल-कपट, ६ दुख ।

१६ १ सब आशा पूरी हो गयी, २ झूठी सच्ची, ३ मुँहदेखी, ४ जो बोया, वह काट रही हूँ, जो दिया, वह पा रही हूँ, ५ बुराई, हानि, ६ बात कही ।

दो०—गूढ़, कपट, प्रिय बचन सुनि तीय अधरबुधि[७] रानी।
सुरमाया-बस[८] बैरिनिहि[९] सुहृद[१०] जानि पतिआनि ॥१६॥

सादर पुनि-पुनि पूँछति ओही। सबरी गान[१] मृगी जनु मोही।
तसि मति फिरी अहइ जसि भावी[२]। रहसी चेरि घात जनु फाबी[३] ॥
"तुम्ह पूँछहु, मैं कहत डेराऊँ। धरेहु मोर घरफोरी नाऊँ॥"
सजि प्रतीति, बहुबिधि गढ़ि-छोली[४]। अवध-साढ़साती[५] तब बोली ॥
"प्रिय सिय-रामु कहा तुम्ह रानी। रामहि तुम्ह प्रिय,सो फुरि बानी ॥
रहा प्रथम, अब ते दिन बीते। समउ फिरें रिपु होहिं पिरीते[६] ॥
भानु कमल-कुल-पोषनिहारा। बिनु जल जारि करइ सोइ छारा ॥
जरि[७] तुम्हारि चह सवति[८] उखारी। रूँधहु करि उपाउ-बर-बारी[९] ॥
दो० तुम्हहि न सोचु, सोहाग-बल निज बस जानहु राउ।
मन मलीन, मुह मीठ नृपु, राउर सरल सुभाउ ॥ १७ ॥

चतुर गँभीर[१] राम-महतारी। बीचु पाइ[२] निज बात सँवारी ॥
पठए भरतु भूप ननिअउरें[३]। राम-मातु-मत जानब रउरें ॥
सेवहिं सकल सवति मोहि नीकें। गरबित[४] भरत-मातु बल पी कें ॥
सालु[५] तुम्हार कौसिलहि माई। कपट-चतुर नहिं होइ जनाई ॥
राजहि तुम्ह पर प्रेमु बिसेषी। सवति सुभाउ सकइ नहिं देखी ॥
रचि प्रपंचु, भूपहि अपनाई। राम-तिलक-हित लगन धराई[६] ॥
यह कुल उचित राम कहुँ टीका। सबहि सोहाइ, मोहि सुठि नीका ॥
आगिलि बात समुझि डरु मोही। देउ दैउ फिरि सो फलु ओही[७] ॥"

---

१६ ७ छोटी बुद्धि वाली ८ देवताओं की माया के वश मे होने के कारण, ९ बैरिन दासी को, १० हितैषी।

१७ १ भीलनी के गान से, २ बुद्धि उसी प्रकार फिर गयी, जैसी भावी (होनी) थी, ३ अपना दाँव लगा देख कर दासी मन्थरा फूल उठी, ४ तरह-तरह से गढ़ और छील कर (बातें बना कर) उसने विश्वास जमा लिया, ५ अयोध्या की साढ़ेसाती (साढ़ेसाती सात वर्ष की शनि की दशा है, जो बहुत बुरी होती है।) ६ प्रियजन मित्र, जड़, ८ सौत, ९ उपाय-रूपी अच्छी बाड़ (घेरा) लगा कर उसे रोक दीजिये।

१८ १ रहस्यमय स्वभाव वाली, २ अवसर पा कर, ३ ननिहाल, ४ गर्वित, घमण्ड से फूली हुई, ५ खटका, पीड़ा, ६ लग्न (शुभ मुहूर्त) निश्चित कराया, ७ देव उलट कर वह फल उसे ही दें।

दो०—रचि-पचि कोटिक कुटिलपन कीन्हेसि कपट प्रबोधु[८]।
कहिसि कथा सत सवति कै जेहि बिधि बाढ़ बिरोधु ॥१८॥

भावी-बस प्रतीति उर आई। पूँछ रानि पुनि सपथ देवाई ॥
"का पूँछहु तुम्ह, अबहुँ न जाना। निज हित-अनहित पसु पहिचाना॥
भयउ पाखु दिन[१] सजत समाजू। तुम्ह पाई सुधि मोहि सन आजू ॥
खाइअ-पहिरिअ राज तुम्हारें। सत्य कहे नहिं दोषु हमारें ॥
जौं असत्य कछु कहब बनाई। तौ बिधि देइहि हमहि सजाई ॥
रामहि तिलक कालि जौं भयऊ। तुम्ह कहुँ बिपति-बीजु बिधि बयऊ[२]॥
रेख खँचाइ कहउँ बलु भाषी[३]। भामिनि[४] भइहु दूध कइ[४] माखी ॥
जौं सुत-सहित करहु सेवकाई। तौ घर रहहु, न आन उपाई ॥

दो०—कद्रूँ बिनतहि दीन्ह दुखु[५], तुम्हहि कौसिलाँ देब।
भरतु बंदिगृह सेइहहिं, लखनु राम के नेब[६] ॥ १९ ॥"

कैकयसुता[१] सुनत कटु बानी। कहि न सकइ कछु, सहमि सुखानी ॥
तन पसेउ[२], कदली-जिमि काँपी। कुबरीं दसन जीभ तब चाँपी[३] ॥
कहि कहि कोटिक कपट-कहानी। धीरजु धरहु, प्रबोधिसि[४] रानी ॥
फिरा करमु, प्रिय लागि कुचाली[५]। बकिहि सराहइ मानि मराली[६]॥
"सुनु मथरा! बात फुरि तोरी। दहिनि आँखि नित फरकइ मोरी॥
दिन प्रति देखउँ राति कुसपने। कहउँ न तोहि मोह-बस अपने[७]॥
काह करौं सखि! सूध सुभाऊ। दाहिन-बाम न जानउँ काऊ ॥

दो०—अपनें चलत न आजु लगि अनभल काहुक कीन्ह।
केहिं अघ एकहि बार मोहि दैअँ[८] दुसह दुखु दीन्ह ॥ २० ॥

---

१८ ८ कपटपूर्ण उपदेश।

१९. १ एक पखवारे का समय, २ तुम्हारे लिए विपत्ति का बीज विधाता ने बो दिया, ३ मैं लकीर खींच कर पूरे बल (निश्चय) के साथ कहती हूँ, ४ कइ = की, ५ जिस प्रकार कश्यप की पत्नी *कद्रू ने अपनी सौत *विनता को दुःख दिया, ६ लक्ष्मण राम के मन्त्री होंगे।

२० १ कैकेयी, २ शरीर पसीने से भीग गया, ३ तब कुबरी ने दांतों के नीचे जीभ दबायी (चाँपी), ४ समझाती है, ५ उसका भाग्य पलट गया और कुचाल उसे प्रिय लगने लगी, ६ मानों कोई बगुली को हंसिनी मान कर उसकी प्रशंसा कर रहा हो, ७ अपनी मूढता (मोह) के कारण, ८ दैव ने।

नैहर जनमु भरब[1] बरु जाई। जिअत न करबि सवति-सेवकाई॥
अरि-बस दैउ जिआवत जाही। मरनु नीक तेहि जीवन चाही[2]॥"
दीन बचन कह बहुबिधि रानी। सुनि कुबरी तियमाया[3] ठानी॥
"अस कस कहहु मानि मन ऊना[4]। सुखु सोहागु तुम्ह कहुँ दिन दूना॥
जेहिं राउर अति अनभल ताका। सोइ पाइहि यहु फलु परिपाका[5]॥
जब तें कुमत सुना मैं स्वामिनि। भूख न बासर, नीद न जामिनि[6]॥
पूँछेउँ गुनिन्ह[7], रेख तिन्ह खाँची। भरत भुआल होहिं, यह साँची॥
भामिनि! करहु त कहौं उपाऊ। है तुम्हरी सेवा बस राऊ॥"
दो०—"परउँ कूप तुअ[8] बचन पर, सकउँ पूत पति त्यागि।
कहसि मोर दुख देखि बड, कस न करब हित लागि॥ २१॥'

कुबरी करि कबुली कैकेई[1]। कपट-छुरी उर-पाहन टेई[2]॥
लखइ न रानि निकट दुखु कैसें। चरइ हरित तिन बलिपसु जैसें॥
सुनत बात मृदु, अत कठोरी[3]। देति मनहुँ मधु माहुर[4] घोरी॥
कहइ चेरि,"सुधि अहइ कि नाही। स्वामिनि! कहिहु कथा मोहि पाहीं[5]॥
दुइ बरदान भूप सन थाती। मागहु आजु जुडावहु छाती॥
सुतहि राजु, रामहि बनबासू। देहु, लेहु सब सवति हुलासू[6]॥
भूपति राम सपथ जब करई। तब मागेह जेहिं[7] बचनु न टरई॥
होइ अकाजु आजु निसि बीते। बचनु मोर प्रिय मानेहु जी तें॥"
दो०—बड कुघातु करि पातकिनि कहेसि,"कोपगृहँ[8] जाहु।
काजु सँवारेहु सजग सबु, सहसा जनि पतिआहु॥ २२॥"

कुबरिहि रानि प्रानप्रिय जानी। बार-बार बडि बुद्धि बखानी॥
'तोहि सम हित न मोर संसारा। बहे जात कइ भइसि अधारा[1]॥
जौं बिधि पुरब मनोरथु काली। करौं तोहि चख पूतरि[2] आली॥"

---

२१ १ बिता दूँगी, २ ऐसे जीवन से मर जाना कहीं अधिक अच्छा है, ३ त्रियाचरित्र, ४ मन में ग्लानि मान कर ५ वह परिणाम में यह फल भोगेगा, ६ न दिन में भूख, न रात में नींद ७ गुणियों को या ज्योतिषियों को ८ तुव, तुम्हारे।

२२ १ मंथरा ने कैकेयी को कबुली (बलि का जीव) बना कर, २ कपट की छुरी को हृदय के पत्थर पर तेज किया ३ परिणाम या फल की दृष्टि से कठोर, ४ विष, ५ मुझ से ६ उल्लास, प्रसन्नता ७ जिससे, ८ कोप भवन।

२३ १ आधार, सहारा २ आँख की पुतली।

बहुबिधि चेरिहि आदरु देई । कोपभवन गवनी कैकेई ॥
बिपति बीजु, बरषा रितु चेरी । भुइँ भइ कुमति कैकई केरी[3] ॥
पाइ कपट-जलु अंकुर जामा । बर[4] दोउ दल, दुख फल परिनामा ॥
कोप समाजु साजि[5] सबु सोई । राजु करत, निज कुमति बिगोई[6] ॥
राउर-नगर कोलाहलु होई । यह कुचालि कछु जान न कोई ॥
दो०—प्रमुदित पुर-नर नारि सब सजहिं सुमंगलचार[7] ।
एक प्रविसहिं एक निर्ममहिं,[8] भीर भूप-दरबार ॥ २३ ॥
बाल-सखा सुनि हियँ हरषाहीं । मिलि दस-पाँच राम पहिं जाहीं ॥
प्रभु आदरहिं प्रेमु पहिचानी । पूँछहिं कुसल-खेम मृदु बानी ॥
फिरहिं भवन प्रिय आयसु पाई । करत परसपर राम-बड़ाई ॥
अस अभिलाषु नगर सब काहू । कैकयसुता हृदयँ अति दाहू ॥
को न कुसंगति पाइ नसाई । रहइ न नीच मतें[1] चतुराई[2] ॥

(३८) दशरथ-कैकेयी संवाद

दो०—साँझ समय सानंद नृप गयउ कैकई गेहँ ।
गवनु निठुरता-निकट किय जनु धरि देह सनेहँ[3] ॥ २४ ॥
कोपभवन सुनि सकुचेउ[1] राऊ । भय बस अगहुड़[2] परइ न पाऊ ॥
सुरपति[3] बसइ बाहँबल जाकें । नरपति सकल रहहिं रुख ताकें ॥
सो सुनि तिय रिस गयउ सुखाई । देखहु काम-प्रताप-बड़ाई ॥
सूल कुलिस असि अँगवनिहारे[4] । ते रतिनाथ सुमन-सर मारे[5] ॥
सभय नरेसु प्रिया पहिं गयऊ । देखि दसा दुखु दारुन भयऊ ॥
भूमि सयन, पटु[6] मोट पुराना । दिए डारि तन-भूषन नाना ॥

---

२३ ३ कैकेयी की कुमति उसकी भूमि बन गयी ४ वरदान, ५ कोप का पूरा साज सज कर ६ राज्य करते हुए भी उसने कुबुद्धि से अपना विनाश कर लिया, ७ मांगलिक कार्य, ८ बाहर जाते हैं ।

२४ १ नीच बुद्धि वाले के विवेक ३ मानो निष्ठुरता के समीप, शरीर धारण कर, स्वयं स्नेह गया हो ।

२५ १ सकपका गये, २ आगे की ओर, ३ इन्द्र, ४ जो (राजा दशरथ) शूल, वज्र और तलवार को अपने शरीर पर झेलते थे, ५ उन्हें रति के पति (कामदेव) ने फूलों के तीर से घायल कर दिया, ६ वस्त्र ।

कुमतिहि कसि कुवेषता फाबी[७]। अनअहिवातु सूच जनु भावी[८]॥
जाइ निकट नृपु कह मृदु बानी। "प्रानप्रिया! केहि हेतु रिसानी॥
छं०—केहि हेतु रानि! रिसानि," परसत पानि पतिहि नेवारई।
मानहुँ सरोष भुअग भामिनि[९] बिषम भाँति[१०] निहारई॥
दोउ बासना रसना[११] दसन बर[१२], मरम-ठाहरु[१३] देखई।
तुलसी नृपति भवतब्यता-बस[१४] काम-कौतुक लेखई[१५]॥

सो०—बार-बार कह राउ, "सुमुखि! सुलोचनि! पिकबचनि!
कारन मोहि सुनाउ गजगामिनि! निज कोप कर॥ २५॥

अनहित तोर प्रिया! केइँ कीन्हा। केहि दुइ सिर[१], केहि जमु चह लीन्हा[२]॥
कहु केहि रंकहि करौं नरेसू। कहु केहि नृपहि निकासौं देसू[३]॥
सकउँ तोर अरि अमरउ[४] मारी। काह कीट बपुरे नर नारी॥
जानसि मोर सुभाउ बरोरू[५]! मनु तव आनन-चंद-चकोरू[६]॥
प्रिया! प्रान, सुत, सरबसु मोरें। परिजन, प्रजा, सकल बस तोरें॥
जौं कछु कहौं कपटु करि तोही। भामिनि! राम-सपथ सत[७] मोही॥
बिहँसि मागु मनभावति बाता[८]। भूषन सजहि मनोहर गाता॥
घरी-कुघरी[९] समुझि जियँ देखू। बेगि प्रिया! परिहरहि कुबेषू॥"

दो०—यह सुनि मन गुनि सपथ बडि बिहँसि उठी मतिमंद।
भूषन सजति, बिलोकि मृगु मनहुँ किरातिनि फंद[१०]॥ २६॥

पुनि कह राउ सुहृद जियँ जानी। प्रेम पुलकि मृदु-मंजुल बानी॥
"भामिनि! भयउ तोर मनभावा[१]। घर-घर नगर अनंद-बधावा॥

---

२५ ७ उस कुबुद्धि (कैकेयी) को अशुभ वेष कैसा फब रहा है, ८ मानों भावी विधवापन की सूचना मिल रही हो ९ सर्पिणी, १० क्रूरता से, ११ (उसकी) दो इच्छाएँ ही (उस सर्पिणी की) दो जिह्वाएँ हैं, १२ वरदान ही उसके दाँत हैं, १३ मर्म-स्थान, १४ होनहार के वश में होने के कारण, १५ (कैकेयी के व्यवहार को) काम की क्रीडा समझ रहे हैं।

२६ १ किसके दो सिर हो आये हैं? २ किसे यमराज ले लेना चाहता है? ३ देश से निकाल दूँ, ४ अमर (देवता) को भी, ५ हे सुन्दर नितम्बों (ऊरुओं) वाली! ६ मेरा मन तुम्हारे मुख (आनन)-रूपी चन्द्रमा का चकोर है, ७ शत, सौ, ८ मनचाही बात, ९ समय कुसमय १० मानो भीलनी फंदा सजा रही हो।

२७ १ मन को भाने वाली बात।

रामहि देउँ कालि जुबराजू। सजहि सुलोचनि ! मगल-साजू ॥"
दलकि उठेउ सुनि हृदउ कठोरू। जनु छुइ गयउ पाक बरतोरू[२] ॥
ऐसिउ पीर बिहसि तेहिं गोई[३]। चोर-नारि जिमि प्रगटि न रोई ॥
लखहिं न भूप कपट - चतुराई। कोटि - कुटिल मनिगुरु[४] पढाई ॥
जद्यपि नीति - निपुन नरनाहू। नारिचरित - जलनिधि अवगाहू ॥
कपट - सनेहु बढाई बहोरी। बोली बिहसि नयन-मुहु मोरी[५] ॥
दो०—"मागु मागु पै कहहु पिय ! कबहुँ न देहु, न लेहु।
देन कहेहु बरदान दुइ, तेउ पावत सदेहु ॥२७॥"

"जानेउँ मरमु", राउ हँसि कहई। 'तुम्हहि कोहाब[१]परम प्रिय अहई ॥
थाती राखि, न मागिहु काऊ। बिसरि गयउ मोहि भोर सुभाऊ ॥
झूठेहुँ हमहि दोषु जनि देहू। दुइ कै चारि मागि मकु[२] लेहू ॥
रघुकुल - रीति सदा चलि आई। प्रान जाहुँ बरु, बचनु न जाई ॥
नहिं असत्य सम पातक-पुंजा। गिरि सम होहिं कि कोटिक गुंजा[३] ॥
सत्यमूल सब सुकृत सुहाए। बेद-पुरान-बिदित, मनु गाए[४] ॥
तेहि पर राम-सपथ करि आई। सुकृत सनेह-अवधि[५] रघुराई ॥"
बात दृढाइ, कुमति हँसि बोली। कुमत कुबिहग कुलह जनु खोली[६] ॥
दो०—भूप - मनोरथ सुभग बनु सुख सुबिहग - समाजु[७]।
भिल्लिनि जिमि छाडन चहति बचनु भयकरु बाजु[८] ॥२८॥

"सुनहु प्रानप्रिय ! भावत जी का। देहु एक वर भरतहि टीका ॥
मागउँ दूसर वर कर जोरी। पुरवहु नाथ ! मनोरथ मोरी ॥
तापस बेष, बिसेषि उदासी[१]। चौदह बरिस रामु बनबासी ॥"
सुनि मृदु बचन भूप हियँ सोकू। ससि कर छुअत बिकल जिमि कोकू[२] ॥

---

२७ २ पका हुआ बनतोड, ३ छिपा लिया, ४ मथरा, ५ आंख और मुंह मोड कर।

२८ १ मान, रूठना, २ भले ही, ३ करोडो घुंघचियां, ४ मनु ने भी गाया है, ५ पुण्य और प्रेम की सीमा, ६ मानो कुबुद्धि रूपी बाज ने अपनी कुलही (आंख पर लगी टोपी) खोल ली हो, ७ सुख ही सुन्दर पक्षियो के समूह हैं ८ वचन रूपी भयकर बाज।

२९ १ विशेष रूप से उदासीन (राज्य, परिवार आदि के प्रति पूर्णत विरक्त), २ कोकू = कोक (चकवा)।

गयउ सहमि, नहिं कछु कहि आवा। जनु सचान बन झपटेउ लावा[3] ॥
बिबरन भयउ[4] निपट नरपालू। दामिनि हनेउ मनहुँ तरु तालू[5] ॥
माथें हाथ, मूदि दोउ लोचन। तनु धरि सोचु लाग जनु सोचन ॥
मोर मनोरथु सुरतरु - फूला। फरत करिनि[6] जिमि हतेउ समूला ॥
अवध उजारि कीन्हि कैकेई। दीन्हिसि अचल बिपति कै नेई[7] ॥
दो०—कवनें अवसर का भयउ, गयउँ नारि - बिस्वास।
जोग-सिद्धि-फल-समय जिमि जतिहि अबिद्या नास[8] ॥ २९ ॥

एहि बिधि राउ मनहिं मन झाँखा[1]। देखि कुभाँति, कुमति मन माखा[2]॥
"भरतु कि राउर पूत न होही। आनेहु मोल बेसाहि[3] कि मोही ॥
जो सुनि सरु-अस[4] लाग तुम्हारें। काहे न बोलहु बचनु सँभारें ॥
देहु उतरु, अनु करु[5] कि नाहीं। सत्यसंध[6] तुम्ह रघुकुल माहीं ॥
देन कहेहु, अब जनि बरु देहू। तजहु सत्य, जग अपजसु लेहू ॥
सत्य सराहि[7] कहेहु बरु देना। जानेहु लेइहि मागि चबेना ॥
सिबि, दधीचि 'बलि'[8]जो कछु भाषा। तनु धनु तजेउ बचन-पनु[9] राखा॥"
अति कटु बचन कहति कैकेई। मानहुँ लोन जरे पर देई ॥

दो०—धरम - धुरंधर[10] धीर धरि नयन उघारे रायँ।
सिरु धुनि लीन्हि उसास असि, 'मारेसि मोहि कुठायँ[11] ॥३०॥"

आगें दीखि जरत रिस भारी। मनहुँ रोष - तरवारि[1] उघारि ॥
मूठि कुबुद्धि, धार निठुराई[2]। धरी कूबरी सान बनाई ॥
लखी महीप कराल कठोरा। सत्य कि जीवनु लेइहि मोरा ॥

---

२९ ३ मानों बाज (सचान) जगल में लवा (बटेर) पर झपटा हो, ४ विवर्ण हो गये, चेहरे का रग उड गया, ५ मानों बिजली ने ताड के वृक्ष को मारा हो, ६ हथिनी, ७ नींव, ८ अविद्या यती (योगी) का नाश कर देती है।

३० १ झाँख रहे हैं, २ कुमति वाली कैकेयी मन मे बहुत क्रुद्ध हुई, ३ खरीद ले आये हैं, ४ तीर की तरह, ५ हाँ कीजिए ६ सत्यप्रतिज्ञ, ७ सत्य की सराहनाकर ८ *राजा शिवि *दधीचि ऋषि और राजा *बलि, ९ वचन का प्रण, १० धर्म की धुरी धरने वाले, धर्म के रक्षक ११ मुझे बहुत बुरी जगह मारा है (ऐसी परिस्थिति मे डाला है कि निकलना सम्भव नहीं है)।

३१ १ क्रोध रूपी तलवार, २ (कुबुद्धि उस तलवार की) मूठ है, निष्ठुरता उसकी धार है।

बोले राउ कठिन करि छाती। बानी सविनय, तासु सोहाती[3] ॥
"प्रिया! बचन कस कहसि कुभाँती। भीरु[4] प्रतीति-प्रीति करि हाँती[5] ॥
मोरें भरतु - रामु दुइ आँखी। सत्य कहउँ करि संकरु साखी ॥
अवसि[6] दूतु मैं पठइब प्राता। ऐहहिं बेगि सुनत दोउ भ्राता ॥
सुदिन सोधि सबु साजु सजाई। देउँ भरत कहुँ राजु बजाई[7] ॥
दो०—लोभु न रामहि राजु कर, बहुत भरत पर प्रीति।
मैं बड़-छोट बिचारि जियँ करत रहेउँ नृपनीति[8] ॥३१॥

राम-सपथ सत, कहउँ सुभाऊ। राममातु कछु कहेउ न काऊ[1] ॥
मैं सबु कीन्ह तोहि बिनु पूँछें। तेहि तें परेउ मनोरथु छूछें[2] ॥
रिस परिहरु अब, मंगल साजू। कछु दिन गएँ भरत जुबराजू ॥
एकहि बात मोहि दुखु लागा। बर दूसर असमंजस[3] मागा ॥
अजहूँ[4] हृदय जरत तेहि आँचा। रिस, परिहास, कि साँचेहुँ साँचा[5] ॥
कहु तजि रोषु राम-अपराधू। सबु कोउ कहइ, रामु सुठि साधू ॥
तुहूँ सराहसि, करसि सनेहू। अब सुनि मोहि भयउ संदेहू ॥
जासु सुभाउ अरिहि अनुकूला। सो किमि करिहि मातु-प्रतिकूला ॥
दो०—प्रिया! हास-रिस परिहरहि मागु बिचारि बिबेकु।
जेहिं देखौं अब नयन भरि भरत-राज-अभिषेकु ॥३२॥

जिऐ मीन बरु बारि बिहीना। मनि बिनु फनिकु[1] जिऐ दुख दीना ॥
कहउँ सुभाउ, न छलु मन माहीं। जीवनु मोर राम बिनु नाहीं ॥
समुझि देखु जियँ प्रिया! प्रबीना। जीवनु राम-दरस-आधीना[2] ॥"
सुनि मृदु बचन कुमति अति जरई। मनहुँ अनल आहुति घृत परई ॥
कहइ, "करहु किन कोटि उपाया। इहाँ न लागिहि राउरि माया ॥
देहु कि लेहु अजसु करि नाहीं। मोहि न बहुत प्रपंच सोहाहीं ॥
रामु साधु, तुम्ह साधु-सयाने। राममातु भलि, सब पहिचाने ॥

---

३१. ३ उसको सुहाने या प्रिय लगने वाली, ४ हे भीरु ! ५ नष्ट कर, ६ अवश्य, ७ डंका बजा कर, ८ राजनीति।

३२. १ कभी, २ खाली, ३ असंगत, ४ अब तक, ५ क्रोध है या हँसी या वास्तव मे सत्य।

३३. १ सर्प; २ मेरा जीवन राम के दर्शन के अधीन है (राम की अनुपस्थिति मे मेरा जीवित रहना असम्भव है)।

जस कौसिलाँ मोर भल ताका। तस फलु उन्हहि देउँ करि साका[3]॥
दो०— होत प्रातु मुनिवेष धरि जौं न रामु बन जाहिं।
मोर मरनु, राउर अजस, नृप[1] समुझिअ मन माहिं॥ ३३॥"

अस कहि कुटिल भई उठि ठाढ़ी। मानहुँ रोष-तरंगिनि[1] बाढ़ी॥
पाप-पहार[2] प्रगट भइ सोई। भरी क्रोध-जल जाइ न जोई[3]।
दोउ वर कूल, कठिन हठ धारा। भवँर कूबरी-बचन-प्रचारा[4]॥
ढाहत भूपरूप-तरु-मूला[5]। चली बिपति बारिधि-अनुकूला[6]॥
लखी नरेस बात फुरि साँची। तिय मिस[7] मीचु सीस पर नाची॥
गहि पद विनय कीन्ह बैठारी। "जनि दिनकर कुल होसि कुठारी॥
मागु माथ, अबहीं देउँ तोही। राम-बिरहँ जनि मारसि मोही॥
राखु राम कहुँ जेहि तेहि भाँती। नाहिं त जरिहि जनम भरि छाती।"
दो०— देखी ब्याधि असाध[8] नृपु, परेउ धरनि धुनि माथ।
कहत परम आरत बचन "राम! राम! रघुनाथ!"॥ ३४॥

ब्याकुल राउ, सिथिल सब गाता। करिनि कलपतरु मनहुँ निपाता[1]॥
कंठु सूख, मुख आव न बानी। जनु पाठीनु[2] दीन बिनु पानी॥
पुनि कह कटु कठोर कैकेई। मनहुँ घाय[3] महुँ माहुर[4] देई॥
"जौं अंतहु अस करतबु रहेऊ। मागु-मागु तुम्ह केहिं बल कहेऊ॥
दुइ कि होइ एक समय भुआला। हँसब ठठाइ, फुलाउब गाला॥
दानि कहाउब अरु कृपनाई। होइ कि खेम कुसल रौताई[5]॥
छाड़हु बचनु, कि धीरजु धरहू। जनि अबला जिमि करुना करहू॥
तनु, तिय, तनय, धामु, धनु, धरनी। सत्यसंध कहुँ तृन-सम बरनी[6]॥"
दो०— मरम बचन सुनि राउ कह, "कहु कछु दोषु न तोर।
लागेउ तोहि पिसाच-जिमि कालु कहावत मोर॥ ३५॥

---

३३ ३ प्रसिद्ध कर (बराबर याद रखने योग्य)।

३४ १ क्रोध की नदी, २ पाप के पहाड़ से, ३ वह क्रोध के जल से इस तरह भरी हुई है कि उसे देखने में भी डर लगता है, ४ कुँवरी (मंथरा) के वचनों की प्रेरणा, ५ राजा दशरथ-रूपी वृक्ष को जड़ सहित, ६ विपत्ति रूपी समुद्र की दिशा में, ७ स्त्री (कैकेयी) के बहाने, ८ (कैकेयी रूपी) असाध्य रोग।

३५ १ ढाह दिया हो, २ पहिना मछली, ३ घाव, ४ विष, ५ राजपूत की आन, रजपूती, ६ कहा गया है।

चहत न भरत भूपतहि[1] भोरें । बिधि बस कुमति बसी जिय तोरें ॥
सो सबु मोर पाप-परिनामू । भयउ कुठाहर[2] जेहिं बिधि बामू ॥
सुबस बसिहि[3] फिरि अवध सुहाई। सब गुन धाम राम प्रभुताई ॥
करिहहिं भाइ सकल सेवकाई । होइहि तिहुँ पुर राम-बडाई ॥
तोर कलकु, मोर पछिताऊ । मुएहुँ न मिटिहि, न जाइहि काऊ ॥
अब तोहि नीक लाग, करु सोई । लोचन ओट बैठु मुहु गोई[4] ॥
जब लगि जिऔं, कहउँ कर जोरी । तब लगि जनि कछु कहसि बहोरी॥
फिरि पछितैहसि अत अभागी ! मारसि गाइ नहारू-लागी[5] ॥"

दो०—परेउ राउ कहि कोटि बिधि "काहे करसि निदानु[6] ।"
कपट-सयानि[7] न कहति कछु, जागति मनहुँ मसानु[8] ॥ ३६ ॥

राम-राम रट बिकल भुआलू । जनु बिनु पख बिहग बेहालू ॥
हृदयँ मनाव, भोरु जनि होई । रामहि जाइ कहै जनि कोई॥
उदउ करहु जनि रबि रघुकुल-गुर । अवध बिलोकि सूल होइहि उर ॥
भूप प्रीति, कैंकइ-कठिनाई[1] । उभय अवधि[2] बिधि रची बनाई ॥

(३८) निर्वासन की आज्ञा

बिलपत नृपहि भयउ भिनुसारा । बीना बेनु[3] सख-धुनि द्वारा ॥
पढ़हिं भाट, गुन गावहिं गायक । सुनत नृपहि जनु लागहि सायक[4] ॥
मगल सकल सोहाहिं न कैसें । सहगामिनिहि[5] बिभूषन जैसें ॥
तेहिं निसि नीद परी नहिं काहू । राम-दरस-लालसा-उछाहू ॥

दो०—द्वार भीर, सेवक-सचिव कहहिं उदित रबि देखि ।
"जागेउ अजहुँ न अवधपति, कारनु कवनु बिसेषि ॥ ३७ ॥

पछिले पहर भूपु नित जागा । आजु हमहि बड अचरजु लागा ॥
जाहु सुमत्र ! जगावहु जाई कीजिअ काजु रजायसु पाई ॥"

---

३६ १ राजपद २ गलत समय मे, ३ अच्छी तरह बसेगा, ४ मुँह छिपा कर, ५ तुम तांत के लिए गाय मार रही हो, अर्थात व्यर्थ का काम कर रही हो, पाठान्तर नाहरू लागी (नाहर या सिंह के लिए), ६ क्यो विनाश (निदान) करने पर तुली हुई हो ? ७ कपट करने मे चतुर, ८ मानो वह मसान जगा रही हो।

३७ १ कैकेयी की कठोरता, २ दोनो ओर, ३ वीणा और बाँसुरी ४ तीर, ५ सती स्त्री को।

गए सुमंत्रु तब राउर माहीं[1]। देखि भयावन जात डेराहीं ॥
धाइ खाइ जनु,[2] जाइ न हेरा। मानहुँ बिपति-बिषाद-बसेरा ॥
पूछें कोउ न ऊतरु देई। गए जेहिं भवन भूप-कैकेई ॥
कहि 'जय जीव!' बैठ सिरु नाई। देखि भूप गति[3] गयउ सुखाई ॥
सोच-बिकल, बिबरन, महि परेऊ। मानहुँ कमल मूलु परिहरेऊ[4] ॥
सचिउ सभीत, सकइ नहिं पूँछी। बोली असुभ-भरी सुभ-छूछी[5] ॥
दो० —"परी न राजहि नीद निसि, हेतु जान जगदीसु।
राम राम रटि भोरु किय, कहइ न मरमु[6] महीसु ॥ ३८ ॥

आनहु रामहि बेगि बोलाई। समाचार तब पूँछेहु आई ॥"
चलेउ सुमंत्रु राय रुख जानी। लखी, कुचालि कीन्हि कछु रानी ॥
सोच-बिकल मग परइ न पाऊ। रामहि बोलि कहिहि का राऊ ॥
उर धरि धीरजु, गयउ दुआरें। पूँछहिं सकल देखि मनु मारें ॥
समाधानु करि[1] सो सबही का। गयउ जहाँ दिनकर-कुल-टीका[2] ॥
राम सुमंत्रहि आवत देखा। आदरु कीन्ह पिता सम लेखा ॥
निरखि बदनु, कहि भूप रजाई[3]। रघुकुलदीपहि[4] चलेउ लेवाई ॥
रामु कुभाँति[5] सचिव सँग जाहीं। देखि लोग जहँ-तहँ बिलखाहीं ॥
दो० —जाइ दीख रघुबंसमनि नरपति निपट कुसाजु[6]।
सहमि परेउ लखि सिंघिनिहि मनहुँ बृद्ध गजराजु ॥ ३९ ॥
सूखहिं अधर, जरइ सबु अंगू। मनहुँ दीन मनिहीन भुअंगू ॥
सरुष[1] समीप दीखि कैकेई। मानहुँ मीचु घरी गनि लेई[2] ॥
करुनामय मृदु राम-सुभाऊ। प्रथम दीख दुखु, सुना न काऊ[3] ॥
तदपि धीर धरि, समउ बिचारी। पूँछी मधुर बचन महतारी ॥

---

३८ १ राजा के भवन में, २ मानो दौड़ कर खा जायगा, ३ राजा की अवस्था, ४ मानो कमल अपनी जड़ से ही छूट कर पड़ा हो, ५ शुभ-रहित, अमंगल, ६ भेद, कारण।

३९ १ समझा बुझा कर २ सूर्यवंश के तिलक राम, ३ राजा का आदेश, ४ रघुवंश के दीपक राम को ५ बेढंगे रूप में (उचित साज सज्जा के बिना), ६ बुरी दशा।

४० १ रोषयुक्त, क्रुद्ध, २ मानों स्वयं मृत्यु (राजा के जीवन की) घड़ियाँ गिन रही हो, ३ (राम ने) पहली बार दुःख देखा, उन्होंने इससे पहले कभी (दुःख) सुना भी नहीं था।

मोहि कहु मातु ! तात दुख-कारन। करिअ जतन जेहि होई निवारन ॥
'सुनहु राम ! सबु कारनु एहू। राजहि तुम्ह पर बहुत सनेहू ॥
देन कहेन्हि मोहि दुइ बरदाना। मागेउँ जो कछु मोहि सोहाना ॥
सो सुनि भयउ भूप-उर सोचू। छाड़ि न सकहिं तुम्हार सँकोचू ॥
दो०—सुत-सनेहु इत बचनु उत, सकट परेउ नरेसु।
सकहु त आयसु धरहु सिर मेटहु कठिन कलेसु ॥ ४० ॥"

निधरक बैठि कहइ कटु बानी। सुनत कठिनता अति अकुलानी ॥
जीभ कमान, बचन सर नाना। मनहुँ महिप मृदु लच्छ-समाना[1]॥
जनु कठोरपनु धरे सरीरू। सिखइ धनुषबिद्या बर बीरू[2] ॥
सबु प्रसगु रघुपतिहि सुनाई। बैठि मनहुँ तनु धरि निठुराई ॥
मन मुसुकाइ भानुकुल-भानू। रामु सहज आनद-निधानू ॥
बोले बचन, बिगत सब दूषन[3]। मृदु मजुल, जनु बाग-बिभूषन[4] ॥
"सुनु जननी ! सोइ सुतु बड़भागी। जो पितु-मातु बचन अनुरागी ॥
तनय मातु-पितु-तोषनिहारा।[5] दुर्लभ जननि ! सकल ससारा ॥
दो०—मुनिगन-मिलनु बिसेषि बन, सबहि भाँति हित मोर।
तेहि महँ पितु आयसु, बहुरि समत[6] जननी ! तोर ॥ ४१ ॥

भरतु प्रानप्रिय पावहिं राजू। बिधि सब बिधि मोहि सनमुख आजू[1]॥
जौं न जाउँ बन ऐसेहु काजा। प्रथम गनिअ मोहि मूढ़ समाजा[2]॥
सेवहिं अरँडु[3] कलपतरु त्यागी। परिहरि अमृत लेहिं बिषु मागी ॥
तेउ न पाइ अस समउ चुकाहीं[4]। देखु बिचारि मातु ! मन माहीं ॥
अब ! एक दुख मोहि बिसेषी। निपट बिकल नरनायकु देखी ॥
थोरिहि बात पितहि दुख भारी। होति प्रतीति न मोहि महतारी ॥
राउ धीर, गुन-उदधि अगाधू। भा मोहि तें कछु बड़ अपराधू ॥
जातें मोहि न कहत कछु राऊ। मोरि सपथ तोहि, कहु सतिभाऊ[5]॥"

---

४१ १ लक्ष्य के समान, २ श्रेष्ठ वीर ३ सभी प्रकार के दोषों से मुक्त, पूर्णत निर्दोष, ४ वाक् विभूषण वाणी को भी विभूषित करने वाला, ५ माता और पिता को सतुष्ट करने वाला, ६ सम्मति।

४२ १ आज विधाता सभी प्रकार से मेरे सम्मुख (अनुकूल) हैं, २ मूर्खों की मण्डली, ३ रेंड वृक्ष, ४ अवसर हाथ से जाने देते हैं, ५ सत्यभाव से, सच-सच।

दो०—सहज सरल रघुबर-बचन कुमति कुटिल करि जान।
चलइ जोंक जल बक्रगति, जद्यपि सलिलु समान[1]॥ ४२॥

रहसी रानि राम-रुख पाई। बोली कपट-सनेहु जनाई॥
"सपथ तुम्हार, भरत कै आना[1]। हेतु न दूसर मैं कछु जाना॥
तुम्ह अपराध-जोगु नहिं ताता। जननी-जनक-बंधु-सुखदाता॥
राम! सत्य सबु जो कछु कहहू। तुम्ह पितु-मातु-बचन-रत रहहू॥
पितहि बुझाइ कहहु बलि[2] सोई। चौथेंपन जेहिं अजसु न होई॥
तुम्ह सम सुअन सुकृत जेहिं दीन्हे। उचित न तासु निरादरु कीन्हे॥"
लागहिं कुमुख बचन सुभ कैसे। मगहँ गयादिक तीरथ जैसे॥
रामहि मातु-बचन सब भाए। जिमि सुरसरि गत सलिल सुहाए[3]॥

दो०—गइ मुरुछा, रामहि सुमिरि नृप फिरि करवट लीन्ह।
सचिव राम आगमन कहि, बिनय समय-सम कीन्ह॥ ४३॥

अवनिप, अकनि[1] रामु पगु धारे। धरि धीरजु तब नयन उघारे॥
सचिवँ सँभारि राउ बैठारे। चरन परत नृप रामु निहारे॥
लिए सनेह-बिकल उर लाई। गै मनि[2] मनहुँ फनिक फिरि पाई॥
रामहि चितइ रहेउ नरनाहू। चला बिलोचन बारि-प्रबाहू॥
सोक बिबस कछु कहै न पारा। हृदयँ लगावत बारहिं बारा॥
बिधिहि मनाव राउ मन माहीं। जेहिं रघुनाथ न कानन जाहीं॥
सुमिरि महेसहि कहइ निहोरी। "बिनती सुनहु सदासिव! मोरी॥
आसुतोष तुम्ह, अवढर-दानी[3]। आरति हरहु दीन जनु जानी॥

दो०—तुम्ह प्रेरक सब के हृदयँ, सो मति रामहि देहु।
बचनु मोर तजि, रहहिं घर परिहरि सीलु-सनेहु॥ ४४॥

---

४२ १ जैसे जोंक पानी में टेढ़े-टेढ़े चलती है, यद्यपि पानी समान ही होता है।

४३. १ अन्य (आना) सौगंध भरत की (खाती हूँ), २ तुम्हारी बलिहारी जाती हूँ, ३ जैसे गंगा नदी में गिर कर (हर तरह का) पानी सुन्दर या पवित्र हो जाता है।

४४. १ सुन कर, २ खोयी हुई मणि को, ३ उदार, मनचाहा दान देने वाले।

अजसु होउ जग, सुजसु नसाऊ। नरक परौ बरु सुरपुरु जाऊ॥
सब दुख दुसह सहावहु मोही। लोचन-ओट रामु जनि होंही॥"
अस मन गुनइ, राउ नहिं बोला। पीपर-पात सरिस मनु डोला॥
रघुपति पितहि प्रेमबस जानी। पुनि कछु कहिहि मातु, अनुमानी॥
देस-काल-अवसर-अनुसारी। बोले बचन बिनीत, बिचारी॥
"तात! कहउँ कछु, करउँ ढिठाई। अनुचितु छमब जानि लरिकाई॥
अति लघु बात लागि दुखु पावा। काहुँ न मोहि कहि प्रथम जनावा॥
देखि गोसाइँहि[1] पूँछिउँ माता। सुनि प्रसगु भए सीतल गाता[2]॥

दो०—मगल समय सनेह-बस सोच परिहरिअ तात।
आयसु देइअ हरषि हियँ," कहि पुलके प्रभु गात॥ ४५॥

"धन्य जनमु जगतीतल[1] तासू। पितहि प्रमोदु चरित सुनि जासू[2]॥
चारि पदारथ[3] करतल ताकें। प्रिय पितु-मातु प्रान-सम जाकें॥
आयसु पालि जनम-फलु पाई। ऐहउं बेगिहि, होउ रजाई[4]॥
बिदा मातु सन आवउँ मागी। चलिहउँ बनहि बहुरि पग लागी[5]॥"
अस कहि राम गवनु तब कीन्हा। भूप सोक-बस उतरु न दीन्हा॥
नगर ब्यापि गइ बात सुतीछी[6]। छुअत चढी जनु सब तन बीछी[7]॥
सुनि भए बिकल सकल नर-नारी। वेलि-विटप जिमि देखि दवारी[8]॥
जो जहँ सुनइ, धुनइ सिरु सोई। बड बिषादु नहिं धीरजु होई॥

दो०—मुख सुखाहिं, लोचन स्रवहिं[9], सोकु न हृदयँ समाइ।
मनहुँ करुन-रस-कटकई उतरी अवध बजाइ[10]॥ ४६॥

मिलेहि माझ बिधि बात बेगारी[1]। जहँ-तहँ देहि कैकइहि गारी॥

---

४५ १ आपको (दुखी) देख कर, २ उस (दुख) का प्रसग जान कर मेरा शरीर शीतल हो गया।

४६ १ ससार (में), २ जिसका चरित्र सुन कर पिता को आनन्द होता है, ३ चार पदार्थ (*धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष*) ४ आज्ञा दें, ५ फिर (*इसके बाद*) आपके पाँव लग कर वन जाऊँगा, ६ बडी तेजी से, ७ बिच्छू का विष, ८ जैसे दावाग्नि देख कर लता और वृक्ष व्याकुल हो जाते हैं, ९ आँखो से आँसू बहते हैं, १० मानो करुण रस की सेना डका बजा कर अयोध्या पर उतर आयी हो।

४७ १ सभी अच्छे मेलो (सयोगो) के बीच ही विधाता ने बात बिगाड़ दी।

"एहि पापिनिहि बूझि का परेऊ। छाइ भवन पर[२] पावकु धरेऊ॥
निज कर नयन काढ़ि चह दीखा। डारि[३] सुधा, बिषु चाहत चीखा॥
कुटिल, कठोर कुबुद्धि, अभागी। भइ रघुबंस - बेनु-बन-आगी[४]॥
पालव बैठि[५] पेड़ु एहि काटा। सुख महुँ सोक ठाटु धरि ठाटा॥
सदा रामु एहि प्रान - समाना। कारन कवन कुटिलपनु ठाना॥
सत्य कहहिं कबि नारि सुभाऊ। सब बिधि अगहु[६], अगाध, दुराऊ[७]॥
निज प्रतिबिंबु बरुकु[८] गहि जाई। जानि न जाइ नारि-गति भाई॥
दो०—काह न पावकु जारि सक, का न समुद्र समाइ।
का न करै अबला प्रबल[९], केहि जग कालु न खाइ॥ ४७॥"

(४०) राम-कौशल्या-संवाद

(छन्द संख्या ४८ से ५३/४ कैकेयी के प्रति नगरवासियों का क्षोभ, विप्रवधुओं और परिवार की महिलाओं द्वारा कैकेयी को यह समझाने का निष्फल प्रयत्न कि भरत को राजपद मिले, किन्तु राम वन के बदले गुरु के घर में रहें, कैकेयी के भवन से राम का कौशल्या के पास गमन, माता की उत्फुल्लता और अभिषेक के मुहूर्त्त के सम्बन्ध में जिज्ञासा।)

धरम धुरीन धरम गति[१] जानी। कहेउ मातु सन अति मृदु बानी॥
"पिताँ दीन्ह मोहि कानन राजू[२]। जहँ सब भाँति मोर बड़ काजू[३]॥
आयसु देहि मुदित-मन माता। जेहिं मुद मंगल[४] कानन जाता॥
जनि सनेह बस डरपसि भोरें[५]। आनँदु अंब अनुग्रह तोरें॥
दो०— बरष चारिदस बिपिन बसि, करि पितु बचन प्रमान।
आइ पाय पुनि देखिहउँ, मनु जनि करसि मलान[६]॥ ५३॥

---

४७ २ छवाये हुए घर पर ३ छोड कर ४ वह रघुवंश के बाँस-वन के लिए आग हो गयी ५ पल्लव (पत्ते) पर बैठ कर ६ अग्राह्य, पकड में नहीं आने योग्य, ७ रहस्यमय ८ भले ही, ९ अबला (बलहीना, कमजोर) कही जाने वाली स्त्री (जाति) क्या नहीं कर सकती ?

५३ १ धर्म की मर्यादा २ वन का राज्य, ३ बड़ा काम या हित है ४ आनन्द और मंगल, ५ भूल से भी, ६ म्लान दुःखी।

बचन बिनीत-मधुर रघुबर के। सर-सम लगे मातु-उर करके[1] ॥
सहमि सूखि सुनि सीतलि बानी। जिमि जवास[2] परें पावस-पानी[3]॥
कहि न जाइ कछु, हृदय बिषादू। मनहुँ मृगी सुनि केहरि नादू[4] ॥
नयन सजल, तन थर-थर काँपी। माजहि खाइ मीन जनु मापी[5] ॥
धरि धीरजु, सुत-बदनु निहारी। गदगद बचन कहति महतारी ॥
"तात! पितहि तुम्ह प्रानपिआरे। देखि मुदित नित चरित तुम्हारे ॥
राजु देन कहुँ सुभ दिन साधा। कहेउ जान बन केहिं अपराधा ॥
तात! सुनावहु मोहि निदानू[6]। को दिनकर-कुल भयउ कृसानू ॥"

दो०— निरखि राम-रुख सचिवसुत[7] कारनु कहेउ बुझाइ।
सुनि प्रसगु रहि मूक-जिमि, दसा बरनि नहिं जाइ ॥ ५४ ॥

राखि न सकइ, न कहि सक जाहू। दुहूँ भाँति उर दारुन दाहू[1] ॥
लिखत सुधाकर, गा लिखि राहू[2]। बिधि-गति बाम सदा सब काहू ॥
धरम सनेह उभयँ मति घेरी। भइ गति साँप-छुछुदरि केरी[3] ॥
राखउँ सुतहि, करउँ अनुरोधू। धरमु जाइ अरु बधु-बिरोधू ॥
कहउँ जान बन, तौ बडि हानी। सकट सोच-बिबस भइ रानी ॥
बहुरि समुझि तिय-धरमु सयानी। रामु-भरतु दोउ सुत सम जानी ॥
सरल सुभाउ राम-महतारी। बोली बचन धीर धरि भारी ॥
"तात! जाउँ बलि, कीन्हेहु नीका। पितु-आयसु सब धरमक टीका ॥

दो०— राजु देन कहि दीन्ह बनु, मोहि न सो दुख-लेसु।
तुम्ह बिनु भरतहि, भूपतिहि, प्रजहि प्रचड कलेसु ॥ ५५ ॥

जौं केवल पितु-आयसु ताता! तौ जनि जाहु जानि बडि माता ॥
जौ पितु-मातु कहेउ बन जाना। तौ कानन, सत अवध समाना ॥

---

५४ १ कसकने लगे २ जवासा ३ वर्षा का पानी, ४ सिंह का गर्जन, ५ जैसे माँजा (पहली वर्षा का फेन) खा कर मछली छटपटाने लगी हो, ६ कारण, ७ मंत्री का पुत्र।

५५ १ कठिन दुःख, २ सुधाकर (चन्द्रमा) का चित्र बनाते समय राहु का चित्र बन गया, लिख रहे थे चन्द्रमा, लेकिन लिख गया राहु ३ उनकी स्थिति साँप-छछूँदर की सी (अर्थात् विकट असमंजस की) हो गयी।

पितु वनदेव, मातु वनदेवी। खग मृग चरन-सरोरुह-सेवी[1] ॥
अंतहुँ उचित नृपहि वनवासू। वय विलोकि,[2] हिय होइ हराँसू[3]॥
बड़भागी वनु, अवध अभागी। जो[4] रघुवंसतिलक तुम्ह त्यागी ॥
जौं सुत! कहौं, संग मोहि लेहू। तुम्हरे हृदयँ होइ संदेहू ॥
पूत! परम प्रिय तुम्ह सबही के। प्रान प्रान के, जीवन जी के[5] ॥
ते तुम्ह कहहु, मातु! बन जाऊँ। मैं सुनि वचन बैठि पछिताऊँ ॥

दो०— यह विचारि नहिं करउँ हठ, झूठ सनेहु बढ़ाइ।
मानि मातु कर नात[6] वलि[7] सुरति[8] विसरि जनि जाइ॥ ५६ ॥

देव पितर सब तुम्हहि गोसाईं। राखहुँ[1] पलक-नयन की नाईं ॥
अवधि अंबु,[2] प्रिय परिजन मीना[3]। तुम्ह करुनाकर धरम-धुरीना ॥
अस विचारि सोइ करहु उपाई। सबहि जिअत जेहिं भेंटहु आई ॥
जाहु सुखेन[4] वनहि, बलि जाऊँ। करि अनाथ जन, परिजन, गाऊँ ॥
सब कर आजु सुकृत-फल बीता। भयउ कराल कालु विपरीता ॥"
बहुविधि विलपि, चरन लपटानी। परम अभागिनि आपुहि जानी ॥
दारुन दुसह दाहु उर व्यापा। वरनि न जाहिं विलाप कलापा[5] ॥
राम उठाइ मातु उर लाई। कहि मृदु वचन बहुरि समुझाई ॥

(४१) कौशल्या का निवेदन

दो०— समाचार तेहि समय सुनि, सीय उठी अकुलाइ।
जाइ सासु पद-कमल जुग[6] वंदि, बैठि सिरु नाइ ॥ ५७ ॥

दीन्हि असीस सासु मृदु बानी। अति सुकुमारि देखि, अकुलानी ॥
बैठि नमितमुख[1] सोचति सीता। रूप-रासि, पति प्रेम पुनीता ॥

---

५६ १ पक्षी और पशु तुम्हारे चरण कमलों के सेवक होंगे, २ (तुम्हारी सुकुमार) अवस्था देख कर ३ हृदय में दुःख होता है ४ जिसको, ५ हृदय के जीवन ६ नाता ७ तुम्हारी बलैया लेती हूँ ८ स्मृति याद।

५७ १ रक्षा करें २ चौदह वर्षों की अवधि जल (अंबु) है ३ प्रियजन और सम्बंधी लोग मछलियों के समान हैं ४ सुख से प्रसन्नता से, ५ विलाप कलाप, बहुत रोना धोना ६ जुग (युग = दो)।

५८ १ मुख नीचा किये हुए।

चलन चहत बन जीवननाथू। केहि सुकृती सन[2] होइहि साथू॥
की तनु प्रान कि केवल प्राना। बिधि-करतबु कछु जाइ न जाना॥
चारु चरन-नख लेखति धरनी। नूपुर मुखर मधुर, कबि बरनी[3]॥
मनहुँ प्रेम-बस बिनती करहीं। हमहि सीय-पद जनि परिहरहीं॥
मंजु बिलोचन मोचति बारी। बोली देखि राम-महतारी॥
"तात[1] सुनहु सिय अति सुकुमारी। सास, ससुर, परिजनहि पिआरी॥
दो०— पिता जनक भूपाल मनि, ससुर भानुकुल भानु।
पति रबिकुल-कैरव-बिपिन बिधु[4], गुन-रूप-निधानु॥ ५८॥

मैं पुनि पुत्रबधू प्रिय पाई। रूप रासि, गुन-सील-सुहाई॥
नयन-पुतरि करि[1] प्रीति बढ़ाई। राखेउँ प्रान जानकिहि लाइ[2]॥
*कलपबेलि-जिमि बहुबिधि लाली[3]। सींचि सनेह-सलिल प्रतिपाली॥
फूलत-फलत भयउ बिधि बामा। जानि न जाइ काह परिनामा॥
पलँग-पीठ तजि गोद हिंडोरा[4]। सियँ न दीन्ह पगु अवनि कठोरा॥
जिअनमूरि[5] जिमि जोगवत रहऊँ। दीप-बाति नहिं टारन कहऊँ[6]॥
सोइ सिय चलन चहति बन साथा। आयसु काह होइ रघुनाथा॥
चंद-किरन-रस-रसिक चकोरी[7]। रबि-रुख नयन सकइ किमि जोरी॥
दो० करि, केहरि, निसिचर चरहिं[8], दुष्ट जंतु बन भूरि।
बिष-बाटिकाँ कि सोह सुत! सुभग सजीवनि-मूरि॥ ५९॥
बन-हित कोल-किरात किसोरी। रचीं बिरंचि, बिषय-सुख-भोरी[1]॥
पाहन कृमि जिमि[2] कठिन सुभाऊ। तिन्हहि कलेसु न कानन काऊ॥
कै[3] तापस-तिय कानन-जोगू। जिन्ह तप-हेतु तजा सब भोगू॥
सिय बन बसिहि तात! केहि भाँती। चित्रलिखित कपि[4] देखि डेराती॥

---

५८ २ सन = से, ३ कवि इसका वर्णन इस प्रकार करते हैं, ४ तुम्हारे पति सूर्यवंश-रूपी कुमुद-वन को विकसित करने वाले चन्द्रमा हैं।

५९ १ आँखों की पुतली बना कर, २ जानकी में ही अपने प्राण लगा रखे हैं, ३ लालित कर लाड़-प्यार कर ४ पलंगपीठ (पलंग का आसन), गोद और हिंडोला छोड़ कर, ५ सजीवनी जड़ी, ६ मैं उसे (सीता को) दीपक की बत्ती तक टालने को नहीं कहती अर्थात् बहुत साधारण काम करने को भी नहीं कहती, ७ चन्द्रमा की किरणों का रस लेने वाली चकोरी, ८ विचरण करते हैं।

६० १ विषय-सुख से अनभिज्ञ, २ पत्थर के कीड़े जैसा, ३ या तो, ४ चित्र का बन्दर।

सुरसर सुभग-बनज-बन-चारी[५] । डाबर-जोगु कि हंसकुमारी[६] ॥
अस बिचारि जस आयसु होई । मैं सिख देउँ जानकिहि सोई ॥
जौं सिय भवन रहै कह अंबा । मोहि कहँ होइ बहुत अवलंबा ॥ ६० ॥"

(४२) सीता का आग्रह

[छन्द संख्या ६० (शेषांश) से ६४/४ राम द्वारा सीता को अयोध्या मे ही रहने के लिए समझाने का प्रयत्न, और सीता की विह्वलता ।]

लागि सासु पग, कह कर जोरी । "छमबि देवि ! बड़ि अविनय मोरी ॥
दीन्हि प्रानपति मोहि सिख सोई । जेहि बिधि मोर परम हित होई ॥
मैं पुनि समुझि दीखि मन माहीं । पिय-बियोग-सम दुखु जग नाहीं ॥
दो०— प्राननाथ ! करुनायतन, सुंदर, सुखद, सुजान ।
तुम्ह बिनु रघुकुल-कुमुद-बिधु ! सुरपुर[१] नरक-समान ॥ ६४ ॥
मातु, पिता, भगिनी, प्रिय भाई । प्रिय परिवारु, सुहृद समुदाई[१] ॥
सासु, ससुर, गुर, सजन, सहाई[२] । सुत सुंदर, सुसील सुखदाई ॥
जहँ लगि नाथ ! नेह अरु नाते । पिय बिनु तियहि[३] तरनिहु ते ताते[४] ॥
तनु, धनु धामु, धरनि, पुर राजू । पति-बिहीन सबु सोक-समाजू[५] ॥
भोग रोगसम, भूषण भारू । जम जातना-सरिस[६] संसारू ॥
प्राननाथ ! तुम्ह बिनु जग माहीं । मो कहुँ सुखद कतहुँ कछु नाहीं ॥
जिय बिनु देह, नदी बिनु बारी । तैसिअ नाथ ! पुरुष बिनु नारी ॥
नाथ ! सकल सुख साथ तुम्हारें । सरद-बिमल बिधु-बदनु निहारें ॥
दो० — खग-मृग परिजन, नगरु बनु, बलकल[७] बिमल दुकूल[८] ।
नाथ साथ सुरसदन[९] सम, परनसाल[१०] सुख-मूल ॥ ६५ ॥

---

६० ५ मानसरोवर के सुन्दर कमलो के वन मे विचरण करने वाली, ६ हंसिनी क्या गड्ढी (डाबर) मे रहने योग्य है ?

६४ १ स्वर्ग ।

६५ १ मित्र समुदाय २ स्वजन (सजन) और सहायक (सहाई), ३ स्त्री के लिए, ४ सूर्य से भी अधिक ताप या कष्ट देने वाले ५ दुःख के समूह ६ 'यम की यातना या नरक की पीडा के समान ७ वल्कल, पेड की छाल, ८ निर्मल वस्त्र, ९ स्वर्ग, १० पर्णकुटी, पत्तो से बनी हुई कुटी ।

वनदेवी - वनदेव उदारा। करिहहिं सासु-ससुर-सम सारा॥
कुस-किसलय-साथरी[1] सुहाई। प्रभु-सँग मंजु मनोज-तुराई[2]॥
कंद, मूल, फल अमिअ-अहारू[3]। अवध-सौध सत सरिस[4] पहारू॥
छिनु-छिनु प्रभु-पद-कमल विलोकी। रहिहउँ मुदित दिवस जिमि कोकी॥
बन-दुख नाथ! कहे बहुतेरे। भय, विषाद, परिताप घनेरे॥
प्रभु - वियोग - लवलेस - समाना। सब मिलि होहिं न कृपानिधाना॥
अस जियँ जानि सुजान-सिरोमनि। लेइअ संग, मोहि छाड़िअ जनि॥
विनती बहुत करौं का स्वामी। करुनामय उर - अंतरजामी॥

दो०— राखिअ अवध जो अवधि लगि[5] रहत न जनिअहिं प्रान।
दीनबंधु! सुंदर सुखद सील - सनेह - निधान॥ ६६॥

मोहि मग चलत न होइहि हारी[1]। छिनु-छिनु चरन-सरोज निहारी॥
सबहि भाँति पिय-सेवा करिहौं। मारग-जनित[2] सकल श्रम हरिहौं॥
पाय पखारि बैठि तरु छाहीं। करिहउँ बाउ मुदित मन माहीं॥
श्रम-कन[3]-सहित स्याम तनु देखें। कहँ दुख-समउ[4] प्रानपति पेखें॥
सम महि[5] तृन-तरुपल्लव डासी[6]। पाय पलोटिहि सब निसि दासी॥
बार-बार मृदु मूरति जोही[7]। लागिहि तात[1] बयारि न मोही॥
को प्रभु सँग मोहि चितवनिहारा[8]। सिंघबधुहि जिमि ससक सिआरा[9]॥
मैं सुकुमारि, नाथ बन-जोगू। तुम्हहि उचित तप, मो कहुँ भोगू॥

दो०— ऐसेउ बचन कठोर सुनि जौं न हृदउ बिलगान[10]।
तौ प्रभु-विषम-वियोग-दुख सहिहहिं पावँर प्रान[11]॥ ६७॥"

अस कहि सीय विकल भइ भारी। वचन-वियोगु[1] न सकी सँभारी॥
देखि दसा रघुपति जियँ जाना। हठि राखें, नहिं राखिहि प्राना॥

---

६६ १ कुश और पत्तों का बिछावन २ कामदेव की तोशक, ३ अमृत-भोजन, ४ (वन के) पहाड़ अयोध्या के सैकड़ों महलों के समान होंगे, ५ (चौदह वर्षों की) अवधि तक।

६७ १ थकावट २ रास्ता चलने से उत्पन्न ३ पसीने की बूँद, ४ दुख का अवसर ५ समतल भूमि, ६ तिनकों और पेड़ के पत्तों को बिछा कर ७ देख कर, ८ आँख उठा कर देखने वाला ९ खरहे और सियार १० फट नहीं गया, ११ पामर (पापी) प्राण।

६८. १ वियोग का वचन।

कहेउ कृपाल भानुकुलनाथा। "परिहरि सोचु, चलहु बन साथा॥
नहिं विषाद कर अवसरु आजू। बेगि करहु बन-गवन-समाजू[२]॥ ६८॥"

(४३) राम-लक्ष्मण-संवाद

[छन्द-संख्या ६८ (शेषांश) से ७०/६ : राम और सीता को कौशल्या की आशिष, वनवास-सम्बन्धी समाचार मिलते ही लक्ष्मण का राम के पास आगमन।]

बोले बचनु राम नय-नागर[१]। सील-सनेह-सरल-सुख-सागर॥
"तात! प्रेम-बस जनि कदराहू[२]। समुझि हृदयँ परिनाम उछाहू॥
दो०— मातु-पिता-गुरु-स्वामि-सिख सिर धरि करहिं सुभायँ।
लहेउ लाभु तिन्ह जनम कर, नतरु[३] जनमु जग जायँ॥ ७०॥

अस जियँ जानि, सुनहु सिख भाई! करहु मातु-पितु-पद-सेवकाई॥
भवन भरतु-रिपुसूदनु नाहीं। राउ वृद्ध, मम दुखु मन माहीं॥
मैं बन जाउँ तुम्हहि लेइ साथा। होइ सबहि बिधि अवध अनाथा॥
गुरु, पितु, मातु, प्रजा, परिवारू। सब कहुँ परइ दुसह दुख भारू॥
रहहु, करहु सब कर परितोषू। नतरु तात! होइहि बड दोषू॥
जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृपु अवसि नरक-अधिकारी॥
रहहु तात! असि नीति बिचारी।" सुनत लखनु भए ब्याकुल भारी॥
सिअरें बचन[१] सूखि गए कैसें। परसत तुहिन[२] तामरसु[३] जैसें॥
दो०— उतरु न आवत, प्रेम बस गहे चरन अकुलाइ।
"नाथ! दासु मैं स्वामि तुम्ह, तजहु त काह बसाइ[४]॥ ७१॥

दीन्हि मोहि सिख नीकि गोसाईं। लागि अगम[१] अपनी कदराईं॥
नरबर धीर, धरम-धुर-धारी। निगम नीति कहुँ[२] ते[३] अधिकारी॥
मैं सिसु प्रभु-सनेहँ प्रतिपाला। मंदरु-मेरु कि लेहिं मराला[४]॥

६८. २ वन जाने की तैयारी।

७०. १ नीति निपुण २ कातर (अधीर) मत हो ३ नहीं तो।

७१. १ शीतल वाणी से, २ पाला, ३ कमल, ४ मेरा वश क्या है, मैं क्या कर सकता हूँ।

७२. १ सामर्थ्य से बाहर, २ के, ३ वे ही, ४ क्या हंस मंदराचल उठा सकता है?

गुर, पितु, मातु न जानउँ काहू। कहउँ सुभाउ, नाथ[५] पतिआहू॥
जहँ लगि जगत सनेह - सगाई। प्रीति-प्रतीति निगम निजु गाई॥
मोरें सबइ एक तुम्ह स्वामी। दीनबंधु उर-अंतरजामी॥
धरम-नीति उपदेसिअ ताही। कीरति, भूति, सुगति[६] प्रिय जाही॥
मन-क्रम-बचन चरन-रत होई। कृपासिंधु[१] परिहरिअ कि सोई॥"

दो०— करुनासिंधु सुबंधु के सुनि मृदु बचन बिनीत।
समुझाए उर लाइ प्रभु, जानि सनेहँ-सभीत[७]॥ ७२॥

"मागहु बिदा मातु सन जाई। आवहु बेगि, चलहु बन भाई॥"
मुदित भए सुनि रघुबर-बानी। भयउ लाभ बड़, गइ बड़ि हानी॥
हरषित हृदयँ मातु पहिं आए। मनहुँ अंध फिरि लोचन पाए॥ ७३॥

(४४) सुमित्रा की आशिष

(राम के बनगमन की बात सुन कर सुमित्रा का पश्चात्ताप और लक्ष्मण को भाई के साथ बन जाने की अनुमति।)

"तात! तुम्हारि मातु बैदेही। पिता रामु सब भाँति सनेही॥
अवध तहाँ, जहँ राम निवासू। तहँइँ दिवसु, जहँ भानु-प्रकासू॥
जौं पै सीय - रामु बन जाहीं। अवध तुम्हार काजु कछु नाहीं॥
गुर, पितु, मातु, बंधु, सुर, साईं[१]। सेइअहिं सकल प्रान की नाईं॥
रामु प्रानप्रिय, जीवन जी के। स्वारथ-रहित सखा सबही के॥
पूजनीय, प्रिय परम जहाँ तें। सब मानिअहिं राम के नातें॥
अस जियँ जानि संग बन जाहू। लेहु तात! जग-जीवन लाहू[२]॥

दो०— भूरि भाग-भाजनु[३] भयहु मोहि समेत, बलि जाउँ।
जौं तुम्हरें मन छाड़ि छलु कीन्ह राम-पद ठाउँ[४]॥ ७४॥

पुत्रवती जुबती जग सोई। रघुपति-भगतु जासु सुतु होई॥
नतरु बाँझ भलि बादि बिआनी[१]। राम बिमुख सुत तें हित जानी॥
तुम्हरेहिं भाग रामु बन जाहीं। दूसर हेतु तात! कछु नाहीं॥

---

७२ ५ विश्वास कीजिए ६ मुक्ति ७ स्नेह से विह्वल।

७४ १ स्वामी, २ संसार में जीवित रहने का लाभ, ३ अत्यन्त भाग्यशाली, ४ राम के चरणों में स्थान पाया है।

७५ १ उसके लिए पुत्र को जन्म देना व्यर्थ है।

सकल सुकृत कर बड़ फलु एहू। राम-सीय पद सहज सनेहू ॥
रागु, रोषु, इरिषा, मदु, मोहू। जनि सपनेहुँ इन्ह के बस होहू ॥
सकल प्रकार बिकार बिहाई। मन क्रम बचन करेहु सेवकाई ॥
तुम्ह कहुँ बन सब भाँति सुपासू[2]। सँग पितु मातु रामु-सिय जासू ॥
जेहिं[3] न रामु बन लहहिं कलेसू। सुत[1] सोइ करेहु, इहइ उपदेसू ॥

छं० — उपदेसु यहु जेहिं तात ! तुम्हरे राम सिय सुख पावहीं।
पितु, मातु प्रिय परिवार पुर-सुख सुरति बन बिसरावहीं ॥"
तुलसी प्रभुहि सिख देइ आयसु दीन्ह, पुनि आसिष दई।
"रति होउ अबिरल-अमल[4] सिय रघुबीर-पद नित-नित नई ॥ ७५ ॥"

(४५) लक्ष्मण-गुह संवाद

(दोहा सं० ७५ से छन्द सं० ८९/३ मुनिवेश धारण कर राम की पहले दशरथ, फिर वसिष्ठ से विदाई तथा अयोध्या से सीता और लक्ष्मण के साथ प्रस्थान, दशरथ के अनुरोध पर सुमन्त्र का निर्वासितों को रथ पर बिठा कर प्रस्थान विह्वल अयोध्यावासियों द्वारा राम का अनुगमन, राम का पहले दिन तमसा के तट पर निवास, प्रजाजनों के हठ से बचने के लिए राम की सीता और लक्ष्मण के साथ दो पहर रात के बाद ही रथ में यात्रा शृंगवेरपुर आगमन और निषादराज द्वारा स्वागत।)

तब निषादपति[1] उर अनुमाना। तरु सिंसुपा[2] मनोहर जाना।
लै रघुनाथहि ठाउँ देखावा। कहेउ राम, सब भाँति सुहावा ॥"
पुरजन करि जोहारु[3] घर आए। रघुबर संध्या करन सिधाए ॥
गुहँ सँवारि साँथरी डसाई[4]। कुस किसलयमय मृदुल सुहाई ॥
सुचि फल मूल मधुर मृदु जानी। दोना भरि भरि राखेसि पानी ॥

दो० — सिय सुमंत्र भ्राता सहित कंद-मूल फल खाइ।
सयन कीन्ह रघुबंसमनि, पाय पलोटत भाइ ॥ ८९ ॥

---

७५ २ सुख, ३ जिससे ४ निरन्तर और पवित्र।

८९ १-निषादों के राजा गुह (ने), २ शीशम (शिंशपा) का पेड, ३ प्रणाम, ४ बिछायी।

उठे लखनु, प्रभु सोवत जानी। कहि सचिवहि सोवन[1] मृदु बानी ॥
कछुक दूरि सजि बान-सरासन[2]। जागन लगे बैठि बीरासन[3] ॥
गुहँ बोलाइ पाहरू[4] प्रतीती[5]। ठावँ ठावँ राखे अति प्रीती ॥
आपु लखन पहिं बैठेउ जाई। कटि भाथी, सर-चाप चढ़ाई ॥
सोवत प्रभुहि निहारि निषादू। भयउ प्रेम बस हृदयँ बिषादू ॥
तनु पुलकित, जलु लोचन बहई। बचन सप्रेम लखन सन कहई ॥
"भूपति-भवन सुभाय सुहावा। *सुरपति सदनु न पटतर[6] पावा ॥
मनिमय रचित चारु चौबारे[7]। जनु *रतिपति निज हाथ सँवारे ॥

दो० सुचि, सुबिचित्र, सुभोगमय,[8] सुमन सुगंध सुबास[9]।
पलँग मंजु, मनिदीप जहँ, सब बिधि सकल सुपास[10] ॥ ९० ॥

बिबिध बसन, उपधान[1], तुराईं। छीर-फेन मृदु[2] बिसद, सुहाईं ॥
तहँ सिय-रामु सयन निसि करहीं। निज छबि रति-मनोज मदु हरहीं ॥
ते सिय-रामु साथरी सोए। श्रमित,बसन बिनु, जाहिं न जोए ॥
मातु, पिता, परिजन, पुरबासी। सखा, सुसील दास अरु दासी ॥
जोगवहिं[3] जिन्हहि प्रान की नाईं। महि सोवत तेइ राम गोसाईं ॥
पिता जनक जग बिदित प्रभाऊ। ससुर *सुरेस-सखा रघुराऊ ॥
रामचंदु पति, सो बैदेही। सोवत महि, बिधि बाम न केही ॥
सिय-रघुबीर कि कानन-जोगू। करम प्रधान[4], सत्य कह लोगू ॥

दो० — कैकयनंदिनि मंदमति कठिन कुटिलपनु कीन्ह।
जेहिं रघुनंदन-जानकिहि सुख अवसर दुखु दीन्ह ॥ ९१ ॥

भइ दिनकर कुल बिटप कुठारी[1]। कुमति कीन्ह सब बिस्व दुखारी ॥"
भयउ बिषादु निषादहि भारी। राम सीय महि सयन निहारी ॥
बोले लखन मधुर मृदु बानी। ग्यान बिराग-भगति-रस सानी ॥

---

९० १ सोने के लिए २ बाण और धनुष ३ वीरासन (एक प्रकार का आसन), ४ पहरेदार ५ विश्वासी ६ बराबरी ७ छत के ऊपर के ऐसे कमरे, जिनमें चार दरवाजे हों, ८ सुन्दर भोग पदार्थों से परिपूर्ण, ९ फूलों की सुगंध से सुवासित, १० सुख, आराम।

९१ १ तकिया २ दूध के फेन के समान कोमल, ३ सेवा करते हैं, ४ कर्म या भाग्य ही शक्तिशाली होता है।

९२ १ सूर्यवंश रूपी वृक्ष के लिए कुल्हाड़ी।

"काहु न कोउ सुख-दुख कर दाता। निज कृत करम-भोग सबु भ्राता[२]॥
जोग, बियोग, भोग भल मंदा। हित, अनहित, मध्यम[३] भ्रम-फंदा[४]॥
जनमु, मरनु, जहँ लगि जग जालू। संपति, बिपति, करमु अरु कालू॥
धरनि, धामु, धनु, पुर, परिवारू। सरगु, नरकु, जहँ लगि ब्यवहारू॥
देखिअ, सुनिअ, गुनिअ मन माहीं। मोह मूल[५], परमारथु नाहीं॥

दो०— *सपनें होइ भिखारि नृपु, रंकु नाकपति[६] होइ।*
जागें लाभु न हानि कछु तिमि प्रपंच जियँ जोइ[७]॥ ९२॥

अस बिचारि नहिं कीजिअ रोसू। काहुहि बादि[१] न देइअ दोसू॥
मोह-निसाँ सबु सोवनिहारा[२]। देखिअ सपन अनेक प्रकारा।
एहिं जग-जामिनि[३] जागहिं जोगी। परमारथी प्रपंच-बियोगी[४]॥
जानिअ तबहिं जीव जग जागा। जब सब बिषय-बिलास-बिरागा॥
होइ बिबेकु, मोह-भ्रम भागा। तब रघुनाथ-चरन अनुरागा॥
सखा! परम परमारथु एहू। मन-क्रम-बचन राम-पद नेहू॥
राम ब्रह्म, परमारथ-रूपा। अबिगत,[५] अलख, अनादि,अनूपा॥
सकल बिकार-रहित, गतभेदा[६]। कहि नित नेति निरूपहिं[७] बेदा।

दो०—*भगत, भूमि, भूसुर, सुरभि,[८] सुर हित लागि कृपाल।*
करत चरित धरि मनुज-तनु, सुनत मिटहिं जग-जाल॥ ९३॥

सखा! समुझि अस, परिहरि मोहू। सिय-रघुबीर-चरन-रत होहू॥९४॥"

(४६) सुमन्त्र की विह्वलता

[छन्द-संख्या ९४ (शेषांश) से ९९।३ सुमंत्र द्वारा पहले राम से और अन्त में सीता से दशरथ का सन्देश कह कर अयोध्या लौटने का आग्रह।]

---

९२ २ हे भाई! सब लोग अपने किये कर्मों का ही फल भोगते हैं, ३ उदासीन, ४ भ्रम के फन्दे हैं, ५ इसका मूल मोह या अज्ञान है, ६ स्वर्ग का राजा, इन्द्र, ७ वैसा ही इस प्रपंच (संसार) को अपने मन में समझना चाहिए।

९३ १ व्यर्थ, २ संसार के सभी लोग मोह (अज्ञान) की रात्रि में सोने वाले हैं (अर्थात सोते हैं) ३ संसार-रूपी रात्रि (में), ४ प्रपंच (जगत्) से मुक्त, ५ वह, जिसे नहीं जाना जा सकता, ६ सभी प्रकार के भेदों से परे, ७ निरूपण करते हैं, ८ गौ।

नयन सूझ नहिं, सुनइ न काना। कहि न सकइ कछु, अति अकुलाना॥
राम प्रबोधु कीन्ह बहु भाँती। तदपि होति नहिं सीतलि छाती॥
जतन अनेक साथ हित कीन्हे। उचित उतर रघुनंदन दीन्हे॥
मेटि जाइ नहिं राम-रजाई[1]। कठिन करम-गति, कछु न बसाई[2]॥
राम-लखन सिय-पद सिर नाई। फिरेउ बनिक जिमि मूर गवाँई[3]॥
दो०— रथु हाँकेउ, हय[4] राम-तन[5] हेरि हेरि हिहिनाहिं।
देखि निषाद बिषादबस धुनहिं सीस, पछिताहिं॥ ९९॥
जासु बियोग बिकल पसु ऐसे। प्रजा, मातु, पितु जिइहहिं कैसे॥
बरबस राम सुमंत्रु पठाए। सुरसरि-तीर आपु तब आए॥

(४७) केवट की भक्ति

मागी नाव, न केवटु आना। कहइ, "तुम्हार मरमु[1] मैं जाना॥
चरन-कमल-रज कहुँ सबु कहई। मानुष-करनि मूरि कछु अहई[2]॥
छुअत सिला भइ नारि सुहाई। पाहन तें न काठ कठिनाई॥
तरनिउ[3] मुनि घरिनी होइ जाई। बाट परइ,[4] मोरि नाव उड़ाई॥
एहिं प्रतिपालउँ सबु परिवारू। नहिं जानउँ कछु अउर कबारू[5]॥
जौं प्रभु ! पार अवसि गा चहहू। मोहि पद पदुम पखारन कहहू॥
छं०—पद कमल धोइ चढ़ाइ नाव न नाथ ! उतराई[6] चहौं।
मोहि राम ! राउरि आन[7] दसरथ सपथ, सब साची कहौं॥
बरु तीर मारहुँ लखनु पै जब लगि न पाय पखारिहौं॥
तब लगि न तुलसीदास-नाथ कृपाल ! पारु उतारिहौं॥"
सो०— सुनि केवट के बैन प्रेम लपेटे, अटपटे।
बिहसे करुनाऐन[8], चितइ जानकी लखन-तन॥१००॥
कृपासिंधु बोले मुसकाई। 'सोइ करु जेहिं तव नाव न जाई॥
बेगि आनु जल, पाय पखारू। होत बिलंबु, उतारहि पारू॥"

---

९९ १ राम की आज्ञा, २ कुछ भी वश नहीं चलता, ३ मूल (पूंजी) गंवा कर, ४ घोड़े, ५ राम की ओर।

१०० १ भेद २ उसमें मनुष्य बना देने वाली कोई जड़ी है, ३ नाव भी, ४ मैं लुट जाऊंगा या बरबाद हो जाऊंगा ५ कारबार धंधा, ६ पार उतारने की मजदूरी, ७ शपथ, ८ करुणा के धाम।

जासु नाम सुमिरत एक बारा। उतरहिं नर भवसिंधु अपारा॥
सोइ कृपालु केवटहि निहोरा। जेहि जगु किय तिहु पगहु ते थोरा[१]॥
पद नख निरखि देवसरि हरषी[२]। सुनि प्रभु बचन मोहँ मति करषी[३]॥
केवट राम रजायसु पावा। पानि कठवता भरि लेइ आवा॥
अति आनंद उमगि अनुरागा। चरन सरोज पखारन लागा॥
बरषि सुमन-सुर सकल सिहाहीं[४]। एहि सम पुन्यपुंज कोउ नाहीं॥
दो०—पद पखारि जलु पान करि आपु, सहित परिवार।
पितर पारु करि प्रभुहि पुनि मुदित गयउ लेइ पार॥१०१॥

उतरि ठाढ़ भए सुरसरि-रेता[१]। सीय रामु-गुह लखन-समेता॥
केवट उतरि दंडवत कीन्हा। प्रभुहि सकुच, एहि नहिं कछु दीन्हा॥
पिय हिय की सिय जाननिहारी[२]। मनि मुदरी[३] मन मुदित उतारी॥
कहेउ कृपाल, "लेहि उतराई"। केवट चरन गहे अकुलाई॥
नाथ! आजु मैं काह न पावा। मिटे दोष-दुख-दारिद-दावा[४]।
बहुत काल मैं कीन्हि मजूरी। आजु दीन्ह विधि बनि[५]भलि भूरी॥
अब कछु नाथ! न चाहिअ मोरें। दीनदयाल! अनुग्रह तोरें॥
फिरती बार मोहि जो देबा। सो प्रसादु मैं सिर धरि लेबा॥"
दो०—बहुत कीन्ह प्रभु लखन सियँ, नहिं कछु केवटु लेइ।
बिदा कीन्ह करुनायतन भगति बिमल बरु देइ॥१०२॥

(छन्द संख्या १०३ से ११०/६ सीता द्वारा वनवास के बाद सकुशल अयोध्या वापसी के लिए गंगा से प्रार्थना, गंगा की आशिष, उस दिन राम,सीता और लक्ष्मण का गुह-सहित वृक्ष के नीचे निवास, दूसरे दिन प्रयाग में भरद्वाज से भेंट और ऋषि के आश्रम में रात्रि भर विश्राम, प्रातःकाल भरद्वाज के शिष्यों द्वारा मार्ग-दर्शन, यमुना

---

१०१ १ जिन्होंने (वामनावतार में) सारे जगत् को तीन पग से भी छोटा कर दिया था २ (देवसरि या गंगा नदी की उत्पत्ति विष्णु के चरण-नखों से हुई। अतः विष्णु के अवतार राम के) चरणों के नखों को देखते ही गंगा हर्षित हो गयी, ३ (उसकी) बुद्धि मोह से खिंच गयी (भर गयी), ४ तरसते हैं।

१०२ १ गंगा की रेती, २ जानने वाली ३ मणि जटित अँगूठी ४ दोष, दुःख और दरिद्रता की आग, ५ मजदूरी।

मे स्नान और तीरवासी नर-नारियो का दशरथ-कैकेयी के निर्णय पर पश्चात्ताप।)

(४८) तापस का प्रसंग

तेहि अवसर एक तापसु[1] आवा। तेजपुंज, लघुबयस, सुहावा॥
कवि-अलखित-गति[2], वेषु बिरागी। मन-क्रम-बचन राम-अनुरागी॥

दो०— सजल नयन, तन पुलकि, निज इष्टदेउ पहिचानि।
परेउ दंड-जिमि धरनितल, दसा न जाइ बखानि॥११०॥

राम सप्रेम पुलकि उर लावा। परम रंक जनु पारसु पावा॥
मनहुँ प्रेमु-परमारथु[1] दोऊ। मिलत धरें तन, कह सबु कोऊ॥
बहुरि लखन पायन्ह सोइ लागा। लीन्ह उठाइ उमगि अनुरागा॥
पुनि सिय-चरन धूरि धरि सीसा। जननि, जानि सिसु[2]दीन्हि असीसा॥
कीन्ह निषाद दंडवत तेही। मिलेउ मुदित, लखि राम-सनेही॥
पिअत नयन-पुट रूप-पियूषा[3]। मुदित सुअसनु[4]पाइ जिमि भूखा॥१११॥

(४९) ग्रामवासी नर-नारियाँ

[छन्द-संख्या १११ (शेषांश) से ११५/२ राम द्वारा निषाद की विदाई, राम, सीता और लक्ष्मण की, मार्ग के विभिन्न पुर-ग्रामो से होते हुए, यात्रा, मार्ग के लोगो का प्रेम, गाँव के निकट पहुँचने पर ग्रामवासी नर-नारियो की दर्शन की उत्सुकता और उनका निश्छल स्नेह।]

जानी श्रमित सीय मन माहीं। घरिक[1]बिलंबु[2]कीन्ह बट छाहीं॥
मुदित नारि-नर देखहिं सोभा। रूप अनूप नयन-मनु लोभा॥
एकटक सब सोहहिं चहु ओरा। रामचंद्र मुख चंद-चकोरा॥

---

११० १ तपस्वी (यहाँ *सनत्कुमार), २ कवि के लिए भी उनकी गति (रंग-ढंग) समझ से परे थी।

१११ १ प्रेम और परमार्थ, २ जननी सीता ने (उस तापस को) शिशु समझ कर, ३ रूप का अमृत, ४ सुन्दर भोजन।

११५. १ घडी भर, २ विश्राम।

तरुन-तमाल-बरन[3] तनु सोहा। देखत कोटि *मदन-मनु मोहा॥
दामिनि बरन[4] लखन सुठि नीके। नख-सिख सुभग, भावते जी के[5]॥
मुनिपट, कटिन्ह कसें तूनीरा। सोहहिं कर-कमलनि धनु तीरा॥

दो०— जटा-मुकुट सीसनि सुभग, उर भुज नयन बिसाल।
सरद-परब[6] बिधु-बदन बर लसत[7] स्वेद-कन-जाल[8] ॥११५॥

बरनि न जाइ मनोहर जोरी। सोभा बहुत, थोरि मति मोरी॥
राम - लखन-सिय - सुदरताई। सब चितवहिं चित-मन मति लाई॥
थके नारि-नर प्रेम-पिआसे। मनहुँ मृगी मृग देखि दिआसे[1]॥
सीय-समीप ग्रामतिय[2] जाहीं। पूँछत अति सनेहँ सकुचाहीं॥
बार-बार सब लागहिं पाएँ। कहहिं बचन मृदु सरल सुभाएँ॥
"राजकुमारि! बिनय हम करहीं। तिय-सुभायँ कछु पूँछत डरहीं॥
स्वामिनि! अबिनय[3] छमबि हमारी। बिलगु न मानब[4] जानि गवाँरी॥
राजकुअँर दोउ सहज सलोने। इन्ह तें लही दुति मरकत-सोने[5]॥

दो०— स्यामल-गौर किसोर-बर सुदर, सुषमा-ऐन।
सरद-सर्बरीनाथ[6] मुखु, सरद सरोरुह नैन ॥११६॥

कोटि-*मनोज-लजावनिहारे। सुमुखि! कहहु को आहिं तुम्हारे॥"
सुनि सनेहमय मंजुल बानी। सकुची सिय, मन महुँ मुसुकानी॥
तिन्हहिं बिलोकि, बिलोकति धरनी। दुहुँ सकोच,सकुचति बरबरनी[1]॥
सकुचि सप्रेम बाल-मृग-नयनी। बोली मधुर बचन पिकबयनी॥
"सहज सुभाय, सुभग, तन गोरे। नामु लखनु, लघु देवर मोरे॥"
बहुरि बदनु-बिधु अंचल ढाँकी। पिय तन[2] चितइ, भौंह करि बाँकी॥
खंजन-मंजु[3] तिरीछे नयननि। निज पति कहेउ तिन्हहिं सियँ सयननि[4]॥

---

११५ ३ नये तमाल वृक्ष के वर्ण (रंग) का, ४ बिजली के रंग के, ५ मन को बहुत भाते हैं, ६ शरत की पूर्णिमा, ७ शोभित हो रहा है, ८ पसीने की बूँदों का जाल (समूह)।

११६. १ मृगमरीचिका, २ ग्रामों की स्त्रियाँ, ३ ढिठाई, ४ बुरा नहीं मानेंगी, ५ इन राजकुमारों से ही पन्ने (मरकत) और सोने की चमक (अपने-अपने रंग की आभा) मिली है, ६ शरत् की पूर्णिमा या चन्द्रमा।

११७ १ उत्तम रंग वाली, गोरी, २ प्रियतम (राम) की ओर, ३ खंजन पक्षी के समान सुन्दर, ४ इशारे से।

भई मुदित सब ग्रामवधूटी[५]। रंकन्ह राय-रासि[६] जनु लूटी ॥
दो०— अति सप्रेम सिय-पायँ परि बहुबिधि देहिं असीस।
"सदा सोहागिनि होहु तुम्ह जब लगि महि अहि सीस[७]"॥११७॥

पारबती-सम पतिप्रिय होहू। देबि[१] न हम पर छाड़ब छोहू[१]॥
पुनि-पुनि विनय करिअ कर जोरी। जौं एहि मारग फिरिअ बहोरी ॥
दरसनु देब जानि निज दासी।" लखीं सीयँ सब प्रेम-पिआसी ॥
मधुर बचन कहि-कहि परितोषीं। जनु कुमुदिनीं कौमुदीं पोषीं[२]॥
तबहिं लखन रघुबर रुख जानी। पूँछेउ मगु लोगन्हि मृदु बानी ॥
सुनत नारि-नर भए दुखारी। पुलकित गात, बिलोचन बारी ॥
मिटा मोदु, मन भए मलीने। बिधि निधि दीन्ह लेत जनु छीने[३]॥
समुझि करमगति धीरजु कीन्हा। सोधि[४] सुगम मगु, तिन्ह कहि दीन्हा॥
दो०— लखन-जानकी सहित तब गवनु कीन्ह रघुनाथ।
फेरे सब प्रिय बचन कहि लिए लाइ मन साथ ॥११८॥

फिरत नारि-नर अति पछिताहीं। *दैअहि[१] दोषु देहिं मन माहीं* ॥
सहित बिषाद परसपर कहहीं। "बिधि-करतब उलटे सब अहहीं॥
निपट निरंकुस निठुर, निसंकू। जेहिं ससि कीन्ह सरुज-सकलंकू[२]॥
रूख कलपतरु[३], सागरु खारा। तेहिं पठए बन राजकुमारा ॥
जौं पै इन्हहि दीन्ह बनबासू। कीन्ह बादि बिधि भोग-बिलासू॥
ए बिचरहिं मग बिनु पदत्राना[४]। रचे बादि बिधि बाहन[५] नाना ॥
ए महि परहिं डासि कुस पाता। सुभग सेज कत सृजत बिधाता ॥
तरुबर-बास इन्हहि बिधि दीन्हा। धवल धाम[६] रचि-रचि श्रमु कीन्हा॥

---

११७ ५ ग्राम स्त्रियां ६ राजा का खजाना, ७ जब तक यह पृथ्वी (महि) शेषनाग (अहि) के सिर पर टिकी हुई है।

११८ १ स्नेह २ जैसे चांदनी ने कुमुदिनियों को पोषित कर दिया हो (खिला दिया हो), ३ मानो विधाता दी हुई निधि छीन ले रहा हो, ४ निर्णय कर।

११९ १ दैव को, २ रोगी और कलंकयुक्त, ३ (उसने) कल्पवृक्ष को वृक्ष (बनाया), ४ जूते, ५ सवारी, ६ महल।

वनवास की कथा का उल्लेख और ऋषि से अपने उपयुक्त निवास-स्थान के सम्बन्ध मे जिज्ञासा।]

"सुनहु राम ! अब कहउँ निकेता[1]। जहाँ बसहु सिय-लखन-समेता ॥
जिन्ह के श्रवन समुद्र-समाना। कथा तुम्हारि सुभग सरि[2]नाना ॥
भरहिं निरंतर, होहिं न पूरे। तिन्ह के हिय तुम्ह कहुँ गृह रूरे[3]॥
लोचन चातक जिन्ह करि राखे। रहहिं दरस-जलधर[4]अभिलाषे ॥
निदरहिं[5] सरित, सिंधु, सर भारी। रूप-बिंदु जल होहिं सुखारी ॥
तिन्ह कें हृदय-सदन[6] सुखदायक। बसहु बंधु-सिय-सह[7] रघुनायक ॥
दो०—जसु[8] तुम्हार मानस बिमल, हंसिनि जीहा[9] जासु।
मुकताहल गुन-गन[10] चुनइ, राम ! बसहु हियँ तासु ॥१२८॥
प्रभु-प्रसाद[1] सुचि सुभग सुबासा। सादर जासु लहइ नित नासा ॥
तुम्हहि निवेदित भोजन करहीं। प्रभु-प्रसाद[2] पट-भूषन धरहीं ॥
सीस नवहिं सुर, गुरु, द्विज देखी। प्रीति-सहित करि बिनय बिसेषी ॥
कर नित करहिं राम-पद-पूजा। राम-भरोस हृदयँ नहिं दूजा ॥
चरन[3] राम-तीरथ[4] चलि जाहीं। राम! बसहु तिन्ह के मन माहीं ॥
मंत्रराजु[5] नित जपहिं तुम्हारा। पूजहिं तुम्हहि सहित-परिवारा ॥
तरपन-होम[6] करहिं बिधि नाना। बिप्र जेवाँइ देहिं बहु दाना ॥
तुम्ह तें अधिक गुरहि जियँ जानी। सकल भायँ सेवहिं सनमानी ॥
दो०— सबु करि, मागहिं एक फलु राम-चरन-रति होउ।
तिन्ह कें मन-मंदिर बसहु सिय-रघुनंदन दोउ ॥१२९॥
काम, कोह, मद, मान न मोहा। लोभ न छोभ, न राग, न द्रोहा ॥
जिन्ह कें कपट, दंभ नहिं माया। तिन्ह कें हृदय बसहु रघुराया ॥
सब के प्रिय, सब के हितकारी। दुख-सुख सरिस[1] प्रसंसा-गारी[2]॥

---

१२८. १ स्थान, २ नदी, ३ सुन्दर घर, ४ दर्शन-रूपी बादल, ५ निरादर करते या तुच्छ मानते हैं, ६ हृदय-रूपी भवन, ७ भाई (लक्ष्मण) और सीता के साथ, ८ यश, ९ जीभ, १० गुण-समूहों के मोती।

१२९. १ प्रभु (आप) का प्रसाद, २ प्रभु (आप) के प्रसाद के रूप मे, ३ पैदल, ४ राम के तीर्थ (अयोध्या, चित्रकूट आदि); ५ सभी मंत्रों का राजा (राम-नाम), ६ तर्पण और हवन।

१३०. १ बराबर, समान, २ प्रशंसा और निन्दा।

कहहिं सत्य, प्रिय बचन बिचारी। जागत-सोवत सरन तुम्हारी॥
तुम्हहि छाडि गति दूसरि नाहीं। राम[1] बसहु तिन्ह के मन माहीं॥
जननी-सम जानहिं परनारी। धनु पराव[3] बिष तें बिष भारी॥
जे हरषहिं पर-संपति देखी। दुखित होहिं पर-बिपति बिसेषी॥
जिन्हहि राम! तुम्ह प्रानपिआरे। तिन्हके मन, सुभ सदन तुम्हारे॥
दो०—स्वामि, सखा, पितु, मातु, गुर जिन्ह के सब तुम्ह तात!
मन-मंदिर तिन्ह कें बसहु सीय-सहित दोउ भ्रात॥१३०॥
अवगुन तजि, सब के गुन गहहीं। बिप्र-धेनु-हित संकट सहहीं॥
नीति-निपुन जिन्ह कइ जग लीका[1]। घर तुम्हार तिन्ह कर मनु नीका॥
गुन तुम्हार, समुझइ निज दोसा। जेहि सब भाँति तुम्हार भरोसा॥
राम-भगत प्रिय लागहिं जेही। तेहि उर बसहु सहित-बैदेही॥
जाति, पाँति, धनु, धरमु, बड़ाई। प्रिय परिवार, सदन सुखदाई॥
सब तजि, तुम्हहि रहइ उर लाई। तेहि के हृदयँ रहहु रघुराई॥
सरगु, नरकु, अपबरगु[2] समाना। जहँ-तहँ देख धरें धनु-बाना॥
करम-बचन-मन राउर चेरा[3]। राम! करहु तेहि के उर डेरा॥
दो०—जाहि न चाहिअ कबहुँ कछु, तुम्ह सन सहज सनेहु।
बसहु निरंतर तासु मन, सो राउर निज गेहु"॥१३१॥
ऐहि बिधि मुनिबर भवन देखाए। बचन सप्रेम राम मन भाए॥
कह मुनि, "सुनहु भानुकुलनायक! आश्रम कहउँ समय-सुखदायक॥
चित्रकूट-गिरि करहु निवासू। तहँ तुम्हार सब भाँति सुपासू॥"
दो०—चित्रकूट-महिमा अमित कही महामुनि गाइ।
आइ नहाए सरित बर[1] सिय-समेत दोउ भाइ॥१३२॥

(५१) चित्रकूट

रघुबर कहेउ, "लखन! भल घाटू। करहु कतहुँ अब ठाहर-ठाटू[1]॥"
लखन दीख पय उतर करारा[2]। चहुँ दिसि फिरेउ धनुष-जिमि नारा[3]॥

---

१३०. ३ दूसरे का धन।

१३१ १ जो संसार में लीक (मर्यादा या आदर्श) समझे जाते हों, २ मोक्ष, ३ आपका दास।

१३२ १ मन्दाकिनी नदी।

१३३ १ ठहरने की व्यवस्था, २ पयोष्णी नदी का उत्तर वाला करार (खड़ा तट), ३ धनुष-जैसा नाला।

नदी पनच[४], सर सम दम दाना। सकल कलुप-कलि साउज[५] नाना॥
चित्रकूट जनु अचल अहेरी[६]। चुकइ न घात, मार मुठभेरी[७]॥
अस कहि लखन ठाउँ देखरावा। थलु बिलोकि रघुबर सुखु पावा॥
रमेउ राम मनु, देवन्ह जाना। चले सहित सुर-थपति प्रधाना[८]॥
कोल किरात-वेष सब आए। रचे परन-तृन सदन[९] सुहाए॥
बरनि न जाहि मजु दुइ साला[१०]। एक ललित लघु, एक बिसाला॥
दो०—लखन-जानकी सहित प्रभु राजत रुचिर निकेत।
सोह मदनु मुनि वेष जनु रति रितुराज-समेत[११]॥१३३॥

(५२) वनवासियो का अनुराग

यह सुधि कोल किरातन्ह पाई। हरप जनु नव निधि[१] घर आई॥
कद, मूल, फल भरि भरि दोना। चले रक जनु लूटन सोना॥
तिन्ह महँ जिन्ह देखे दोउ भ्राता। अपर[२] तिन्हहि पूँछहि मगु जाता॥
कहत सुनत रघुबीर-निकाई[३]। आइ सबन्हि देखे रघुराई॥
करहिं जोहारु भेंट धरि आगे। प्रभुहि बिलोकहिं अति अनुरागे॥
चित्र लिखे जनु जहँ-तहँ ठाढे। पुलक सरीर, नयन जल बाढे॥
राम सनेह मगन सब जाने। कहि प्रिय बचन सकल सनमाने॥
प्रभुहि जोहारि बहोरि-बहोरि। बचन बिनीत कहहिं कर जोरी॥
दो०—'अब हम नाथ सनाथ सब भए देखि प्रभु-पाय[४]।
भाग हमारें आगमनु राउर कोसलराय॥१३५॥
धन्य भूमि, बन, पथ, पहारा। जहँ-जहँ नाथ पाउ तुम्ह धारा[१]॥
धन्य बिहग, मृग, काननचारी[२]। सफल जनम भए तुम्हहि निहारी॥
हम सब धन्य सहित-परिवारा। दीख दरसु भरि नयन तुम्हारा॥
कीन्ह बासु, भल ठाउँ बिचारी। इहाँ सकल रितु रहब सुखारी॥
हम सब भाँति करब सेवकाई। करि, केहरि, अहि, बाघ बराई[३]॥

---

१३३ ४ (नाला रूपी धनुष की) प्रत्यचा ५ हिंसक पशु ६ आखेटक, शिकारी, ७ मुठभेड मे (आमने-सामने) मारता है ८ देवताओं के प्रधान स्थपति (भवन निर्माता) विश्वकर्मा ९ पत्तो और तिनको का घर, १० शाला, कुटिया, ११ रति और वसन्त ऋतु के साथ।

१३५ १ नवों निधियाँ २ दूसरे लोग, ३ राम की सुन्दरता, ४ प्रभु के चरण।

१३६ १ आपने चरण रखे, २ वनो मे विचरण करने वाले, ३ बचा कर।

बन बेहड[४] गिरि कंदर[५] खोहा । सब हमार प्रभु[१] पग पग जोहा ।।
तहँ-तहँ तुम्हहि अहेर खेलाउब । सर निरझर जलठाउँ[६] देखाउब ।।
हम सेवक परिवार समेता । नाथ[१] न सकुचब आयसु देता ।।

दो०—बेद बचन, मुनि मन अगम ते प्रभु करुना ऐन ।
बचन किरातन्ह के सुनत जिमि पितु बालक-बैन ।।१३६।।

रामहि केवल प्रेमु पिआरा । जानि लेउ जो जाननिहारा ।।
राम सकल बनचर[१]तब तोषे । कहि मृदु बचन प्रेम परिपोषे ।।
बिदा किए, सिर नाइ सिधाए । प्रभु गुन कहत सुनत घर आए ।।१३७।।

(५३) घोड़ों का विरह

[छन्द-संख्या १३७ (शेषांश) से १४२/७ राम के स्नान के बाद चित्रकूट की शोभा तथा लक्ष्मण द्वारा राम और सीता की सेवा।

राम से विदा ले कर लौटने के बाद निषादराज की रथ पर बैठे सुमन्त्र से भेंट और सचिव की विह्वलता।]

देखि दखिन दिसि हय[१]हिहिनाहीं । जनु बिनु पंख बिहग अकुलाहीं ।।

दो०—नहिं तृन चरहिं न पिअहिं जलु मोचहिं[२] लोचन बारि ।
ब्याकुल भए निषाद सब रघुबर-बाजि[३] निहारि ।।१४२।।

धरि धीरजु तब कहइ निषादू । अब सुमंत्र[१] परिहरहु बिषादू ।।
तुम्ह पंडित परमारथ ग्याता । धरहु धीर लखि बिमुख बिधाता ।।
बिबिधि कथा कहि-कहि मृदु बानी । रथ बैठारेउ बरबस आनी ।।
सोक सिथिल[१] रथु सकइ न हाँकी । रघुबर बिरह पीर उर बाँकी[२] ।।
चरफराहिं मग चलहिं न घोरे । बन मृग मनहुँ आनि[३] रथ जोरे ।।
अढ़ुकि परहिं[४] फिरि हेरहिं पीछें । राम बियोगि बिकल दुख तीछें[५] ।।
जो कह रामु लखनु बैदेही । हिंकरि हिंकरि[६]हित हेरहिं तेही ।।
बाजि बिरह गति कहि किमि[७]जाती । बिनु मनि फनिक बिकल जेहिं भाँती ।।१४३।।

---

१३६ ४ बीहड़ स्थान, ५ गुफा, ६ जलाशय।

१३७ १ वनवासी लोग।

१४२ १ घोड़, २ बहाते हैं, ३ राम के घोड़ों को।

१४३ १ शोक से विह्वल, २ तीव्र ३ ला कर, ४ ठोकर खा कर गिर पड़ते हैं, ५ तीक्ष्ण, ६ हिनहिन हिनहिना कर, ७ कैसे, किस प्रकार।

सुनत भरतु भए विवस-विषादा । जनु सहमेउ करि[4] केहरि-नादा ।
"तात! तात! हा तात!" पुकारी । परे भूमितल व्याकुल भारी ॥
"चलत न देखन पायउँ तोही । तात! न रामहि सौंपेहु मोही ॥"
बहुरि धीर धरि उठे सँभारी । "कहु पितु-मरन-हेतु महतारी! ॥"
सुनि सुत-वचन कहति कैकेई । मरमु पाँछि जनु माहुर देई[5] ॥
आदिहु तें सब आपनि करनी । कुटिल कठोर मुदित मन बरनी ॥

दो०—भरतहि बिसरेउ पितु-मरन सुनत राम बन-गौनु ।
हेतु अपनपउ[6] जानि जियँ थकित[7] रहे धरि मौनु ॥१६०॥

बिकल बिलोकि सुतहि समुझावति । मनहुँ जरे पर लोनु लगावति ॥
"तात! राउ नहिं सोचै जोगू । बिढ़इ[1] सुकृत-जसु कीन्हेउ भोगू ॥
जीवत सकल जनम-फल पाए । अंत अमरपति-सदन[2] सिधाए ॥
अस अनुमानि[3] सोच परिहरहू । सहित समाज राज पुर करहू ॥"
सुनि सुठि सहमेउ राजकुमारू । पाकें छत[4] जनु लाग अँगारू ॥
धीरज धरि, भरि लेहिं उसासा । 'पापिनि! सबहि भाँति कुल नासा ॥
जौं पै कुरुचि[5] रही अति तोही । जनमत काहे न मारे मोही ॥
पेड़ काटि तैं पालउ[6] सींचा । मीन-जिअन निति बारि उलीचा ॥

दो०—हंसबंसु, दसरथु जनकु, राम-लखन-से भाइ ।
जननी! तूँ जननी भई? बिधि सन कछु न बसाइ ॥१६१॥

जबतैं कुमति कुमत जियँ ठयऊ[1] । खंड-खंड होइ हृदउ न गयऊ ॥
बर मागत, मन भइ नहिं पीरा । गरि[2] न जीह, मुहँ परेउ न कीरा ॥
भूपँ प्रतीति तोरि किमि कीन्ही । मरन-काल बिधि मति हरि लीन्ही ॥
बिधिहुँ न नारि-हृदय-गति जानी । सकल कपट-अघ-अवगुन-खानी ॥
सरल, सुसील, धरम-रत राऊ । सो किमि जानै तीय-सुभाऊ ॥
अस को जीव-जंतु जग माहीं । जेहि रघुनाथ प्रानप्रिय नाहीं ॥

---

१६०. ४ हाथी; ५ मानो मर्मस्थान को चीर कर उस पर विष डाल रही हो; ६ अपने को; ७ आश्चर्यचकित ।

१६१ १ बहुत अधिक, २ इन्द्रलोक, स्वर्ग; ३ विचार कर ४ घाव; ५ घृणा, शत्रुता; ६ पल्लव को ।

१६२ १ मन मे कुमति ठानी, २ गली, गल गयी ।

भे अति अहित रामु तेउ[3] तोही । को तू अहसि ? सत्य कहु मोही ॥
जो हसि, सो हसि[4] मुहँ मसि लाई । आँखि ओट उठि बैठहि जाई ॥

दो०—राम-बिरोधी-हृदय तें[5] प्रगट कीन्ह[6] बिधि मोहि ।
सो समान को पातकी ? बादि[7] कहउँ कछु तोहि ॥ १६२॥

(५६) भरत-कौशल्या संवाद

(छन्द-संख्या १६३ से १६७/३ क्रुद्ध शत्रुघ्न का कुबरी पर चरण-प्रहार तथा भरत का हस्तक्षेप, दोनो भाइयो का कौशल्या के घर गमन, भरत का आत्मधिक्कार और कौशल्या द्वारा उनका प्रबोधन ।)

छल-बिहीन, सुचि, सरल सुबानी । बोले भरत जोरि जुग पानी[1] ॥
"जे अघ मातु-पिता सुत मारे । गाइ-गोठ[2], महिसुर-पुर[3] जारे ॥
जे अघ तिय-बालक-बध कीन्हें । मीत-महीपति[4] माहुर दीन्हें ॥
जे पातक-उपपातक अहहीं । करम बचन-मन-भव[5] कबि कहहीं ॥
ते पातक मोहि होहुँ बिधाता । जौं यहु होइ मोर मत माता ॥

दो०—जे परिहरि हरि-हर-चरन भजहि भूतगन घोर ।
तेहि कइ गति मोहि देउ बिधि, जौं जननी ! मत मोर ॥१६७॥

बेचहि बेदु, धरमु दुहि लेहीं[1] । पिसुन[2], पराय पाप कहि देहीं ॥
कपटी, कुटिल कलहप्रिय, क्रोधी । बेद बिदूषक[3], बिस्व बिरोधी ॥
लोभी, लंपट, लोलुपचारा[4] । जे ताकहि परधनु-परदारा[5] ॥
पावौं मैं तिन्ह कै गति घोरा । जौं जननी ! यहु सम्मत मोरा ॥
जे नहि साधुसंग अनुरागे । परमारथ-पथ बिमुख, अभागे ॥
जे न भजहि हरि नरतनु पाई । जिन्हहि न हरि-हर-सुजसु सोहाई ॥
तजि श्रुतिपथु[6] बाम पथ[7] चलहीं । बंचक बिरचि बेष[8] जगु छलहीं ॥
तिन्ह कै गति मोहि संकर देऊ । जननी ! जौं यहु जानौं भेऊ[9] ॥"

---

१६२ ३ वही राम, ४ तुम जो हो, सो हो, ५ राम के विरोधी हृदय से, ६ उत्पन्न किया, ७ व्यर्थ ।

१६७ १ दोनों (युग) हाथ, २ गोशाला, ३ ब्राह्मणो का गाँव, ४ मित्र और राजा, ५ कर्म, वचन और मन से उत्पन्न ।

१६८ १ धर्म को दुहते हैं (धर्म के नाम पर धन कमाते हैं), २ चुगलखोर, ३ वेदों की हँसी उड़ाने वाले, ४ लोभियो-जैसा आचरण करने वाले, ५ दूसरे का धन और दूसरे की स्त्री, ६ वेदमार्ग, ७ वाम (अवैदिक) मार्ग, ८ वेश बना कर, ९ भेद, रहस्य ।

भेंटत भरतु ताहि अति प्रीती । लोग सिहाहिं प्रेम कै रीती[1] ॥
धन्य-धन्य[1] धुनि मंगल मूला । सुर सराहि तेहि, बरिसहि फूला ॥
लोक-वेद सब भाँतिहि नीचा । जासु छाँह छुइ लेइअ सींचा[2] ॥
तेहि भरि अंक राम लघु भ्राता[3] । मिलत पुलक परिपूरित गाता ॥
राम राम कहि जे जमुहाहीं । तिन्हहि न पाप-पुंज समुहाहीं[4] ॥
यह तौ राम लाइ उर लीन्हा । कुल समेत जगु पावन कीन्हा ॥
करमनास-जलु[5] सुरसरि परई । तेहि को कहहु सीस नहिं धरई ॥
उलटा नामु जपत जगु जाना । बालमीकि भए ब्रह्म-समाना ॥
दो०—स्वपच[6] सबर[7] खस[8] जमन[9] जड़ पावँर कोल किरात ।
रामु कहत पावन परम होत भुवन विख्यात ॥१९४॥

नहिं अचिरिजु[1] जुग जुग चलि आई । केहि न दीन्हि रघुबीर बड़ाई ॥
राम नाम महिमा सुर कहहीं । सुनि सुनि अवध लोग सुखु लहहीं ॥
रामसखहि[2] मिलि भरत सप्रेमा । पूँछी कुसल-सुमंगल खेमा[3] ॥
देखि भरत कर सीलु-सनेहू । भा निषाद तेहि समय बिदेहू[4] ॥
सकुच[5] सनेहु मोदु मन बाढ़ा । भरतहि चितवत एकटक ठाढ़ा ॥
धरि धीरजु पद बंदि बहोरी । बिनय सप्रेम करत कर जोरी ॥
कुसल मूल पद पंकज पेखी । मैं तिहुँ काल कुसल निज लेखी[6] ॥
अब प्रभु । परम अनुग्रह तोरें । सहित कोटि कुल मंगल मोरें ।
दो०—समुझि मोरि करतूति कुलु प्रभु महिमा जियँ जोइ ।
जो न भजइ रघुबीर पद जग बिधि-बंचित सोइ[7] ॥१९५॥

कपटी, कायर कुमति कुजाती । लोक-बेद बाहेर[1] सब भाँती ।
राम कीन्ह आपन जबही तें । भयउँ भुवन भूषन[2] तबही तें ॥१९६॥"

---

१९४ १ प्रेम की इस रीति को देख कर लोग तरस रहे हैं, २ जिसकी छाया छू जाने पर भी स्नान करना पड़ता है, ३ राम के छोटे भाई, भरत, ४ सामने नहीं आते, ५ कर्मनाशा नदी का जल, ६ चाण्डाल, ७ शबर जाति के लोग, ८ खस (गढ़वाल के आसपास रहने वाली एक जाति), ९ यवन ।

१९५ १ आश्चर्य, २ राम के सखा निषादराज से, ३ खेमा=क्षेम ४ देह की सुधबुध खो बैठ, ५ सकोच ६ जान लिया ७ वह संसार में विधाता के द्वारा ठगा गया है ।

१९६ १ बाहर, २ संसार का भूषण, संसार में श्रेष्ठ ।

(५६) राम की साँथरी

[छन्द-संख्या १६६ (शेषांश) से १६७ ५ निषादराज द्वारा सबका स्वागत, निषादराज से राम के रात में ठहरने के स्थान के सम्बन्ध में भरत की जिज्ञासा ।]

पूँछत सखहि सो ठाउँ देखाऊ । नेकु[1] नयन मन-जरनि जुड़ाऊ ॥
जहँ सिय रामु-लखनु निसि सोए । कहत भरे जल लोचन-कोए[2] ॥
भरत बचन सुनि भयउ बिषादू । तुरत तहाँ लइ गयउ निषादू ॥

दो०–जहँ सिंसुपा पुनीत तर रघुबर किय बिश्रामु ।
अति सनेहँ सादर भरत कीन्हेउ दंड प्रनामु ॥१९८॥

कुस-साँथरी निहारि सुहाई । कीन्ह प्रनामु प्रदच्छिन जाई[1] ॥
चरन-रेख रज आँखिन्ह लाई । बनइ न कहत प्रीति अधिकाई[2] ॥
कनक बिन्दु[3] दुइ चारिक देखे । राखे सीस सीय सम लेखे ॥
सजल बिलोचन हृदयँ गलानी । कहत सखा सन बचन सुबानी ॥
'श्रीहत सीय बिरहँ दुतिहीना[4] । जथा अवध नर नारि बिलीना[5] ॥
पिता जनक देउँ पटतर केही । करतल भोगु जोगु जग जेही ॥
ससुर भानुकुल भानु भुआलू । जेहि सिहात अमरावतिपालू[6] ॥
प्राननाथु रघुनाथ गोसाईं । जो बड़ होत सो राम बड़ाईं ॥

दो०– पति देवता सुतीय मनि सीय साँथरी देखि ।
बिहरत हृदउ न हहरि हर[7] पबि[8] तें कठिन बिसेषि ॥१९९॥

लालन जोगु लखन लघु लोने[1] । भे न भाइ अस अहहिं न होने ॥
पुरजन प्रिय पितु मातु दुलारे । सिय रघुबीरहि प्रानपिआरे ॥
मृदु मूरति सुकुमार सुभाऊ । तात बाउ[2] तन लाग न काऊ[3] ॥
ते बन सहहिं बिपति सब भाँती । निदरे[4] कोटि कुलिस एहिं छाती ॥

१९८ १ जरा २ आँखों के कोयों में ।

१९९ १ प्रदक्षिणा कर, चारों ओर घूम कर २ प्रेम की अधिकता, ३ (सीता के आभूषणों से टूटे हुए) सोने के दाने ४-५ (सोने के ये दाने) सीता के विरह में उसी प्रकार कान्तिहीन (श्रीहत) हो गये हैं, जैसे अयोध्या के नर नारी शोक से दुर्बल (विलीन) हो गये हैं ६ अमरावती (स्वर्ग) के राजा, इन्द्र, ७ हे हर (शिव) ! ८ वज्र (पवि) से भी अधिक कठोर ।

२०० १ सुन्दर, २ गर्म हवा, ३ कभी, ४ लजाया है ।

अयोध्यावासियों का आतिथ्य और उनके आदेश से ऋद्धि-सिद्धियों का असख्य भोग-सामग्री द्वारा भरत के सत्कार का आयोजन, किन्तु इस प्रसग मे भरत की पूर्ण निर्लिप्तता, दूसरे दिन प्रयाग-स्नान के बाद लोगों का चित्रकूट के लिए प्रस्थान ।]

रामसखा-कर[१] दीन्हे लागू । चलत देह धरि जनु अनुरागू ॥
नहिं पद-त्रान[२], सीस नहिं छाया[३] । पेमु-नेमु-व्रतु-धरमु अमाया[४] ॥
लखन-राम-सिय-पथ-कहानी । पूँछत सखहि, कहत मृदु बानी ।
राम-बास थल-बिटप[५] बिलोकें । उर अनुराग रहत नहीं रोकें ॥
देखि दसा सुर बरिसहिं फूला । भइ मृदु महि, मगु मगल-मूला ॥
दो०—किएँ जाहिं छाया जलद, सुखद बहइ बर बात[६] ।
तस मगु भयउ न राम कहँ जस भा भरतहि जात ॥२१६ ।

जड़-चेतन मग-जीव[१] घनेरे । जे चितए प्रभु, जिन्ह प्रभु हेरे ॥
ते सब भए परम-पद-जोगू । भरत-दरस मेटा भव-रोगू[२] ॥
यह बड़ि बात भरत कइ नाहीं । सुमिरत जिनहि रामु मन माहीं ॥
बारक[३] राम कहत जग जेऊ[४] । होत तरन-तारन[५] नर तेऊ ॥
भरतु राम प्रिय, पुनि लघु भ्राता । कस न होइ मगु मगलदाता ॥
सिद्ध, साधु, मुनिवर अस कहहीं । भरतहि निरखि, हरषु हियँ लहहीं ॥
देखि प्रभाउ सुरेसहि[६] सोचू । जगु भल भलेहि, पोच कहुँ पोचू[७] ॥
गुर[८] सन कहेउ "करिअ प्रभु! सोई । रामहि-भरतहि भेट न होई ॥
दो०—रामु सँकोची, प्रेम बस, भरत सपेम-पयोधि ।
बनी बात बेगरन[९] चहति, करिअ जतनु छलु सोधि[१०] ॥२१७॥"

बचन सुनत सुरगुरु[१] मुसुकाने । *सहसनयन[२] बिनु लोचन जाने ॥
"मायापति[३]-सेवक सन माया[४] । करइ त उलटि परइ *सुरराया ॥

---

२१६ १ राम के सखा निषादराज के हाथ मे हाथ डाले; २ जूता; ३ (छाता आदि की) छाया, ४ माया से रहित, ५ राम के ठहरने के स्थान और वहाँ के वृक्ष; ६ वायु ।

२१७. १ रास्ते के प्राणी; २ ससार-रूपी रोग, ससारिक बन्धन; ३ एक बार भी, ४ जो लोग; ५ तरने-तारने वाले; ६ इन्द्र को, ७ ससार भले के लिए भला और बुरे के लिए बुरा है; ८ गुरु, बृहस्पति, ९ बिगड़ना; १० ढूँढ कर ।

२१८. १ देवताओं के गुरु, *बृहस्पति; २ हजार आँखों वाले इन्द्र को; ३ माया के स्वामी; ४ छल ।

तब[5] किछु कीन्ह राम रुख जानी। अब कुचालि करि होइहि हानी॥
सुनु सुरेस रघुनाथ सुभाऊ। निज अपराध रिसाहिं न काऊ॥
जो अपराधु भगत कर करई। राम रोष पावक[6] सो जरई॥
लोकहुँ बेद बिदित इतिहासा[7]। यह महिमा जानहिं *दुरबासा॥
भरत सरिस को राम-सनेही। जगु जप राम रामु जप जेही॥

दो०—मनहुँ न आनिअ अमरपति[8] रघुबर भगत अकाजु[9]।
अजसु लोक परलोक दुख दिन दिन सोक समाजु[10]॥२१८॥

सुनु सुरेस उपदेसु हमारा। रामहि सेवकु परम पिआरा॥
मानत सुखु सेवक सेवकाई[1]। सेवक-बैर बैरु अधिकाई[2]॥
जद्यपि सम नहिं राग न रोषू। गहहिं न पाप पूनु[3] गुन दोषू॥
करम प्रधान बिस्व करि राखा। जो जस करइ सो तस फलु चाखा॥
तदपि करहिं सम बिषम बिहारा[4]। भगत अभगत हृदय अनुसारा॥
अगुन[5] अलेप[6] अमान[7] एकरस[8]। रामु सगुन भए भगत पेमबस॥
राम सदा सेवक रुचि राखी। *बेद *पुरान साधु-सुर साखी[9]॥
अस जियँ जानि तजहु कुटिलाई। करहु भरत पद प्रीति सुहाई॥

दो०—राम भगत परहित निरत पर दुख दुखी दयाल।
भगत सिरोमनि भरत तें जनि डरपहु सुरपाल॥२१९॥

सत्यसंध[1] प्रभु सुर हितकारी। भरत राम आयस अनुसारी[2]॥
स्वारथ बिबस[3] बिकल तुम्ह होहू। भरत दोसु नहिं राउर मोहू॥२२०॥

(९२) लक्ष्मण का क्रोध

[छंद-संख्या २२० (शेषांश) से २२६ ६ मार्ग में ठहरने के बाद यमुना-तट पर विश्राम दूसरे दिन यमुना पार के गाँव के

---

२१८ ५ उस समय अर्थात राम के अभिषेक के समय ६ राम के क्रोध की आग में, ७ कथा, ८ इन्द्र ९ अकाज अनिष्ट १० शोक का समूह शोक की वृद्धि।

२१९ १ अपने सेवक की सेवा करने से, २ अपने सेवक से बैर करने से बहुत बैर मानते हैं, ३ पाप और पुण्य, ४ व्यवहार ५ गुणों से परे निर्गुण, ६ निर्लिप्त ७ अभिमान रहित, ८ परिवर्तन रहित ९ साक्षी (हैं)।

२२० १ सत्यप्रतिज्ञ, २ राम के आदेश का पालन करने वाले ३ स्वार्थ से व्याकुल।

नर-नारियो द्वारा भरत के शील की प्रशंसा, रात्रि मे विश्राम के बाद फिर यात्रा और चित्रकूट के समीप आने पर भरत की स्नेहाकुलता, उसी दिन भोर में सीता को भरत के चित्रकूट-आगमन का स्वप्न और चतुरंग सेना के साथ उनके आगमन की वनवासियो द्वारा सूचना, भरत के प्रति लक्ष्मण की आशंका और क्रोध।]

"अनुचित नाथ! न मानब मोरा। भरत हमहि उपचार[1] न थोरा॥
कहँ लगि सहिअ, रहिअ मनु मारें। नाथ साथ, धनु हाथ हमारे॥

दो०— छत्रि जाति रघुकुल जनमु, राम-अनुग[2] जगु जान।
लातहुँ मारे चढति सिर, नीच को धूरि-समान॥२२९॥"

उठि कर जोरि रजायसु[1] मागा। मनहुँ बीर-रस सोवत जागा॥
बाँधि जटा सिर, कसि कटि भाथा। साजि सरासनु-सायकु हाथा॥
"आजु राम सेवक-जसु लेऊँ। भरतहि समर-सिखावन देऊँ॥
राम-निरादर कर फलु पाई। सोवहुँ समर-सेज[2] दोउ भाई॥
आइ बना भल सकल समाजू। प्रगट करउँ रिस पाछिल[3] आजू॥
जिमि करि-निकर[4] दलइ मृगराजू। लेइ लपेटि लवा जिमि बाजू[5]॥
तैसेहि भरतहि सेन-समेता। सानुज निदरि, निपातउँ खेता[6]॥
जौं सहाय कर संकरु आई। तौ मारउँ रन, राम-दोहाई॥"

दो०— अति सरोष माखे[7] लखनु लखि, सुनि सपथ प्रवान[8]।
सभय लोक, सब लोकपति चाहत भभरि भगान[9]॥२३०॥

जगु भय मगन, गगन भइ बानी। लखन-बाहुबलु बिपुल बखानी॥
"तात! प्रताप प्रभाउ तुम्हारा। को कहि सकइ, को जाननिहारा॥
अनुचित-उचित काजु किछु होऊ। समुझि करिअ, भल कह सबु कोऊ॥
सहसा करि पाछें पछिताहीं। कहहिं बेद-बुध[1] ते बुध[2] नाहीं॥"

---

२२१. १ छेड़छाड़।

२२९. २ राम का अनुगमन करने वाला (अर्थात् सेवक)।

२३०. १ आदेश, २ युद्ध की सेज; ३ पिछला; ४ हाथियों का झुण्ड; ५ बाज पक्षी; ६ अनुज (शत्रुघ्न) के साथ अपमानित कर (ललकार कर) रणक्षेत्र मे पछाड़ूँगा, ७ खीझे हुए, तमतमाये हुए; ८ सौगन्ध का प्रमाण; ९ घबड़ा कर भागना चाहते हैं।

२३१. १ वेद और विद्वान्; २ बुद्धिमान्।

सुनि सुर-बचन लखन सकुचाने । राम सीयँ सादर सनमाने ।।
कही तात ! तुम्ह नीति सुहाई । सब तें कठिन राजमदु[3] भाई ।।
जो अचवँत नृप मातहिं तेई[4] । नाहिन साधुसभा जेहिं सेई ।।
सुनहु लखन ! भल भरत सरीसा[5] । बिधि प्रपंच[6] महँ सुना न दीसा ।।

दो०—भरतहि होइ न राजमदु बिधि हरि हर पद पाइ ।
कबहुँ कि काँजी सीकरनि[7] छीरसिंधु बिनसाइ[8] ।।२३१।।

तिमिरु तरुन तरनिहि मकु[1] गिलई[2] । गगनु मगन मकु मेघहि मिलई ।।
गोपद जल बूड़हिं घटजोनी[3] । सहज छमा बरु छाड़ै छोनी[4] ।।
मसक फूँक[5] मकु मेरु उड़ाई । होइ न नृपमदु[6] भरतहि भाई ।।
लखन ! तुम्हार सपथ पितु आना[7] । सुचि सुबंधु नहिं भरत समाना ।।
सगुनु-खीरु अवगुन जलु ताता[8] ! मिलइ रचइ परपंचु बिधाता[9] ।।
भरतु हंस रबिबंस-तड़ागा । जनमि कीन्ह गुन दोष बिभागा ।।
गहि गुन पय[10] तजि अवगुन बारी । निज जस जगत कीन्हि उजिआरी ।।
कहत भरत गुन सीलु सुभाऊ । पेम पयोधि मगन रघुराऊ ।।२३२।।

(६३) राम-भरत मिलन

(दोहा-संख्या २३२ से बाद संख्या २३६ अयोध्यावासियों को मन्दाकिनी के समीप ठहरा कर भरत का निषादराज और शत्रुघ्न के साथ राम की पर्णकुटी की ओर प्रस्थान मार्ग में भरत की आत्मग्लानि और संकोच वनप्रदेश की शोभा ।)

तब केवट ऊँचे चढ़ि धाई । कहेउ भरत सन भुजा उठाई ।।
नाथ ! देखिअहिं बिटप बिसाला । पाकरि जंबु[1] रसाल तमाला ।।

---

२३१ ३ राज्य का घमण्ड, ४ इस (राजमद) का पान करने वाले राजा मतवाले हो जाते हैं ५ भरत-जैसा, ६ संसार, ७ काँजी (खटाई) की बूँदों से, ८ फटता है ।

२३२ १ भले ही २ लील जाय, ३ (भले ही) गाय के खुर जितने गड्ढे के पानी में अगस्त्य डूब जायँ, ४ क्षोणी पृथ्वी, ५ मच्छर की फूँक, ६ राजमद, ७ पिता की शपथ, ८ ९ हे तात ! गुण रूपी दूध और अवगुण-रूपी जल को मिला कर विधाता संसार (प्रपंच) की रचना करता है, १० गुण रूपी दूध को ग्रहण कर ।

२३७ १ जामुन ।

जिन्ह तरुबरन्ह मध्य बटु[2] सोहा। मंजु विसाल, देखि मनु मोहा ॥
नील सघन पल्लव, फल लाला। अविरल[3] छाहँ सुखद सब काला ॥
मानहुँ तिमिर-अरुनमय रासी[4]। बिरची बिधि सँकेलि सुषमा सी[5] ॥
ए तरु सरित-समीप गोसाँई। रघुबर परनकुटी जहँ छाई ॥
तुलसी तरुबर बिबिध सुहाए। कहुँ-कहुँ सियँ, कहुँ लखन लगाए ॥
बट-छायाँ बेदिका बनाई। सियँ निज पानि-सरोज सुहाई ॥

दो०—जहाँ बैठि मुनिगन-सहित नित सिय-रामु सुजान।
सुनहिं कथा-इतिहास सब *आगम-*निगम-पुरान ॥२३७॥"

सखा-बचन सुनि बिटप निहारी। उमगे भरत-बिलोचन बारी ॥
करत प्रनाम चले दोउ भाई। कहत प्रीति सादर सकुचाई ॥
हरषहिं निरखि राम-पद-अंका। मानहुँ पारसु पायउ रंका ॥
रज सिर धरि,हियँ-नयनन्हि लावहिं। रघुबर-मिलन-सरिस सुख पावहिं ॥
देखि भरत-गति अकथ अतीवा[1]। प्रेम-मगन मृग, खग, जड़ जीवा ॥
सखहि सनेह-बिबस मग भूला। कहि सुपथ[2] सुर बरषहिं फूला ॥
निरखि सिद्ध साधक अनुरागे। सहज सनेहु सराहन लागे ॥
होत न भूतल भाउ[3] भरत को। अचर सचर, चर अचर करत को[4]॥

दो०—पेम अमिअ *मंदरु बिरहु भरतु पयोधि गँभीर।
मथि प्रगटेउ सुर-साधु-हित कृपासिंधु रघुबीर ॥२३८॥

साखा-समेत मनोहर जोटा[1]। लखेउ न लखन सघन बन-ओटा ॥
भरत दीख प्रभु-आश्रमु पावन। सकल-सुमंगल-सदनु सुहावन ॥
करत प्रबेस मिटे दुख दावा। जनु जोगीं परमारथु पावा ॥
देखे भरत लखन प्रभु-आगे। पूँछे बचन कहत अनुरागे ॥
सीस जटा, कटि मुनि पट बाँधें। तून कसें, कर सरु, धनु काँधें ॥
बेदी पर मुनि-साधु समाजू। सीय-सहित राजत रघुराजू ॥
बलकल बसन, जटिल[2] तनु स्यामा। जनु मुनिबेष कीन्ह रति-कामा[3] ॥
कर-कमलनि धनु-सायकु फेरत। जिय की जरनि हरत हँसि हेरत ॥

---

२३७. २ वटवृक्ष; ३ सघन; ४ अन्धकार और लालिमा का ढेर; ५ विधाता ने शोभा एकत्र कर रच दिया हो।

२३८ १ अत्यन्त; २ सुन्दर मार्ग; ३ भाव (प्रेम या जन्म) ४ कौन जड़ को चेतन और चेतन को जड़ कर देता?

२३९. १ जोडी, २ जटा-युक्त; ३ रति और कामदेव।

दो०—लसत मंजु मुनि मंडली मध्य सीय रघुचंदु ।
ग्यान-सभा जनु तनु धरे भगति सच्चिदानंदु[४] ॥२३९॥

सानुज सखा समेत मगन मन । बिसरे हरष सोक सुख दुख गन ॥
पाहि[१] नाथ[?] कहि पाहि गोसाईं[?] । भूतल परे लकुट[३] की नाईं ॥
बचन सपेम लखन पहिचाने । करत प्रनामु भरत जियँ जाने ॥
बंधु सनेह सरस एहि ओरा । उत साहिब सेवा[3] बस जोरा ॥
मिलि न जाइ नहिं गुदरत बनई[४] । सुकबि लखन मन की गति भनई ॥
रहे राखि सेवा पर भारू । चढ़ी चंग[५] जनु खैंच खेलारू[६] ॥
कहत सप्रेम नाइ महि माथा । भरत प्रनाम करत रघुनाथा ॥
उठे रामु सुनि पेम अधीरा । कहुँ पट कहुँ निषंग[७] धनु-तीरा ॥

दो०—बरबस लिए उठाइ उर लाए कृपानिधान ।
भरत राम की मिलनि लखि बिसरे सबहि अपान[८] ॥२४०॥

मिलनि प्रीति किमि जाइ बखानी । कबिकुल अगम करम मन बानी ॥
परम पेम पूरन दोउ भाई । मन बुधि चित अहमिति[१] बिसराई ॥
कहहु सुपेम प्रगट को करई । केहि छाया कबि-मति अनुसरई[२] ॥
कबिहि अरथ आखर बलु साँचा । अनुहरि[3] ताल गतिहि नटु नाचा ॥
अगम सनेह भरत रघुबर को । जहँ न जाइ मनु बिधि हरि हर को ॥
सो मैं कुमति कहौं केहि भाँती । बाज सुराग कि गाडर-ताँती[४] ॥२४१॥

(६४) वनवासियों का आतिथ्य-सत्कार

[छन्द संख्या २४१ (शेषांश) से २४६ : भाइयों का मिलन, अयोध्यावासियों के आगमन की सूचना पा कर राम का प्रस्थान, राम द्वारा वसिष्ठ, कैकेयी तथा अन्य माताओं, गुरुपत्नी और विप्रपत्नियों की चरण वन्दना, सीता द्वारा वसिष्ठ पत्नी तथा

---

२३९ ४ भक्ति और सच्चिदानन्द ।

२४० १ रक्षा कीजिए, [?] लाठी, ३ राम की सेवा, ४ न छोड़ते ही बनता है, ५ पतंग, ६ पतंग उड़ाने वाला, ७ तरकस, ८ अपनी सुध-बुध ।

२४१ १ अहमिति (अपने होने का बोध), २ कवि की बुद्धि किसकी छाया या सहारा ग्रहण करे ? ३ अनुसरण कर या सहारा ले कर, ४ क्या गाडर-ताँत (भेड़ का ऊन धुनने वाली ताँत) से सुन्दर राग बज सकता है ?

सासों की चरण-वन्दना, दशरथ की मृत्यु के समाचार से राम को शोक, तथा उनका निर्जल व्रत, दूसरे दिन शुद्धि तथा और दो दिन बाद गुरु से लोगों के साथ अयोध्या लौटने की प्रार्थना, गुरु द्वारा अयोध्या-वासियों के राम के दर्शनार्थ दो-चार दिन रुकने का संकेत, अयोध्या-वासियों का चित्रकूट और रामवन में भ्रमण ।]

कोल किरात भिल्ल, वनवासी । मधु सुचि, सुन्दर, स्वादु सुधा-सी ॥
भरि-भरि परन-पुटी[1] रचि रूरी । कंद मूल-फल अंकुर-जूरी[2] ॥
सबहि देहिं करि बिनय-प्रनामा । कहि-कहि स्वाद-भेद-गुन-नामा ॥
देहिं लोग बहु मोल, न लेहीं । फेरत राम दोहाई देहीं ॥
कहहिं सनेह मगन मृदु बानी । मानत साधु पेम-पहिचानी ॥
"तुम्ह सुकृती, हम नीच निषादा । पावा दरसनु राम-प्रसादा ॥
हमहि अगम अति दरसु तुम्हारा । जस मरु-धरनि देवधुनि धारा[3] ॥
राम कृपाल, निषाद नेवाजा[4] । परिजन-प्रजउ चहिअ जस राजा ॥

दो०—यह जियँ जानि, सँकोचु तजि करिअ छोहु, लखि नेहु ।
हमहि कृतारथ-करन लगि फल, तृन, अंकुर लेहु ॥२५०॥

तुम प्रिय पाहुने बन पगु धारे । सेवा-जोगु न भाग हमारे ॥
देव काह हम तुम्हहि गोसाँई[1] ईंधनु-पात किरात-मिताई[1] ॥
यह हमारि अति बड़ि सेवकाई । लेहिं न बासन-बसन चोराई ॥
हम जड़ जीव, जीव-गन-घाती[2] । कुटिल, कुचाली, कुमति, कुजाती ॥
पाप करत निसि बासर जाहीं । नहिं पट कटि, नहिं पेट अघाहीं ॥
सपनेहुँ धरम-बुद्धि कस, काऊ । यह रघुनंदन-दरस-प्रभाऊ ॥
जब तें प्रभु पद पदुम निहारे । मिटे दुसह दुख-दोष हमारे ॥"
बचन सुनत, पुरजन अनुरागे । तिन्ह के भाग सराहन लागे ॥

छं०—लागे सराहन भाग, सब अनुराग-बचन सुनावहीं ।
बोलनि, मिलनि, सिय-राम-चरन सनेहु लखि सुखु पावहीं ॥

---

२५०. १ पत्तों के दोने; २ जूड़े (आँटी, जुट्टा), ३ जैसे मरुभूमि में गंगानदी की धारा; ४ निषाद पर कृपा की ।

२५१. १ किरात की मित्रता तो बस लकड़ी और पत्तों से ही है; २ जीवों का वध करने वाले ।

नर नारि निदरहिं नेहु निज सुनि कोल भिल्लनि की गिरा[3] ।
तुलसी कृपा रघुबंसमनि की लोह तैं लौका तिरा[4] ॥२५९॥

(६५) भरत की ग्लानि

(दोहा-संख्या २५९ से छन्द संख्या २६०/३ चित्रकूट में अयोध्यावासियों का कुछ दिनों तक सुखपूर्वक निवास सीता द्वारा एक साथ सभी सासों की अलग अलग रूप धारण कर सेवा तथा कैकेयी का पश्चात्ताप राम को लौटाने के सम्बन्ध में विचार विमर्श के लिए भरत द्वारा अयोध्यावासियों की सभा का आयोजन और वसिष्ठ का यह परामर्श कि भरत और शत्रुघ्न वनवास करें तथा राम सीता और लक्ष्मण अयोध्या लौटें पूरे समाज के साथ भरत का राम के पास गमन, वसिष्ठ का राम से पुरजन जननी और भरत के लिए हितकारी उपाय कहने का अनुरोध राम और वसिष्ठ का संवाद राम द्वारा भरत की महिमा तथा वसिष्ठ का भरत से राम के सामने मन की बात कहने का अनुरोध ।)

कहब मोर मुनिनाथ निबाहा । एहि तें अधिक कहौं मैं काहा ॥
मैं जानउँ निज नाथ सुभाऊ । अपराधिहु पर कोह न काऊ ॥
मो पर कृपा सनेह बिसेषी । खेलत खुनिस[1] न कबहूँ देखी ॥
सिसुपन तें परिहरेउँ न संगू । कबहुँ न कीन्ह मोर मन भंगू[2] ॥
मैं प्रभु कृपा रीति जियँ जोही । हारेहुँ खेल जितावहिं मोही ॥
दो०—महूँ[3] सनेह सकोच बस सनमुख कही न बैन ।
दरसन-तृपित न आजु लगि पेम पिआसे नैन ॥२६०॥
बिधि न सकेउ सहि मोर दुलारा । नीच बीचु[1] जननी मिस पारा[2] ॥
यहउ कहत मोहि आजु न सोभा । अपनीं समुझि[3] साधु सुचि को भा[4] ॥
मातु मंदि मैं साधु सुचाली । उर अस आनत कोटि कुचाली[5] ॥

---

२५९ ३ वाणी, ४ लोहा अपने ऊपर नौका लेकर पार हो गया अथवा लोहा तो डूब रहा है और लौका तैर गया है (अयोध्या के लोगों का भारी समझा जाने वाला प्रेम कोल-भीलों के हलके समझ जाने वाले प्रेम से पिछड़ गया है—कोल भीलों का प्रेम ही अधिक श्रेष्ठ प्रमाणित हुआ है) ।

२६० १ रोष, २ मेरा दिल नहीं तोड़ा मेरा जी छोटा नहीं किया ३ मैंने भी ।

२६१ १ भेद २ डाल दिया ३ अपने से, ४ कौन हुआ, ५ अपराध ।

फरइ कि कोदव बालि सुसाली[6] । मुकता प्रसव कि संबुक काली[7] ॥
सपनेहुँ दोसक लेसु न काहू । मोर अभाग उदधि अवगाहू ॥
बिनु समुझें निज अघ परिपाकू[8] । जारिउँ जायँ जननि कहि काकू[9] ॥
हृदयँ हेरि हारेउँ सब ओरा । एकहि भाँति भलेहि भल मोरा ।
गुर गोसाइँ साहिब सिय रामू । लागत मोहि नीक परिनामू ॥

दो०—साधु-सभा गुर प्रभु निकट कहउँ सुथल[10] सति भाउ[11] ।
प्रेम प्रपंचु कि झूठ फुर जानहिं मुनि रघुराउ ॥२६१॥

भूपति मरन पेम पनु राखी । जननी कुमति जगतु सबु साखी ॥
देखि न जाहिं बिकल महतारी । जरहिं दुसह जर[1] पुर नर-नारी ॥
महीं[2] सकल अनरथ कर मूला । सो सुनि समुझि सहिउँ सब सूला ॥
सुनि बन गवनु कीन्ह रघुनाथा । करि मुनि-बेष लखन सिय साथा ॥
बिनु पानहिन्ह[3] पयादेहि पाएँ[4] । संकरु साखि रहेउँ एहि घाएँ[5] ॥
बहुरि निहारि निषाद सनेहू । कुलिस-कठिन उर भयउ न बेहू[6] ॥
अब सबु आँखिन्ह देखउँ आई । जिअत जीव जड़ सबइ सहाई ॥
जिन्हहि निरखि मग साँपिनि बीछी । तजहिं बिषम बिषु तामस तीछी[7]॥

दो०—तेइ रघुनंदनु लखनु सिय अनहित लागे जाहि ।
तासु तनय तजि[8] दुसह दुख दैउ[9] सहावइ काहि ॥२६२॥

सुनि अति बिकल भरत बर बानी । आरति प्रीति बिनय नय[1] सानी ॥
सोक मगन सब सभा खभारू[2] । मनहुँ कमल-बन परेउ तुसारू[3] ॥
कहि अनेक बिधि कथा पुरानी । भरत प्रबोधु कीन्ह मुनि ग्यानी ॥
बोले उचित बचन रघुनंदू । दिनकर कुल कैरव बन चंदू ॥
तात ! जायँ जियँ करहु गलानी । ईस अधीन जीव-गति जानी ॥
तीनि काल तिभुअन मत मोरें । पुन्यसिलोक तात ! तर तोरें[4] ॥

---

२६१ ६ क्या कोदों की बाली मे बढ़िया धान उत्पन्न हो सकता है ?, ७ क्या काल घोंघे मे मोती उपज सकता है ?, ८ अपने पापों का फल, ९ काकु, व्यंग्य, १० उत्तम स्थल (चित्रकूट) मे, ११ सच्चे हृदय से सच-सच ।

२६२ १ विरह का ज्वर, २ मैं ही, ३ जूतों के बिना, ४ पाँव-पैदल, ५ इस घाव या चोट के बावजूद, ६ हृदय मे छेद नहीं हो गया हृदय टूक-टूक नहीं हो गया, ७ तीक्ष्ण भयानक, ८ छोड़ कर, ९ दैव ।

२६३ १ नय-नीति, २ सभा चिन्तामग्न हो गयी, ३ तुषार, पाला, ४ हे तात ! सभी पुण्यश्लोक (पुण्यात्मा) तुमसे घट कर हैं ।

उर आनत तुम्ह पर कुटिलाई। जाइ लोकु, परलोकु नसाई॥
दोसु देहि जननिहि जड तेई। जिन्ह गुर-साधु-सभा नहि सेई॥

दो०–मिटिहहि पाप-प्रपच सब अखिल[५]अमगल-भार।
लोक सुजसु, परलोक सुखु, सुमिरत नामु तुम्हार॥२६३॥
कहउँ सुभाउ सत्य, सिव साखी। भरत! भूमि रह राउरि राखी[१]॥
तात! कुतरक करहु जनि जाएँ। बैर-पेम नहि दुरइ दुराएँ॥
मुनि-गन निकट बिहग मृग जाही। बाधक बधिक[२] बिलोकि पराही॥
हित अनहित पसु पच्छिउ जाना। मानुष-तनु गुन-ग्यान-निधाना॥
तात! तुम्हहि मैं जानउँ नीके। करौ काह, असमजस जी के॥
राखेउ रायँ सत्य, मोहि त्यागी। तनु परिहरेउ पेम-पन लागी॥
तासु बचन मेटत मन सोचू। तेहि तें अधिक तुम्हार सँकोचू॥
ता पर गुर मोहि आयसु दीन्हा। अवसि जो कहहु चहउँ सोइ कीन्हा॥२६४॥"

(दोहा-सख्या २६४ से छन्द-सख्या २८७ राम के कथन पर सबकी प्रसन्नता, देवताओ की चिन्ता और बृहस्पति द्वारा उनका प्रबोधन, भरत का प्रस्ताव कि राम, सीता और लक्ष्मण अयोध्या लौटें और उनके बदले शत्रुघ्न के साथ वह वनवास करें अथवा सीता और राम ही लौटें और तीनो भाई वन जायें, किन्तु यह विचार भी कि राम का आदेश ही उनके लिए शिरोधार्य होगा, इसी समय दूतो द्वारा जनक के आगमन की सूचना, इस सूचना से अयोध्यावासियों को हर्ष, राम को सकोच और इन्द्र को चिन्ता, दूसरे दिन भरत का आगमन, तथा वसिष्ठ और भाइयो सहित राम से मिलन, जनक के समाज के साथ अवध-समाज की शोकमग्नता तथा वसिष्ठ द्वारा जनक का प्रबोधन, शोक के कारण उस दिन सबका निर्जल उपवास, दूसरे दिन प्रात स्नान के बाद वटवृक्ष के नीचे एकत्र लोगो को ज्ञानी ब्राह्मणो का उपदेश, राम का विश्वामित्र से लोगों के पिछले दिन से निराहार रह जाने का उल्लेख वनवासियों का फल मूल से भरे दोनों द्वारा उनका सत्कार तथा स्नान के बाद लोगो का भोजन।

राम के सान्निध्य मे सुखी लोगों का इसी प्रकार चार दिन बीतने पर अयोध्या के रनिवास मे जनक के रनिवास का आगमन तथा रानियो

---

२६३. ५ सभी।
२६४.१ हे भरत! यह भूमि तुम्हारे रखने से ही रह पायी है, तुम्हारे पुण्य के कारण ही टिकी हुई है, २ दुःख देने वाले शिकारी।

का स्नेहपूर्ण मिलन, सीता की माता को, जनक से निवेदन के लिए, कौशल्या का सन्देश कि लक्ष्मण के बदले राम के साथ भरत वनवास करें तथा भरत के प्रति उनका ममत्व, दो पहर रात बीतने के कारण सीता का माता से विदा लेकर चलने का अनुरोध और सीता के साथ उनका प्रस्थान, सीता का तापस वेश देख कर जनकपुर के परिजनों का विषाद, किन्तु जनक का परितोष और आशीर्वाद, सीता के लौटने पर रानी द्वारा भरत के व्यवहार की चर्चा ।)

(६६) जनक की भरत-महिमा

सुनि भूपाल भरत-व्यवहारू । सोन सुगध, सुधा ससि सारू[1] ॥
मूदे सजल नयन पुलके तन । सुजसु सराहन लगे मुदित मन ॥
"सावधान सुनु सुमुखि ! सुलोचनि ! भरत-कथा भव-बंध-विमोचनि[2] ॥
धरम, राजनय,[3] ब्रह्मविचारू[4] । इहाँ जथामति मोर प्रचारू[5] ॥
सो मति मोरि, भरत महिमाही । कहै काह छलि छुअति न छाँही[6] ॥
विधि,गनपति,अहिपति,सिव सारद । कवि कोविद बुध बुद्धि-विसारद ॥
भरत चरित कीरति करतूती । धरम सील गुन विमल विभूती ॥
समुझत सुनत सुखद सब काहू । सुचि सुरसरि रुचि निदर सुधाहू[7] ॥

दो०– निरवधि[8] गुन निरुपम पुरुषु, भरतु भरत सम जानि ।
कहिअ सुमेरु कि सेर-सम[9] कविकुल मति सकुचानि ॥२८८॥

अगम सबहि बरनत, बरबरनी[1] ! जिमि जलहीन मीन गमु धरनी[2] ॥
भरत अमित महिमा सुनु रानी ! जानहिं रामु न सकहिं बखानी ॥"
बरनि सप्रेम भरत-अनुभाऊ[3] । तिय जिय की रुचि लखि कह राऊ ॥
"बहुरहिं लखनु भरतु बन जाहीं । सब कर भल सब के मन माहीं ॥

---

२८८ १ सोने मे सुगन्ध और चन्द्रमा से निचोड़े अमृत-जैसा, २ संसार के बन्धनों से मुक्त करने वाली, ३ राजनीति, ४ ब्रह्म-सम्बन्धी विचार, ५ पहुँच या समझ, ६ छल से भी (मेरी बुद्धि) उसकी छाया तक नहीं छू सकी है, ७ रुचि में अमृत का भी निरादर करने वाली, अमृत से भी अधिक स्वादिष्ट, ८ असीम, ९ सेर के बटखरे के समान ।

२८९ १ हे श्रेष्ठ (गौर) वर्ण वाली, सुन्दरी, २ जैसे जलहीन पृथ्वी पर मछली का गमन करना, ३ भरत का अनुभाव या प्रभाव ।

देवि ! परतु भरत रघुबर की । प्रीति-प्रतीति जाइ नहि तरकी[४] ।।
भरतु अवधि[५] सनेह ममता की । जद्यपि रामु सीम[६] समता की ।।
परमारथ, स्वारथ सुख सारे । भरत न सपनेहुँ मनहुँ निहारे ।।
साधन-सिद्धि राम पग-नेहू[७] । मोहि लखि परत, भरत-मत एहू ।।
दो०–भोरेहुँ[८] भरत न पेलिहहि[९] मनसहुँ राम-रजाइ ।
करिअ न सोचु सनेह-बस", कहेउ भूप बिलखाइ ।।२८९।।
राम-भरत-गुन गनत सप्रीती । निसि दपतिहि पलक-सम बीती ।।२९०।।

(९७) देवताओं की चिन्ता

[छन्द-संख्या २९० (शेषाश) से २९३ दूसरे दिन शोकविह्वल भरत, पुरजन और माताओ तथा जनक ने लम्बे वनवास को देखते हुए वसिष्ठ से आदेश के लिए राम की प्रार्थना, वसिष्ठ द्वारा जनक को राम की प्रार्थना की सूचना, सबका भरत के पास गमन तथा जनक का भरत से निर्देश देने के लिए अनुरोध, भरत की विनम्रता और राम के सेवाधर्म की अपनी पराधीनता को देखते हुए गुरुजनों से निर्णय की याचना ।]

भरत-बचन मुनि, देखि सुभाऊ । सहित समाज सराहत राऊ ।।
सुगम, अगम मृदु मजु कठोरे[१] । अरथु अमित अति, आखर थोरे ।।
ज्यो मुखु मुकुर मुकुरु निज पानी[२] । गहि न जाइ, अस अदभुत बानी[३] ।।
भूप, भरतु मुनि सहित-समाजू । गे जहँ बिबुध कुमुद-द्विजराजू[४] ।।
सुनि सुधि[५] सोच-बिकल सब लोगा । मनहुँ मीन गन नव जल जोगा[६] ।।
देवँ प्रथम कुलगुर-गति देखी । निरखि बिदेह सनेह बिसेषी ।।

---

२८९. ४ तर्क द्वारा नहीं समझा जा सकता, ५ सीमा, ६ सीमा, ७ राम के चरणो मे प्रेम ही (भरत के लिए) साधन और सिद्धि, दोनो हैं, ८ भूल से भी, ९ अवहेलना करेंगे ।

२९४ १ सरल होते हुए भी गूढ और कोमल तथा सुन्दर होते हुए भी कठोर (दृढता से भरे हुए) थे, २-३ जैसे देखने वाले का मुख दर्पण मे दिखलायी देता है और दर्पण स्वय उसके हाथ मे रहता है, किन्तु वह अपने मुख का प्रतिबिम्ब पकड नहीं पाता–ऐसी ही अद्भुत वाणी भरत की थी, ४ देवता-रूपी कुमुदो को विकसित करने वाले चन्द्रमा (रामचन्द्र) के पास गये, ५ समाचार, ६ मानो नये जल (पहली वर्षा के जल) के सयोग से मछलियाँ विकल हो गयी हो ।

राम भगतिमय भरतु निहारे। सुर स्वारथी हहरि हियँ हारे॥
सब कोउ राम-पेममय पेखा[७]। भए अलेख सोच-बस लेखा[८]॥

दो०— रामु सनेह सकोच बस कह ससोच सुरराजु।
रचहु प्रपंचहि पंच मिलि नाहिं त भयउ अकाजु॥२६४॥

सुरन्ह सुमिरि सारदा सराही। देवि ! देव सरनागत पाही[१]॥
फेरि भरत मति करि निज माया। पालु बिबुध कुल करि छल-छाया[२]॥"
बिबुध बिनय सुनि देवि सयानी। बोली सुर स्वारथ जड़ जानी॥
मो सन कहहु भरत मति फेरू। लोचन सहस न सूझ सुमेरू॥
बिधि हरि हर माया बड़ि भारी। सोउ न भरत मति सकइ निहारी॥
सो मति मोहि कहत करु भोरी। चंदिनि[३] कर कि चंडकर[४] चोरी॥
भरत हृदयँ सिय राम निवासू। तहँ कि तिमिर जहँ तरनि प्रकासू॥"
अस कहि सारद गइ बिधि लोका। बिबुध बिकल निसि मानहुँ कोका॥

दो०—सुर स्वारथी मलीन मन कीन्ह कुमंत्र कुठाटु[५]।
रचि प्रपंच माया प्रबल भय भ्रम अरति[६] उचाटु[७]॥२६५॥

करि कुचालि सोचत सुरराजू। भरत हाथ सबु काजु अकाजू॥२६६॥

(६८) भरत-विनय

[छन्द संख्या २६६ (शेषांश) से २६७ जनक का राम के पास भरत के साथ संवाद का उल्लेख और राम द्वारा जनक से आदेश की प्रार्थना और उसके पालन की शपथ, राम की शपथ सुन कर लोगों का भरत की ओर देखना भरत का असमंजस और विनय।]

प्रभु[१] पितु मातु सुहृद गुर स्वामी। पूज्य परम हित अंतरजामी॥
सरल सुसाहिबु सील निधानू। प्रनतपाल सर्बग्य, सुजानू॥
समरथ, सरनागत हितकारी। गुनगाहकु, अवगुन अघ हारी॥
स्वामि ! गोसाँइहि-सरिस गोसाईं। मोहि समान मैं, साइँ दोहाईं॥

---

२६४. ७ देखा ८ (इससे देवता) इतने अधिक चिन्तित हो गये कि उसका लखा नहीं।

२६५ १ रक्षा कीजिए, २ छल (षडयंत्र) की छाया कर, ३ चांदनी, ४ सूर्य, ५ कुचक्र, ६ अप्रीति, ७ उच्चाटन।

२६८. १ मित्र।

प्रभु पितु वचन मोह-वस पेली[2] । आयउँ इहाँ समाजु सकेली[3] ।।
जग[4] भल पोच ऊँच अरु नीचू । अमिअ अमरपद[5] माहुरु मीचू[6] ।।
राम रजाइ मेट मन माहीं । देखा सुना कतहुँ कोउ नाहीं ।।
सो मैं सब विधि कीन्हि ढिठाई । प्रभु मानी सनेह सेवकाई ।।

दो०—कृपा भलाई आपनी नाथ ! कीन्ह भल मोर ।
दूषन भे भूषन सरिस सुजसु चारु चहु ओर ।।२९८।।

राउरि रीति सुबानि बडाई । जगत विदित निगमागम गाई ।।
कूर कुटिल खल कुमति कलंकी । नीच निसील[1] निरीस[2] निसंकी ।।
तेउ सुनि सरन सामुहे आए । सकृत प्रणामु किहे[3] अपनाए ।।
देखि दोष कबहुँ न उर आने । सुनि गुन साधु समाज बखाने ।।
को साहिब सेवकहि नेवाजी । आपु समाज साज[4] सब साजी ।।
निज करतूति न समुझिअ सपने । सेवक सकुच सोचु उर अपने ।।
सो गोसाइँ नहिं दूसर कोपी[5] । भुजा उठाइ कहउँ पन रोपी[6] ।।
पसु नाचत सुक पाठ प्रवीना । गुन-गति-नट पाठक आधीना[7] ।।

दो०—यों सुधारि सनमानि जन किए साधु सिरमोर ।
को कृपाल बिनु पालिहै बिरिदावलि बरजोर[8] ।।२९९।।

सोक सनेहँ कि बाल-सुभाएँ । आयउँ लाइ रजायसु बाएँ ।।
तबहुँ कृपाल ! हेरि निज ओरा । सबहि भाँति भल मानेउ मोरा ।।
देखेउँ पाय[1] सुमंगल मूला । जानेउँ स्वामि सहज अनुकूला ।।
बड़ें समाज बिलोकेउँ भागू । बडी चूक साहिब अनुरागू ।।
कृपा अनुग्रह अगु अघाई[2] । कीन्हि कृपानिधि ! सब अधिकाई ।।
राखा मोर दुलार गोसाईं ! अपने सील सुभायँ भलाईं ।।
नाथ ! निपट मैं कीन्हि ढिठाई । स्वामि-समाज सकोच बिहाई ।।
अविनय विनय जथारुचि[3] बानी। छमिहि देउ[4] अति आरति जानी ।।

---

२९८ २ अवहेलना की ३ बटोर कर ४ जगत में ५ अमृत और अमरता ६ विष और मृत्यु ।

२९९ १ शीलरहित, २ नास्तिक ३ करने पर ४ सेवकों के काम ५ कोऽपि कोई भी ६ प्रण रोप कर, दृढ़ता के साथ ७ नट की रस्सी (गुण) पर चलने और नाचने की कुशलता (गति) पाठक (पढ़ाने या सिखलाने वाले) के अधीन है, ८ बलपूर्वक ।

३०० १ पाँव, २ अग-अग अघा गया ३ जैसी रुचि हुई, वैसी ४ हे देव !

तुम्ह मुनि मातु सचिव सिख मानी। पालेहु पुहुमि[1] प्रजा रजधानी॥
दो०– मुखिआ मुख सो चाहिए खान पान कहुँ एक।
पालइ पोषइ सकल अँग तुलसी सहित बिबेक॥३१५॥
राजधरम सरबसु एतनोई[1]। जिमि मन माहँ मनोरथ गोई॥
बंधु प्रबोधु कीन्ह[2] बहु भाँती। बिनु अधार मन तोषु न साँती[3]॥
भरत सील गुर सचिव समाजू। सकुच सनेह बिबस रघुराजू॥
प्रभु करि कृपा पाँवरीं[4] दीन्ही। सादर भरत सीस धरि लीन्ही॥
चरनपीठ[5] करुनानिधान के। जनु जुग जामिक[6] प्रजा प्रान के॥
संपुट[7] भरत सनेह रतन के। आखर जुग[8] जनु जीव जतन के॥
कुल कपाट[9] कर कुसल करम के। बिमल नयन सेवा-सुधरम के॥
भरत मुदित अवलंब लहे तें[10]। अस सुख जस सिय रामु रहे तें॥३१६॥

(७१) नन्दिग्राम मे भरत

(दोहा संख्या ३१६ से दोहा-संख्या ३२३/४। विदा के समय कुटिल इन्द्र द्वारा लोगों के चित्त का उचाट, जो राम के वियोग की अवधि पार करने के लिए संजीवन प्रमाणित हुआ। राम द्वारा भरत का निश्छल आलिंगन और अश्रुपात तथा दोनों का प्रेम देखकर मुनियों, वशिष्ठ और जनक की भावमग्नता। राम द्वारा शत्रुघ्न का आलिंगन। [illegible] जनक की, विश्वामित्र आदि ऋषियों, पुरवासी कुटुम्बीजन, कैकेयी अन्य माताओं, वशिष्ठ और वशिष्ठपत्नी को राम लक्ष्मण और सीता का प्रणाम और विदाई। राम द्वारा निषादराज की विदाई। वटवृक्ष के नीचे राम सीता और लक्ष्मण का प्रियजनों के वियोग में विषाद। राम का देवताओं को आश्वासन तथा सीता और लक्ष्मण के साथ पर्णकुटी में विश्राम।

वशिष्ठ, भरत, [illegible] आदि की मार्ग में विश्रान्ति, पहले दिन यमुना, दूसरे दिन गंगा और तीसरे दिन सई नदी के बाद गोमती पार कर, चौथे दिन अयोध्या आगमन। जनक द्वारा चार दिन ठहर कर राजकाज की व्यवस्था और उनका [illegible]। अयोध्यावासियों का राम के पुनः दर्शन के लिए व्रत उपवास

---

३१५ १ पृथ्वी।

३१६ १ इतना ही २ भाई को समझाया ३ शान्ति ४ खड़ाऊ ५ खड़ाऊँ ६ पहरेदार ७ डिबिया ८ दो अक्षर (राम नाम) ९ रघुकुल की रक्षा करने वाले दो किवाड़ १० अवलम्ब पाने से।

सचिवों और सेवकों को राजप्रबंध और शत्रुघ्न को माताओं की सेवा का भार सौंपने, ब्राह्मणों से उचित आदेश के लिए प्रार्थना करने तथा पुरजन और प्रजा को परामर्श देने के बाद भरत का शत्रुघ्न के साथ गुरु वसिष्ठ के यहाँ गमन।)

सानुज गे गुर गेहँ बहोरी। करि दंडवत कहत कर जोरी॥
आयसु होइ त रहौं सनेमा[1]। बोले मुनि तन पुलकि सपेमा॥
समुझब कहब करब तुम्ह जोई। धरम सारु जग होइहि सोई॥
दो०—सुनि सिख पाइ असीस बड़ि गनक[2] बोलि दिनु साधि[3]।
सिंघासन प्रभु पादुका बैठारे निरुपाधि[4]॥३२३॥

राम मातु गुर पद सिरु नाई। प्रभु पद पीठ रजायसु[1] पाई॥
नंदिगावँ करि परन कुटीरा। कीन्ह निवासु धरम धुर धीरा[2]॥
जटाजूट सिर मुनिपट धारी। महि खनि[3] कुस साँथरी सँवारी॥
असन बसन बासन ब्रत नेमा। करत कठिन रिषिधरम[4] सप्रेमा॥
भूषन बसन भोग सुख भूरी। मन तन बचन तजे तिन तूरी[5]॥
अवध राजु सुर राजु सिहाई। दसरथ धनु सुनि धनदु[6] लजाई॥
तेहिं पुर बसत भरत बिनु रागा[7]। चंचरीक[8] जिमि चंपक-बागा॥
रमा बिलासु[9] राम अनुरागी। तजत बमन जिमि जन बड़भागी॥
दो०—राम-पेम भाजन भरतु बड़े न एहिं करतूति।
चातक-हंस सराहिअत टेंक बिबेक बिभूति॥३२४॥

देह दिनहुँ दिन दूबरि होई। घटइ तेजु बलु मुखछबि सोई॥
नित नव राम प्रेम-पनु पीना[1]। बढ़त धरम दलु मनु न मलीना॥
जिमि जलु निघटत[2] सरद प्रकासे[3]। बिलसत बेतस[4] बनज बिकासे॥
सम दम संजम नियम उपासा[5]। नखत[6] भरत हिय बिमल अकासा॥

---

३२३ १ नियमपूर्वक २ ज्योतिषी, ३ दिन निकलवा कर, ४ बिना किसी बाधा के।

३२४ १ प्रभु रामचन्द्र की चरण-पादुकाओं की आज्ञा, २ धर्म की धुरी धारण करने में धीर (दृढ़) धैर्यवान धर्मात्मा ३ धरती खोद कर, ४ ऋषिधर्म, ५ तृण तोड़ कर प्रतिज्ञा कर ६ धनद कुबेर ७ राग आसक्ति, ८ भौंरा, ९ रमा (लक्ष्मी) का विलास अर्थात सम्पत्ति का भोग।

३२५ १ पीन पुष्ट, २ घटता है, ३ शरत के प्रकाश से, ४ बेंत, ५ उपवास, ६ नक्षत्र।

ध्रुव बिस्वासु[7] अवधि राका सी[8]। स्वामि-सुरति सुरबीथि[9] बिकासी ॥
राम पेम बिधु अचल अदोषा। सहित समाज सोह नित चोखा[10]॥

(७२) तुलसी की भरत-महिमा

भरत रहनि समुझनि करतूती। भगति बिरति गुन, बिमल बिभूती ॥
बरनत सकल सुकबि सकुचाहीं। सेस गनेस गिरा-गमु[11] नाहीं ॥

दो०–नित पूजत प्रभु पाँवरी प्रीति न हृदयँ समाति।
मागि मागि आयसु करत राज-काज बहु भाँति ॥३२५॥

पुलक गात हियँ सिय रघुबीरू। जीह नामु जप लोचन नीरू ॥
लखन राम सिय कानन बसहीं। भरतु भवन बसि तप तनु कसहीं[1]॥
दोउ दिसि समुझि कहत सबु लोगू। सब बिधि भरत सराहन जोगू ॥
सुनि ब्रत-नेम साधु सकुचाहीं। देखि दसा मुनिराज लजाहीं ॥
परम पुनीत भरत आचरनू। मधुर मंजु मुद मंगल-करनू[2] ॥
हरन कठिन कलि-कलुष-कलेसू। महामोह निसि दलन दिनेसू[3] ॥
पाप पुंज कुंजर मृगराजू[4]। समन सकल संताप समाजू ॥
जन रंजन भंजन भव भारू[5]। राम सनेह सुधाकर सारू[6] ॥

छं०–सिय राम प्रेम पियूष पूरन होत जनमु न भरत को।
मुनि मन अगम[7] जम नियम सम दम बिषम ब्रत आचरत को[8]॥
दुख दाह दारिद[9] दंभ दूषन सुजस मिस अपहरत को[10] ॥
कलिकाल तुलसी से सठन्हि हठि[11] राम सनमुख करत को ॥

सो०–भरत चरित करि नेमु तुलसी जो सादर सुनहिं।
सीय राम पद पेमु अवसि होइ भव रस बिरति[12] ॥ ३२६ ॥

---

३२५ ७ भरत का विश्वास ध्रुव नक्षत्र है, ८ चौदह वर्षों की अवधि पूर्णिमा के समान है, ९ आकाशगंगा, १० सुन्दर, ११ गम (पहुँच)।

३२६ १ कसते हैं, २ आनन्द और कल्याण करने वाला, ३ दिनेश सूर्य, ४ पापों के समूह-रूपी हाथी के लिए सिंह-जैसा, ५ संसार का भार दूर करने वाला, ६ राम के स्नेह-रूपी चन्द्रमा का अमृत, ७ मुनि के मन के लिए भी अगम, ८ कौन आचरण या पालन करता, ९ दरिद्रता १० कौन दूर करता ११ हठपूर्वक, जबरदस्ती, १२ सांसारिक विषयों के रस के प्रति विराग।

(७३) नारी धर्म

(छन्द संख्या १ से ४ इन्द्र के पुत्र जयन्त का काग रूप में सीता के चरण पर चोंच से आघात और पलायन, राम का क्रोध उनके ब्रह्म शर का भागते हुए जयन्त का लोक लोक में अनुगमन और उसकी विकलता पर द्रवित नारद का उसे राम की शरणागति के लिए परामर्श, राम द्वारा उसे केवल काना बना कर क्षमादान, चित्रकूट में राम के अनेक कृत्य, अपने पास लोगों की भीड़ बढ़ने के अनुमान के कारण राम का मुनि से विदा होकर, दूसरे स्थान के लिए प्रस्थान उनका अत्रि के आश्रम में आगमन ऋषि का सम्मान तथा ऋषि द्वारा भक्ति के वर के लिए, राम की स्तुति।)

अनुसुइया के पद गहि सीता। मिली बहोरि सुसील, बिनीता॥
रिषिपतिनी मन सुख अधिकाई। आसिष देई निकट बैठाई॥
दिव्य बसन भूषन पहिराए। जे नित नूतन अमल[१] सुहाए॥
कह रिषिबधू सरस मृदु बानी। नारिधम कछु ब्याज[२] बखानी॥
"मातु पिता भ्राता हितकारी। मितप्रद[३] सब सुनु राजकुमारी॥
अमित दानि भर्ता, बयदेही[४]। अधम सो नारि जो सेव न तेही॥
धीरज धर्म मित्र अरु नारी। आपद काल परिखिअहिं[५] चारी॥
बृद्ध, रोगबस जड़ धनहीना। अंध बधिर क्रोधी अति दीना॥
ऐसेहु पति कर किएँ अपमाना। नारि पाव जमपुर दुख नाना॥
एकइ धर्म, एक ब्रत नेमा। कायँ बचन मन पति-पद प्रेमा॥
जग पतिब्रता चारि बिधि अहहीं। बेद पुरान-संत सब कहहीं॥
उत्तम के अस बस मन माहीं। सपनेहुँ आन पुरुष जग नाहीं॥
मध्यम परपति देखइ कैसें। भ्राता पिता पुत्र निज जैसें॥

---

५ १ निर्मल, स्वच्छ, २ बहाने (से), ३ एक सीमा तक ही (सुख) प्रदान करने वाले, ४ हे वैदेही! पति (भर्ता) असीम सुख देने वाला होता है, ५ परीक्षा होती है।

धम विचारि समुझि कुल रहई। सो निकिष्ट त्रिय[६] श्रुति अस कहई।।
बिनु अवसर भय त रह जोई। जानहु अधम नारि जग सोई।।
पति-बंचक[७] परपति रति करई। रौरव नरक[८] कल्प सत परई।।
छन सुख लागि[९] जनम सत-कोटी। दुख न समुझ तेहि सम को खोटी।।
बिनु श्रम नारि परम गति लहई। पतिब्रत धर्म छाडि छल गहई।।
पति प्रतिकूल जनम जहँ जाई। बिधवा होइ पाइ तरुनाई।।

सो०—सहज अपावनि नारि पति सेवत सुभ गति लहइ।
जसु गावत श्रुति चारि अजहुँ तुलसिका[१०] हरिहि प्रिय ।।५(क)।।
सुनु सीता! तव नाम सुमिरि नारि पतिब्रत करहिं।
तोहि प्रानप्रिय राम कहिउँ कथा ससार हित ।।५(ख)।।

(७४) शरभंग

(छन्द सख्या ६ से ७/७ माग म विराध का वध और उसकी मुक्ति।)

पुनि आए जहँ मुनि सरभगा। सुदर अनुज जानकी-सगा।।

दो०— दखि राम मुख पकज मुनिवर - लोचन भृग।
सादर पान करत अति धन्य जन्म सरभग ।।७।।

कह मुनि सुनु रघुबीर कृपाला! सकर मानस - राजमराला[१]।।
जात रहेउँ बिरचि के धामा। सुनेउँ श्रवन बन ऐहहिं रामा।।
चितवत पथ रहेउँ दिन राती। अब प्रभु देखि जुडानी छाती।।
नाथ! सकल साधन मैं हीना। कीन्ही कृपा जानि जन दीना।।
सो कछु देव! न मोहि निहोरा[२]। निज पन राखेउ जन मन चोरा[३]।।
तब लगि रहहु दीन हित लागी। जब लगि मिलौं तुम्हहि तनु त्यागी।।
जोग, जग्य जप, तप व्रत कीन्हा। प्रभु कहँ देइ[४], भगति बर लीन्हा।।
एहि बिधि सर[५] रचि मुनि सरभगा। बैठ हृदयँ छाडि सब सगा।।

---

५. ६ निम्न कोटि की (निकृष्ट) स्त्री, ७ पति को धोखा देने वाली, ८ रौरव नरक (एक प्रकार का नरक), ६ क्षणिक सुख के लिए १० तुलसी (जालधर की पतिव्रता पत्नी वृन्दा)।

८ १ ह शिव के हृदय-रूपी मानसरोवर के राजहस! २ उपकार, एहसान, ३ ह भक्त के मन के चोर! ४ प्रभु को अर्पित कर, ५ चिता।

दो०—सीता - अनुज - समेत प्रभु नील - जलद - तनु - स्याम ।
मम हियँ बसहु निरंतर सगुनरूप श्रीराम ॥ ८ ॥"
अस कहि, जोग-अगिनि[1] तनु जारा । राम-कृपाँ बैकुंठ सिधारा ॥
तातें मुनि हरि-लीन न भयऊ । प्रथमहिं भेद-भगति-[2] बर लयऊ ॥९॥

(७५) सुतीक्ष्ण

[छन्द-संख्या ९ (शेषांश) शरभंग की गति पर मुनियों का हर्ष, वन में बहुत-से मुनियों के साथ राम की यात्रा, मुनियों की अस्थियों का समूह देख कर राम द्वारा पृथ्वी को निशाचर-हीन करने की शपथ ।]

मुनि अगस्ति कर सिष्य सुजाना । नाम सुतीछन, रति-भगवाना ॥
मन-क्रम-बचन राम-पद-सेवक । सपनेहुँ आन भरोस न देवक[1] ॥
प्रभु-आगवनु श्रवन सुनि पावा । करत मनोरथ आतुर धावा ॥
"हे बिधि ! दीनबंधु रघुराया । मो से सठ पर करिहहिं दाया ॥
सहित-अनुज मोहि राम गोसाईं । मिलिहहिं निज सेवक की नाईं ॥
मोरे जियँ भरोस दृढ़ नाहीं । भगति, बिरति न ग्यान मन माहीं ॥
नहिं सतसंग, जोग, जप, जागा । नहिं दृढ़ चरन-कमल अनुरागा ॥
एक बानि[2] करुनानिधान की । सो प्रिय जाकें, गति न आन की ॥
होइहैं सुफल आजु मम लोचन । देखि बदन-पंकज भव मोचन ॥
निर्भर[3] प्रेम-मगन मुनि ग्यानी । कहि न जाइ सो दसा, भवानी ॥
दिसि अरु बिदिसि पंथ नहिं सूझा । को मैं, चलेउँ कहाँ, नहिं बूझा ॥
कबहुँक फिरि पाछें पुनि जाई । कबहुँक नृत्य करइ गुन गाई ॥
अबिरल प्रेम-भगति मुनि पाई । प्रभु देखैं तरु-ओट लुकाई ॥
अतिसय प्रीति देखि रघुबीरा । प्रगटे हृदयँ हरन भव-भीरा[4] ॥
मुनि मग माझ अचल होइ बैसा । पुलक सरीर पनस-फल जैसा[5] ॥
तब रघुनाथ निकट चलि आए । देखि दसा निज जन, मन भाए ॥

---

९. १ योग की अग्नि (से), २ भेद-भक्ति, वह भक्ति, जिसमें भक्त का प्रभु से स्वतन्त्र अस्तित्व बना रहता है ।

१०. १ देवता का, २ स्वभाव, ३ परिपूर्ण, ४ सांसारिक भय (आवागमन का भय), ५ कटहल के फल की तरह कंटकित ।

मुनिहि राम बहु भाँति जगावा । जाग न, ध्यान जनित[६] सुख पावा ॥
भूप-रूप तव राम दुरावा । हृदयँ चतुर्भुज रूप देखावा ॥
मुनि अकुलाइ उठा तव कैसे । बिकल हीन-मनि फनिबर[७] जैसें ॥
आगे देखि राम-तन स्यामा । सीता-अनुज-सहित सुख धामा ॥
परेउ लकुट-इव चरनन्हि लागी । प्रेम-मगन मुनिवर बड़भागी ॥
भुज बिसाल गहि लिए उठाई । परम प्रीति राखे उर लाई ॥
मुनिहि मिलत अस सोह कृपाला । कनक-तरुहि जनु भेंट तमाला[८] ॥
राम-बदनु बिलोक मुनि ठाढ़ा । मानहुँ चित्र माझ लिखि काढ़ा ॥

दो०–तव मुनि हृदयँ धीर धरि, गहि पद बारहिं बार ।
निज आश्रम प्रभु आनि, करि पूजा बिबिध प्रकार ॥१०॥

कह मुनि "प्रभु ! सुनु बिनती मोरी । अस्तुति करौं कवन विधि तोरी ॥
महिमा अमित, मोरि मति थोरी । रवि सन्मुख खद्योत अँजोरी[१] ॥
जदपि बिरज[२], ब्यापक, अबिनासी । सब के हृदयँ निरंतर-बासी ॥
तदपि अनुज-श्री[३]-सहित खरारी[४] । बसतु मनसि मम, काननचारी[५] ॥
अस अभिमान जाइ जनि भोरे[६] । मैं सेवक, रघुपति पति मोरे ॥११॥"

(७६) ज्ञान और भक्ति

[छन्द संख्या ११ (शेषांश) से १४ सुतीक्ष्ण के हृदय में सीता और लक्ष्मण सहित सदा निवास करने का वर, सुतीक्ष्ण के साथ सब का अगस्त्य आश्रम में पहुँचने पर ऋषि द्वारा राम की पूजा, तथा राम को, राक्षसों के विनाश के लिए दण्डक वन को शापमुक्त कर, पंचवटी में निवास करने का परामर्श, पंचवटी में निवास । एक बार लक्ष्मण के पूछने पर राम द्वारा उनके प्रश्नों का समाधान ।]

---

१०. ६ ध्यान से उत्पन्न, ७ मणि-विहीन सर्पराज, ८ जैसे सोने के वृक्ष (सुतीक्ष्ण) से तमाल का वृक्ष (राम) मिल रहा हो ।

११ १ खद्योतों (जुगनुओं) का प्रकाश, २ निर्मल, ३ सीता (श्री), ४ हे खर नामक राक्षस के शत्रु ! ५ वन में विचरण करने वाले, ६ भूल कर भी ।

थोरेहि महँ सब कहउँ बुझाई। सुनहु तात ! मति-मन-चित लाई॥
मैं अरु मोर, तोर-तैं माया[1]। जेहिं बस कीन्हे जीव-निकाया[2]॥
गो-गोचर[3] जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानेहु भाई॥
तेहि कर भेद सुनहु तुम्ह सोऊ। बिद्या, अपर[4] अबिद्या दोऊ॥
एक दुष्ट, अतिसय दुखरूपा। जा बस जीव परा भवकूपा[5]॥
एक रचइ जग, गुन बस जाकें। प्रभु-प्रेरित, नहिं निज बल ताकें॥
ग्यान, मान जहँ एकउ नाहीं। देख ब्रह्म-समान सब माहीं॥
कहिअ तात ! सो परम बिरागी। तृन सम *सिद्धि, तीनि गुन त्यागी[6]॥
दो०— माया, ईस, न आपु कहुँ जान, कहिअ सो जीव।
बंधमोच्छ-प्रद, सर्बपर[7], माया प्रेरक सीव[8]॥ १५॥

धर्म ते बिरति, जोग तें ग्याना। ग्यान मोच्छप्रद बेद बखाना॥
जातें बेगि द्रवउँ[1] मैं भाई। सो मम भगति, भगत-सुखदाई॥
सो सुतंत्र[2] अवलंब न आना। तेहि आधीन ग्यान-बिग्याना॥
भगति तात ! अनुपम सुखमूला। मिलइ, जो संत होईं अनुकूला॥
भगति कि साधन कहउँ बखानी। सुगम पंथ मोहि पावहिं प्रानी॥
प्रथमहिं बिप्र-चरन अति प्रीती। निज निज कर्म निरत *श्रुति-रीती[3]॥
एहि कर फल पुनि बिषय-बिरागा। तब मम धर्म उपज अनुरागा॥
श्रवनादिक नव भक्ति[4] दृढ़ाहीं। मम लीला-रति अति मन माहीं॥
संत-चरन-पंकज अति प्रेमा। मन-क्रम-बचन भजन, दृढ़ नेमा॥
गुरु, पितु, मातु, बंधु, पति, देवा। सब मोहि कहँ जानै, दृढ़ सेवा॥
मम गुन गावत पुलक सरीरा। गदगद गिरा, नयन बह नीरा॥
काम आदि मद दंभ न जाकें। तात ! निरंतर बस मैं ताकें॥
दो०—बचन-कर्म-मन मोरि गति, भजनु करहिं निःकाम[5]।
तिन्ह के हृदय कमल महुँ करउँ सदा बिश्राम॥ १६॥

---

१५ १ यह मैं हूँ, यह मेरा है, यह तुम्हारा है और यह तुम हो — यही माया है, २ जीवों के समुदाय (को), ३ इन्द्रियगम्य वस्तु, ४ और, ५ संसार-रूपी कूप, ६ तिनकों की तरह तुच्छ जान कर सभी सिद्धियों और तीनों गुणों (सत्त्व, रज और तम) का त्याग कर, ७ सब से परे, ८ शिव (अर्थात, ईश्वर)।

१६ १ द्रवित (प्रसन्न) होता हूँ, २ स्वतंत्र, ३ वैदिक रीति (के अनुसार), ४ नौ प्रकार की भक्तियों (मे)। नवधा भक्ति के नाम इस प्रकार हैं—श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दासता, सख्य और आत्मनिवेदन। ५ कामना या इच्छा से रहित हो कर।

(७७) शूर्पणखा

भगति जोग सुनि अति सुख पावा। लछिमन प्रभु चरनन्हि सिरु नावा॥
एहि विधि गए कछुक दिन बीती। कहत बिराग ग्यान गुन नीती॥
सूपनखा रावन के बहिनी। दुष्ट हृदय, दारुन जस अहिनी[1]॥
पचबटी सो गइ एक बारा। देखि बिकल भइ जुगल कुमारा॥
भ्राता, पिता, पुत्र, उरगारी[2]। पुरुष मनोहर निरखत नारी॥
होइ बिकल, सक मनहि न रोकी। जिमि रबिमनि[3]द्रव रबिहि बिलोकी॥
रुचिर[4] रूप धरि प्रभु पहिं जाई। बोली बचन बहुत मुसुकाई॥
"तुम्ह-सम पुरुष न मो-सम नारी। यह सँजोग[5] बिधि रचा बिचारी॥
मम अनुरूप पुरुष जग माहीं। देखेउँ खोजि, लोक तिहु नाहीं॥
तातें अब लगि रहिउँ कुमारी। मनु माना कछु[6] तुम्हहिं निहारी॥"
सीतहि चितइ कही प्रभु बाता। "अहइ कुआर मोर लघु भ्राता॥"
गइ, लछिमन रिपु-भगिनी[7]जानी। प्रभु बिलोकि बोले मृदु बानी॥
"सुंदरि! सुनु मैं उन्ह कर दासा। पराधीन नहिं तोर सुपासा[8]॥
प्रभु समर्थ, कोसलपुर-राजा। जो कछु करहिं, उनहि सब छाजा[9]॥
सेवक सुख चह, मान भिखारी। ब्यसनी धन, सुभ गति बिभिचारी[10]॥
लोभी जसु चह, चार गुमानी[11]। नभ दुहि दूध चहत ए प्रानी॥"
पुनि फिरि राम-निकट सो आई। प्रभु लछिमन पहिं बहुरि पठाई॥
लछिमन कहा, "तोहि सो बरई। जो तृन तोरि लाज परिहरई॥"
तब खिसिआनि राम पहिं गई। रूप भयंकर प्रगटत भई॥
सीतहि सभय देखि रघुराई। कहा अनुज सन सयन बुझाई[12]॥
दो०—लछिमन अति लाघवँ सो[13] नाक कान बिनु कीन्हि।
ताके कर रावन कहँ मनो चुनौती दीन्हि॥ १७॥
नाक-कान बिनु भइ बिकरारा[1]। जनु स्रव सैल गेरु कै धारा[2]॥

---

१७. १ सर्पिणी, २ हे उरगों (सर्पों) के अरि (शत्रु), गरुड! ३ सूर्यकान्त-मणि, ४ सुन्दर, ५ जोड़ा, ६ मन कुछ माना (रीझा) है, ७ शत्रु की बहन, ८ मैं पराधीन हूँ, अत तुम मुझसे सुख की आशा मत करो, ९ अच्छा लगता है, शोभा देता है, १० व्यभिचारी, ११ अभिमानी चारों फल (अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष) चाहे, १२ सकेत से समझा कर, १३ फुरती से।

१८ १ विकराल, डरावनी; २ मानों (कटी हुई नाक-रूपी) पर्वत से (रक्त-रूपी) गेरु की धारा बह रही हो।

खर-दूषन पहिं गइ विलपाता । धिग-धिग तव पौरुष बल भ्राता ॥
तेहिं पूछा, सब कहेसि बुझाई । जातुधान सुनि, सेन बनाई[3] ॥
धाए निसिचर-निकर बरूथा[4] । जनु सपच्छ कज्जल गिरि-जूथा[5] ॥
नाना बाहन, नानाकारा[6] । नानायुध-धर[7], घोर, अपारा ॥
सूपनखा आगें करि लीनी । असुभ रूप श्रुति-नासा हीनी[8] ॥
असगुन अमित होहिं भयकारी । गनहिं न मृत्यु बिबस सब झारी[9] ॥१८॥

(७८) रावण का संकल्प

[छन्द-संख्या १८ (शेषांश) से २२/१२ राम का, राक्षसों की सेना देख कर, सीता को गिरि-कन्दरा में ले जाने के लिए लक्ष्मण को आदेश, और अकेले युद्ध, खरदूषण के दूतों का राम को, सीता का समर्पण कर सन्धि कर लेने का, सन्देश राम का अस्वीकार और राक्षसों से भयानक युद्ध, खरदूषण और त्रिशिरा-सहित राक्षसों का विनाश, शूर्पणखा द्वारा रावण की भर्त्सना, और अपना अपमान करने वाले राजकुमारों का परिचय, शूर्पणखा से खर, दूषण और त्रिशिरा की मृत्यु का समाचार पाने पर रावण का क्रोध ।]

दो०—सूपनखहि समुझाइ करि बल बोलेसि बहु भाँति ।
गयउ भवन अति सोचबस नीद परइ नहिं राति ॥ २२ ॥

सुर, नर, असुर नाग, खग माहीं । मोरे अनुचर कहँ कोउ नाहीं[1] ॥
खर-दूषन मोहि सम बलवंता । तिन्हहि को मारइ बिनु भगवंता[2] ॥
सुर रंजन[3], भंजन महि-भारा । जौं भगवंत लीन्ह अवतारा ॥
तौ मैं जाइ बैरु हठि करऊँ । प्रभु-सर प्रान तजें भव तरऊँ ॥
होइहि भजनु न तामस देहा । मन-क्रम बचन, मंत्र[4] दृढ़ एहा ॥
जौं नररूप भूपसुत कोऊ । हरिहउँ नारि जीति रन दोऊ ॥

---

१८ ३ सुन कर यातुधानों (राक्षसों) की सेना बनायी ४ झुण्ड-के-झुण्ड राक्षस-समूह दौड़ पड़े ५ मानो पंखदार काले पहाड़ों का झुण्ड हो ६ विभिन्न आकारों वाले, ७ विभिन्न हथियार लिये हुए, ८ कान और नाक से रहित, ९ समूह ।

२३ १ कोई मेरे सेवक तक की बराबरी का नहीं है, २ भगवान् ३ देवों को आनन्द देने वाले, निश्चय ।

(७६) छाया-सीता

दो०—लछिमन गए बनहि जब लेन मूल-फल-कंद।
जनकसुता सन बोले बिहँसि कृपा-सुख बृंद॥ २३॥
'सुनहु प्रिया! ब्रत रुचिर सुसीला। मैं कछु करिब ललित[1]नरलीला॥
तुम्ह पावक महुँ करहु निवासा। जौ लगि करौं निसाचर-नासा॥"
जबहिं राम सब कहा बखानी। प्रभु पद धरि हियँ अनल[2]समानी॥
निज प्रतिबिंब[3] राखि तहँ सीता। तैसइ सील रूप-सुबिनीता॥
लछिमनहूँ यह मरमु न जाना। जो कछु चरित रचा भगवाना॥ २४॥

(८०) कनक-मृग

[छन्द-संख्या २४ (शेषांश) से २६ : रावण का समुद्रतट पर मारीच के यहाँ गमन और उससे सीता के हरण के लिए कपटमृग बनने का आग्रह, मारीच द्वारा राम की ब्रह्मरूपता और पराक्रम का कथन, तथा उनसे वैर नहीं करने का परामर्श, रावण का क्रोध देख कर मारीच का राम के शर से मर कर मुक्त होने का निश्चय और मार्ग में उनके दर्शन की कल्पना से हर्ष।]

तेहि बन निकट दसानन गयऊ। तब मारीच कपटमृग भयऊ॥
अति बिचित्र कछु बरनि न जाई। कनक-देह मनि-रचित बनाई॥
सीता परम रुचिर मृग देखा। अंग-अंग सुमनोहर बेषा॥
"सुनहु देव! रघुबीर कृपाला! एहि मृग कर अति सुंदर छाला॥
सत्यसंध प्रभु! बधि करि एही। आनहु चर्म", कहति बैदेही॥
तब रघुपति जानत सब कारन। उठे हरषि सुर काजु सँवारन॥
मृग बिलोकि, कटि परिकर[1]बाँधा करतल चाप, रुचिर सर साँधा॥
प्रभु लछिमनहि कहा समुझाई। "फिरत बिपिन निसिचर बहु भाई॥
सीता केरि करेहु रखवारी। बुधि बिबेक बल,समय बिचारी॥"
प्रभुहि बिलोकि चला मृग भाजी। धाए रामु सरासन साजी॥
निगम नेति, सिव ध्यान न पावा। मायामृग पाछें सो धावा॥
कबहुँ निकट, पुनि दूरि पराई। कबहुँक प्रगटइ, कबहुँ छपाई॥
प्रगटत-दुरत करत छल भूरी। एहि बिधि प्रभुहि गयउ लै दूरी॥

---

२४ १ सुन्दर, २ अग्नि, ३ छाया।
२७. १ फेंटा।

तब तकि राम कठिन सर मारा। धरनि परेउ करि घोर पुकारा॥
लछिमन कर प्रथमहिं लै नामा। पाछें सुमिरेसि मन महुँ रामा॥
प्रान तजत प्रगटेसि निज देहा। सुमिरेसि रामु समेत-सनेहा॥
अंतर-प्रेम[२] तासु पहिचाना। मुनि-दुर्लभ-गति दीन्हि सुजाना॥

(८१) सीता-हरण

आरत गिरा[१] सुनी जब सीता। कह लछिमन सन परम सभीता॥
"जाहु बेगि, संकट अति भ्राता।" लछिमन बिहसि कहा, "सुनु माता॥
भृकुटि-बिलास सृष्टि लय होई[२]। सपनेहुँ संकट परइ कि सोई॥"
मरम बचन[३] जब सीता बोला। हरि-प्रेरित लछिमन मन डोला॥
बन-दिसि देव[४] सौंपि सब काहू। चले जहाँ रावन-ससि-राहू[५]॥
सून[६] बीच दसकंधर देखा। आवा निकट जती[७] कें बेषा॥
जाकें डर सुर-असुर डेराहीं। निसि न नींद, दिन अन्न न खाहीं॥
सो दससीस स्वान[८] की नाईं। इत-उत चितइ चला भड़िहाईं[९]॥
इमि कुपथ पग देत खगेसा! रह न तेज तन बुधि-बल-लेसा॥
नाना बिधि करि कथा सुहाई। राजनीति, भय, प्रीति देखाई॥
कह सीता, "*सुनु जती गोसाईं! बोलेहु बचन दुष्ट की नाईं॥*"
तब रावन निज रूप देखावा। भई सभय जब नाम सुनावा॥
कह सीता धरि धीरज गाढ़ा। 'आइ गयउ प्रभु, रहु खल! ठाढ़ा॥
जिमि हरि बधुहि छुद्र सस चाहा[१०], भएसि कालबस निसिचर-नाहा॥"
सुनत बचन दससीस रिसाना। मन महुँ चरन बंदि सुख माना॥
दो०—क्रोधवंत तब रावन लीन्हिसि रथ बैठाइ।
चला गगनपथ आतुर, भयँ रथ हाँकि न जाइ॥ २८॥

(८२) राम की व्याकुलता

(छन्द-संख्या २९ से ३०/५ मार्ग में सीता का विलाप सुन कर जटायु की रावण को चुनौती और युद्ध, तलवार से जटायु के पंख

---

२७. २ हृदय का प्रेम।

२८ १ करुण पुकार, २ जिसके भौंह चलाने भर से समस्त सृष्टि नष्ट हो जाती है, ३ चोट पहुँचाने वाली बात, ४ वन और दिशाओं के देवता, ५ रावण-रूपी चन्द्रमा के *राहु, राम, ६ एकान्त, ७ साधु, ८ कुत्ता, ९ चोरी, १० मानों सिंह की पत्नी (सिंहिनी) को नीच खरहा ले जाना चाहता हो।

काट कर रावण की, आकाशमार्ग से रथ पर यात्रा, पर्वत पर बैठे कपियों के पास सीता का, राम का नाम पुकारते हुए, वस्त्र गिराना, लंका के अशोकवन में सीता का वृक्ष के नीचे निवास।

लक्ष्मण को देख कर अकेली सीता के लिए राम की चिन्ता और आश्रम की ओर वापसी।)

आश्रम देखि जानकी-हीना। भए बिकल जस प्राकृत दीना[१]॥
"हा गुन खानि जानकी! सीता! रूप-सील-ब्रत-नेम-पुनीता॥"
लछिमन समुझाए बहु भाँती। पूछत चले लता-तरु पाँती॥
"हे खग-मृग! हे मधुकर-श्रेनी[२]! तुम्ह देखी सीता मृगनैनी॥
खंजन, सुक, कपोत, मृग, मीना[३]। मधुप-निकर, कोकिला प्रबीना[४]॥
कुंद-कली, दाड़िम, दामिनी[५]। कमल, सरद-ससि, अहिभामिनी[६]॥
बरुन-पास, मनोज-धनु, हंसा[७]। गज, केहरि निज सुनत प्रसंसा[८]॥
श्रीफल, कनक, कदलि हरषाहीं[९]। नेकु न संक-सकुच मन माहीं॥
सुनु जानकी! तोहि बिनु आजू। हरषे सकल पाइ जनु राजू॥
किमि सहि जात अनख तोहि पाहीं[१०]। प्रिया बेगि प्रगटसि कस नाहीं॥"
एहि बिधि खोजत, बिलपत स्वामी। मनहुँ महा बिरही, अति कामी॥
पूरनकाम राम सुख-रासी। मनुज-चरित कर अज-अबिनासी॥

(८३) जटायु की सद्गति

आगें परा गीधपति[११] देखा। सुमिरत राम-चरण जिन्ह रेखा[१२]॥

---

३०. १ साधारण मनुष्य की तरह दीन, २ भौंरों के झुण्ड, ३–९ (यहाँ उपमानों के हर्षित होने का उल्लेख है।) सीता की आँखों के समान खंजन, नासा के समान सुग्गे, कण्ठ के समान कबूतर, नेत्रों के समान मृग और मछलियाँ, केशों के समान भौंरों की पंक्तियाँ, मधुर वाणी के समान बोली बोलने वाली प्रवीण कोयल, दाँतों के समान कुन्द की कलियाँ और अनार (के दाने), मुस्कराहट के समान बिजली, मुख के सदृश कमल और शरद्-कालीन चन्द्रमा, लटों जैसी सर्पिणी और वरुण का फन्दा, भौंहों के समान कामदेव का धनुष, गति का अनुसरण वाले हंस और हाथी तथा (सीता की)कमर-जैसी कमर वाले सिंह अपनी प्रशंसा सुन रहे हैं। तुम्हारे स्तनों-जैसे बेल, वर्ण जैसा कान्तिमान् सोना और जघा-जैसे केले प्रसन्न हो रहे हैं। (तुम्हारी उपस्थिति में इनकी प्रशंसा नहीं होती थी), १० यह अनख (स्पर्द्धा) तुमसे कैसे सही जा रही है? ११ जटायु, १२ वह राम के उन चरणों का स्मरण कर रहा है, जिनमें (कुलिश, कमल आदि की) रेखाएँ हैं।

दो०—कर-सरोज सिर परसेउ कृपासिंधु रघुबीर।
निरखि राम छबि धाम-मुख बिगत भई[13] सब पीर ॥ ३० ॥

तब कह गीध बचन धरि धीरा। "सुनहु राम ! भंजन भव-भीरा ॥
नाथ ! दसानन यह गति कीन्ही। तेहिं खल जनकसुता हरि लीन्ही ॥
लै दच्छिन दिसि गयउ गोसाईं ! बिलपति अति कुररी[1] की नाईं ॥
दरस लागि प्रभु ! राखेउँ प्राना। चलन चहत अब कृपानिधाना ॥'
राम कहा तनु राखहु ताता ! मुख मुसुकाइ कही तेहिं बाता ॥
'जा कर नाम मरत मुख आवा। अधमउ[2] मुकुत होइ श्रुति गावा ॥
सो मम लोचन गोचर आगें। राखौं देह नाथ ! केहि खाँगें[3] ॥"
जल भरि नयन कहहिं रघुराई। तात ! कर्म निज तें गति पाई ॥
परहित बस जिन्ह के मन माहीं। तिन्ह कहुँ जग दुर्लभ कछु नाहीं ॥
तनु तजि तात ! जाहु मम धामा। देउँ काह तुम्ह पूरनकामा ॥
दो०—सीता हरन तात ! जनि कहहु पिता सन जाइ।
जौं मैं राम त कुल सहित कहिहि दसानन आइ ॥ ३१ ॥'

(८४) नवधा भक्ति

(बाद सख्या ३२ से ३४/१ दिव्य वस्त्र-आभूषण सहित विष्णु रूप धारण कर गीध द्वारा राम की स्तुति और वैकुण्ठ-यात्रा, सीता की खोज मे राम और लक्ष्मण का वन भ्रमण माग मे कबन्ध वध और उसका गन्धर्व रूप धारण कर दुर्वासा के शाप का उल्लेख ब्राह्मण द्रोहियो के प्रति अपने विरोध का राम द्वारा उल्लेख और कवन्ध मोक्ष के बाद शबरी के आश्रम म आगमन।)

सबरी देखि राम गृहँ आए। मुनि के बचन समुझि जियँ भाए ॥
सरसिज-लोचन,बाहु बिसाला। जटा मुकुट सिर उर बनमाला ॥
स्याम गौर सुंदर दोउ भाई। सबरी परी चरन लपटाई ॥
प्रेम मगन मुख बचन न आवा। पुनि पुनि पद सरोज सिर नावा ॥
सादर जल लै चरन पखारे। पुनि सुंदर आसन बैठारे ॥

---

३० १३ दूर हो गयी।
३१ १ क्रौंची, २ अधम भी, ३ किस कमी के लिए।

दो०—कद, मूल फल सुरस[1] अति दिए राम कहुँ आनि।
प्रेम-सहित प्रभु खाए बारंबार बखानि ॥ ३४ ॥

पानि जोरि आगें भइ ठाढ़ी। प्रभुहि बिलोकि प्रीति अति बाढ़ी ॥
"केहि बिधि अस्तुति करौं तुम्हारी। अधम जाति मैं, जड़मति भारी ॥
अधम ते अधम, अधम अति नारी। तिन्ह महँ मैं मतिमंद अघारी[1] ॥"
कह रघुपति 'सुनु भामिनि ! बाता। मानउँ एक भगति कर नाता ॥
जाति, पाँति कुल, धर्म बड़ाई। धन, बल, परिजन, गुन, चतुराई ॥
भगति हीन नर सोहइ कैसा। बिनु जल बारिद[2] देखिअ जैसा ॥
नवधा भगति कहउँ तोहि पाहीं। सावधान सुनु, धरु मन माहीं ॥
प्रथम भगति संतन्ह कर संगा। दूसरि, रति[3] मम कथा प्रसंगा ॥
दो०—गुरु-पद पकंज सेवा तीसरि भगति अमान[4]।
चौथि भगति मम गुन गन करइ कपट तजि गान ॥ ३५ ॥

मंत्र-जाप मम दृढ़ बिस्वासा। पंचम, भजन सो बेद प्रकासा ॥
छठ, दम सील बिरति-बहु-करमा[1]। निरत निरंतर सज्जन धरमा ॥
सातवँ, सम मोहि-मय जग देखा। मोतें संत अधिक करि लेखा ॥
आठवँ, जथालाभ संतोषा[2]। सपनेहुँ नहिं देखइ परदोषा ॥
नवम, सरल सब सन छलहीना। मम भरोस हियँ, हरष न दीना ॥
नव, महुँ एकउ जिन्ह कें होई। नारि-पुरुष सचराचर कोई ॥
सोइ अतिसय प्रिय, भामिनि ! मोरें। सकल प्रकार भगति दृढ़ तोरें ॥
जोगि-बृंद-दुरलभ गति जोई। तो कहुँ आजु सुलभ भई सोई ॥
मम दरसन फल परम अनूपा। जीव पाव निज सहज सरूपा[3] ॥३६॥'

(८५) राम का विरह

[छन्द-संख्या ३६ (शेषांश) से ३७/१ शबरी का राम को परामर्श कि वह पम्पा सरोवर जायें, जहाँ उनकी मित्रता सुग्रीव से होगी, योग की अग्नि में अपनी देह त्याग कर शबरी द्वारा प्रभुपद की प्राप्ति।]

---

३४ १ स्वादिष्ट।

३५ १ हे पापनाशक ! २ बादल, ३ अनुराग ४ अभिमान रहित (हो कर)।

३६ १ बहुत कार्यों से वैराग्य २ जो कुछ मिल जाये, उससे संतोष, ३ अपना सहज (परमात्मा) स्वरूप।

बिरही-इव प्रभु करत बिषादा। कहत कथा, अनेक संबादा॥
"लछिमन! देखि बिपिन कइ[1] सोभा। देखत केहि कर मन नहिं छोभा॥
नारि-सहित सब खग-मृग बृंदा। मानहुँ मोरि करत हहिं निंदा॥
हमहि देखि मृग-निकर पराहीं[2]। मृगीं कहहिं, तुम्ह कहँ भय नाहीं॥
तुम्ह आनंद करहु मृग! जाए। कंचन-मृग खोजन ए आए॥
संग लाइ करिनी[3] करि[4] लेहीं। मानहुँ मोहि सिखावनु देहीं।
सास्त्र सुचिंतित पुनि-पुनि देखिअ। भूप सुसेवित, बस नहिं लेखिअ॥
राखिअ नारि जदपि उर माहीं। जुबती, सास्त्र, नृपति बस नाहीं॥
देखहु तात! बसंत सुहावा। प्रिया हीन मोहि भय उपजावा॥

दो०— बिरह बिकल, बलहीन मोहि जानेसि निपट अकेल।
सहित बिपिन, मधुकर, खग *मदन कीन्ह बगमेल[5]॥३७(क)॥
देखि गयउ भ्राता सहित तासु दूत सुनि बात।
डेरा कीन्हेउ मनहुँ तब कटकु हटकि[6] मनजात[7]॥३७(ख)॥

बिटप बिसाल लता अरुझानी। बिबिध बितान दिए जनु तानी॥
कदलि, ताल बर धुजा पताका। देखि न मोह, धीर मन जाका[1]॥
बिबिध भाँति फूले तरु नाना। जनु बानैत[2] बने बहु बाना॥
कहुँ-कहुँ सुंदर बिटप सुहाए। जनु भट बिलग-बिलग होइ छाए॥
कूजत पिक, मानहुँ गज माते। ढेक-महोख, ऊँट-बिसराते[3]॥
मोर-चकोर-कीर, बर बाजी[4]। पारावत-मराल, सब ताजी[5]॥
तीतिर-लावक[6], पदचर जूथा[7]। बरनि न जाइ मनोज-बरूथा॥
रथ गिरि-सिला, दुंदुभी झरना। चातक बंदी, गुन-गन बरना॥
मधुकर मुखर, भेरि-सहनाई। त्रिबिध बयारि, बसीठीं[8] आई॥
चतुरंगिनी सेन सँग लीन्हे। बिचरत सबहि चुनौती दीन्हे॥
लछिमन! देखत काम अनीका[9]। रहहिं धीर, तिन्ह कै जग लीका॥
एहि कें एक परम बल नारी। तेहि तें उबर, सुभट सोइ भारी॥

दो०—तात! तीनि अति प्रबल खल काम, क्रोध अरु लोभ।
मुनि बिग्यान-धाम-मन करहिं निमिष महुँ छोभ॥३८(क)॥

---

३७. १ की, २ भाग जाते हैं, ३ हथिनियाँ, ४ हाथी, ५ धावा बोल दिया है, ६ सेना रोक कर, ७ कामदेव (ने)।

३८. १ जिसका मन धीर है, २ धनुर्धर, ३ ऊँट और खच्चर, ४ वाजि (घोड़े), ५ कबूतर और हंस सब ताजी (अरबी घोड़े) हैं, ६ लावक = बाज, ७ पैदल सैनिकों के समूह, ८ दूत, ९ कामदेव की सेना।

लोभ कें इच्छा दंभ[१०] बल, काम कें केवल नारि।
क्रोध कें परुष बचन बल, मुनिबर कहहिं बिचारि ॥३८(ख)॥"

गुनातीत, सचराचर - स्वामी। राम, उमा। सब अंतरजामी ॥
कामिन्ह कै दीनता देखाई। धीरन्ह कें मन बिरति दृढ़ाई ॥
क्रोध, मनोज, लोभ, मद, माया। छूटहिं सकल राम की दाया ॥
सो नर इंद्रजाल[१] नहिं भूला। जा पर होइ सो नट[२] अनुकूला ॥
उमा! कहउँ मैं अनुभव अपना। सत हरि-भजनु जगत सब सपना॥

(८६) पम्पा सरोवर

पुनि प्रभु गए सरोवर-तीरा। पंपा नाम सुभग गंभीरा ॥
संत - हृदय - जस[३] निर्मल बारी। बाँधे घाट मनोहर चारी ॥
जहँ-तहँ पिअहिं बिबिध मृग नीरा। जनु उदार-गृह जाचक भीरा[४]॥
दो० पुरइनि सघन-ओट जल, बेगि न पाइअ मर्म।
मायाछन्न[५] न देखिऐ जैसें निर्गुन ब्रह्म ॥३९(क)॥
सुखी मीन सब एकरस अति अगाध जल माहिं।
जथा धर्मसीलन्ह के दिन सुख-संजुत[६] जाहिं ॥३९(ख)॥
बिकसे सरसिज नाना रंगा। मधुर, मुखर, गुंजत बहु भृंगा ॥
बोलत जलकुक्कुट[१], कलहंसा। प्रभु बिलोकि जनु करत प्रसंसा ॥
चक्रबाक[२] - बक खग - समुदाई। देखत बनइ, बरनि नहिं जाई ॥
सुंदर खग - गन गिरा सुहाई। जात पथिक जनु लेत बोलाई ॥
ताल-समीप मुनिन्ह गृह छाए। चहु दिसि कानन बिटप सुहाए ॥
चंपक, बकुल, कदंब तमाला। पाटल[३], पनस[४],परास[५] रसाला ॥
नव पल्लव, कुसुमित तरु नाना। चंचरीक - पटली[६] कर गाना ॥
सीतल - मंद - सुगंध सुभाऊ। संतत[७] बहइ मनोहर बाऊ ॥
कुहू-कुहू कोकिल धुनि करहीं। सुनि रव[८] सरस ध्यान मुनि टरहीं॥

---

३८ १० इच्छा और दम्भ।

३९ १ माया, २ ईश्वर-रूपी नट, ३ जस = जैसा, ४ माँगने वालों की भीड़, ५ माया से ढके रहने के कारण, ६ सुख के साथ।

४० १ जल के मुर्गे, २ चकवा, ३ गुलाब, ४ कटहल, ५ पलास, ६ भौंरों के समूह, ७ सदैव, ८ ध्वनि।

दो०—फल-भारन नमि बिटप सब रहे भूमि निअराइ।
पर उपकारी पुरुष जिमि नवहिं सुसंपति पाइ॥ ४०॥
देखि राम अति रुचिर तलावा। मज्जनु कीन्ह, परम सुख पावा॥
देखी सुंदर तरुवर-छाया। बैठे अनुज-सहित रघुराया॥४१॥

(८७) राम-नारद-संवाद

[छन्द-संख्या ४१ 'शेषात्) से ४२/५ देवताओं द्वारा राम की स्तुति और अपने लोक की ओर प्रस्थान, राम को विरह-विह्वल देख कर नारद को चिन्ता और अपने-आप पर पछतावा, नारद द्वारा राम की स्तुति और उनसे वरदान की याचना तथा राम के आश्वासन पर हर्ष।]

तब नारद बोले हरषाई। "अस बर मागउँ, करउँ ढिठाई॥
जद्यपि प्रभु के नाम अनेका। श्रुति कह अधिक एक तें एका॥
राम सकल नामन्ह ते अधिका। होउ नाथ! अघ खग गन-बधिका[1]॥
दो०—राका रजनी भगति तव, राम नाम सोइ सोम[2]।
अपर नाम[3] उडगन[4] बिमल बसहुँ भगत उर-ब्योम॥४२(क)॥"
'एवमस्तु' मुनि सन कहेउ कृपासिंधु रघुनाथ।
तब नारद मन हरष अति प्रभु पद नायउ माथ॥ ४२(ख)॥
अति प्रसन्न रघुनाथहि जानी। पुनि नारद बोले मृदु बानी॥
"राम! जबहिं प्रेरेउ निज माया। मोहेहु मोहि, सुनहु रघुराया॥
तब बिबाह मैं चाहउँ कीन्हा। प्रभु केहि कारन करैं न दीन्हा॥"
"सुनु मुनि! तोहि कहउँ सहरोसा[1]। भजहिं जे मोहि तजि सकल भरोसा॥
करउँ सदा तिन्ह कै रखवारी। जिमि बालक राखइ महतारी॥
गह सिसु-बच्छ अनल अहि धाई। तेहि राखइ जननी अरगाई[2]॥
प्रौढ़ भएँ तेहि सुत पर माता। प्रीति करइ, नहिं पाछिलि बाता॥
मोरे प्रौढ़ तनय-सम ग्यानी। बालक सुत सम दास अमानी॥
जनहि मोर बल निज बल ताही। दुहु कहँ काम क्रोध रिपु आही॥
यह बिचारि पंडित मोहि भजहीं। पाएहुँ ग्यान, भगति नहिं तजहीं।

---

४२ १ पाप रूपी पक्षियों के बधिक, २ चन्द्रमा, ३ दूसरे नाम, ४ तारागण।

४३ १ सहर्ष, २ अलग कर।

दो० —काम क्रोध-लोभादि-मद प्रबल मोह कै धारि[3]।
तिन्ह महँ अति दारुन दुखद मायारूपी नारि ॥ ४३ ॥

सुनु मुनि ! कह *पुरान-श्रुति-संता। मोहि-बिपिन[1] कहुँ नारि बसंता ॥
जप - तप - नेम जलाश्रय झारी। होइ ग्रीषम सोषइ सब नारी ॥
काम-क्रोध मद - मत्सर भेका[2]। इन्हहि हरषप्रद बरषा एका ॥
दुर्बासना कुमुद - समुदाई। तिन्ह कहँ सरद सदा सुखदाई ॥
धर्म सकल सरसीरुह[3] बृंदा। होइ हिम तिन्हहि दहइ सुख मंदा[4]॥
पुनि ममता - जवास बहुताई। पलुहइ[5] नारि-सिसिर रितु पाई ॥
पाप-उलूक - निकर - सुखकारी। नारि, निबिड़ रजनी अँधिआरी ॥
बुधि, बल, सील, सत्य सब मीना। बनसी-सम[6] त्रिय, कहहिं प्रबीना ।'

दो० —अवगुन मूल सूलप्रद प्रमदा[7] सब दुख - खानि।
ताते कीन्ह निवारन मुनि ! मैं यह जियँ जानि ॥ ४४ ॥"

सुनि रघुपति के बचन सुहाए। मुनि तन पुलक, नयन भरि आए ॥
कहहु, कवन प्रभु कै असि रीती। सेवक पर ममता अति प्रीती ॥
जे न भजहिं अस प्रभु,भ्रम त्यागी। ग्यान - रंक नर मंद, अभागी ॥
पुनि *सादर बोले मुनि नारद। "सुनहु राम !बिग्यान-बिसारद[1]॥
संतन्ह के लच्छन रघुबीरा ! कहहु नाथ ! भव-भंजन-भीरा ॥"
"सुनु मुनि ! संतन्ह के गुन कहऊँ। जिन्ह ते मैं उन्ह कें बस रहऊँ ॥
षट-बिकार-जित[2],अनघ[3],अकामा। अचल, अकिंचन, सुचि,सुखधामा ॥
अमितबोध[4], अनीह, मितभोगी। सत्यसार[5], कबि, कोबिद, जोगी ॥
सावधान, मानद[6] मदहीना। धीर, धर्म-गति, परम प्रबीना ॥
दो० —गुनागार, संसार - दुख - रहित, बिगत संदेह।
तजि मम चरन-सरोज, प्रिय तिन्ह कहुँ देह न गेह ॥ ४५ ॥

निज गुन श्रवन सुनत सकुचाहीं। पर-गुन सुनत अधिक हरषाहीं ॥
सम, सीतल, नहिं त्यागहिं नीती। सरल सुभाउ, सबहिं सन प्रीती ॥

---

४३ ३ सेना।

४४ १ मोह रूपी वन, २ मेढक ३ कमल, ४ मद (विषय सम्बन्धी) सुख, ५ पल्लवित हो जाता है, ६ वंसी के समान ७ स्त्री।

४५ १ तत्त्ववेत्ता, २ छह विकारों (काम, क्रोध, लोभ, मद, मत्सर और मोह) को जीतने वाले ३ निष्पाप ४ असीम ज्ञान वाला, ५ सच्चा व्यवहार करने वाले, ६ दूसरों को मान देने वाले।

जप, तप, ब्रत, दम, सजम, नेमा । गुरु गोबिंद - बिप्र - पद प्रेमा ॥
श्रद्धा, छमा, मयत्री[1], दाया । मुदिता[2], मम पद प्रीति अमाया ॥
बिरति, बिबेक, बिनय, बिग्याना । बोध जथारथ[3] बेद - पुराना ॥
दंभ, मान मद करहिं न काऊ । भूलि न देहिं कुमारग पाऊ[4] ॥
गावहिं, सुनहिं सदा मम लीला । हेतु रहित परहित रत-सीला[5] ॥
मुनि ! सुनु साधुन्ह के गुन जेते । कहि न सकहिं *सारद-श्रुति तेते ॥'
छं०—कहि सक न सारद - *सेष, नारद सुनत पद - पंकज गहे ।
अस दीनबंधु - कृपाल अपने भगत गुन निज मुख कहे ॥
सिरु नाइ बारहिं बार चरनन्हि, ब्रह्मपुर नारद गए ।
ते धन्य तुलसीदास, आस बिहाइ जे हरि - रँग रँए ॥
दो०—रावनारि - जसु[6] पावन गावहिं, सुनहिं जे लोग ।
राम भगति दृढ पावहिं बिनु बिराग, जप, जोग ॥४६(क)॥
दीप-सिखा सम जुबति तन मन ! जनि होसि पतंग ।
भजहि राम तजि काम-मद करहि सदा सतसंग ॥४६(ख)॥

---

४६ १ मैत्री, २ प्रसन्नता, ३ यथार्थ, ४ पैर, ५ अकारण ही दूसरो के हित में लगे रहते हैं, ६ रावण के शत्रु (राम) का यश ।

(८८) काशी की महिमा

सो०—मुक्ति-जन्म-महि[1] जानि, ग्यान-खानि, अघ-हानि कर[2]।
जहँ बस संभु भवानि, सो कासी सेइअ कस न ॥ (क) ॥
जरत सकल सुर बृंद बिषम गरल जेहिं पान किय ।
तेहि न भजसि मन मंद ! को कृपाल संकर-सरिस ॥ (ख) ॥

(८९) हनुमान् से मिलन

(छन्द संख्या १ से २/४ पुनः आगे चलते हुए राम की ऋष्यमूक पर्वत के समीप, सुग्रीव द्वारा प्रेषित हनुमान् से भेंट, विप्ररूपधारी हनुमान् का राम से परिचय।)

प्रभु पहिचानि, परेउ गहि चरना। सो सुख उमा! जाइ नहिं बरना ॥
पुलकित तन, मुख आव न बचना। देखत रुचिर बेष कै रचना ॥
पुनि धीरजु धरि अस्तुति कीन्ही। हरष हृदयँ, निज नाथहि चीन्ही ॥
"मोर न्याउ[1] मैं पूछा साईं ! तुम्ह पूछहु कस नर की नाईं ॥
तव माया बस फिरउँ भुलाना। ता ते मैं नहिं प्रभु पहिचाना ॥
दो०—एकु मैं मंद, मोहबस, कुटिल हृदय, अग्यान।
पुनि प्रभु ! मोहि बिसारेउ दीनबंधु भगवान ॥ २ ॥
जदपि नाथ ! बहु अवगुन मोरें। सेवक प्रभुहि परै जनि भोरें[1] ॥
नाथ ! जीव तव मायाँ मोहा। सो निस्तरइ तुम्हारेहिं छोहा[2] ॥
ता पर मैं, रघुबीर दोहाई। जानउँ नहिं कछु भजन-उपाई ॥
सेवक-सुत पति-मातु-भरोसें। रहइ असोच, बनइ प्रभु पोसें[3] ॥"

सो० (क) १ मुक्ति को जन्म देने वाली भूमि, २ पापों को नष्ट करने वाली।

२ १ मेरे लिए उचित था।

३. १ स्वामी तो सेवक को नहीं भूला करते (आप अपने इस सेवक को नहीं भूलें), २ कृपा, ३ वह निश्चिन्त रहता है, क्योंकि जैसे भी हो, पोषण तो प्रभु को करना ही होता है।

अस कहि परेउ चरन अकुलाई। निज तनु प्रगटि,प्रीति उर छाई ॥
तब रघुपति उठाई उर लावा। निज लोचन-जल सींचि जुड़ावा ॥
"सुनु *कपि!जियँ मानसि जनि ऊना[४] तैं मम प्रिय लछिमन ते दूना॥
समदरसी मोहि कह सब कोऊ। सेवक प्रिय, अनन्यगति सोऊ[५] ॥
दो०—सो अनन्य जाकें असि[६] मति न टरइ *हनुमंत।
मैं सेवक, सचराचर-रूप-स्वामि[७] भगवंत ॥ ३ ॥"

(६०) मित्र-कुमित्र के लक्षण

(छन्द-सं० ४ से ६ हनुमान् का राम और लक्ष्मण को पीठ पर चढ़ा कर सुग्रीव के पास आगमन, तथा उनके द्वारा, अग्नि को साक्षी बना कर, राम और सुग्रीव में मित्रता की स्थापना, लक्ष्मण से राम की कथा जानने के बाद सुग्रीव की, सीता द्वारा वस्त्र गिराने की सूचना और सीता की प्राप्ति में सहायता का वचन, सुग्रीव का, बालि द्वारा पत्नी और सर्वस्व हरण करने और उसके भय से ऋष्यमूक पर्वत पर निवास का उल्लेख, बालि को एक ही बाण में मारने की राम द्वारा शपथ और निम्नलिखित कथन ।)

जे न मित्र दुख होहिं दुखारी। तिन्हहि बिलोकत पातक भारी ॥
निज दुख गिरि-सम, रज करि जाना[१]। मित्रक दुख रज, मेरु-समाना ॥
जिन्ह कें असि मति सहज न आई। ते सठ कत हठि करत मिताई ॥
कुपथ निवारि[२] सुपथ चलावा। गुन प्रगटै, अवगुनन्हि दुरावा[३] ॥
देत-लेत मन संक न धरई। बल-अनुमान[४] सदा हित करई ॥
बिपति काल कर सतगुन नेहा। श्रुति कह, संत मित्र-गुन एहा ॥
आगें कह मृदु बचन बनाई। पाछें अनहित, मन-कुटिलाई ॥
जा कर चित अहि-गति-सम[५]भाई ! अस कुमित्र परिहरेहिं[६] भलाई ॥
सेवक सठ, नृप कृपन, कुनारी। कपटी मित्र, सूल-सम चारी ॥
सखा ! सोच त्यागहु बल मोरें। सब बिधि घटब[७] काज मैं तोरें ॥

३ ४ अपना जी छोटा मत करो, ५ मुझे अपना सेवक प्रिय है, और सेवकों में भी वह सबसे प्रिय है, जो मेरे प्रति अनन्य भाव रखता है, ६ ऐसी, ७ चेतन और जड़, दोनों रूपों का स्वामी।

७ १ धूल (रज) के बराबर मानता है, २ बुरे रास्ते से रोक कर, ३ (दूसरों के सामने) उसके अवगुणों को छिपाता है, ४ शक्ति भर, ५ सांप की चाल के समान टेढ़ा, ६ छोड़ने में ही, ७ करूंगा।

(९१) वालि-सुग्रीव का द्वन्द्वयुद्ध

[छन्द संख्या ७ (शेष अर्द्धालियाँ) सुग्रीव द्वारा वालि के अपार बल की चर्चा, दुंदुभी राक्षस की हड्डियों के ढेर और ताड़ के सात वृक्षों का राम द्वारा ढहाया जाना देख कर सुग्रीव का विश्वास, राम के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान और वालि के पास जाकर गर्जन, क्रुद्ध वालि का पत्नी (तारा) द्वारा प्रबोधन।]

दो०—कह बाली "सुनु भीरु प्रिय ! समदरसी रघुनाथ।
जौं कदाचि[८] मोहि मारहिं तौ पुनि होउँ सनाथ[९] ॥ ७॥"

अस कहि चला महा अभिमानी। तृन - समान सुग्रीवहि जानी॥
भिरे उभौ[१], बाली अति तर्जा। मुठिका[२] मारि महाधुनि गर्जा॥
तब सुग्रीव बिकल होइ भागा। मुष्टि-प्रहार[३] बज्र-सम लागा॥
"मैं जो कहा रघुबीर ! कृपाला। बंधु न होइ, मोर यह काला॥"
"एकरूप तुम्ह भ्राता दोऊ। तेहि भ्रम तें नहिं मारेउँ सोऊ॥"
कर परसा सुग्रीव - सरीरा। तनु भा कुलिस, गई सब पीरा॥
मेली[४] कंठ सुमन कै माला। पठवा पुनि बल देइ बिसाला॥
पुनि नाना बिधि भई लराई। बिटप ओट देखहिं रघुराई॥
दो०—बहु छल-बल सुग्रीव कर हियँ हारा भय मानि।
मारा बालि राम तब हृदय - माझ सर तानि॥ ८॥

(९२) राम-वालि-सवाद

परा बिकल महि सर के लागें। पुनि उठि बैठ देखि प्रभु आगें॥
स्याम गात - सिर जटा बनाएँ। अरुन नयन सर, चाप चढ़ाएँ॥
पुनि-पुनि चितइ चरन चित दीन्हा। सुफल जन्म माना, प्रभु चीन्हा॥
हृदयँ प्रीति - मुख बचन कठोरा। बोला चितइ राम की ओरा॥
"धर्म - हेतु अवतरेहु गोसाईं ! मारेहु मोहि ब्याध की नाईं॥
मैं बैरी, सुग्रीव पिआरा। अवगुन कवन नाथ ! मोहि मारा॥"
"अनुज-बधू[१], भगिनी, सुत-नारी[२]। सुनु सठ ! कन्या, सम ए चारी॥

---

७ ८ कदाचित्, ९ कृतकृत्य, धन्य।

८ १ दोनों, २ मुक्का, ३ मुक्के का प्रहार, ४ डाल दी।

९ १ छोटे भाई की पत्नी, २ पुत्रवधू।

इन्हहि कुदृष्टि बिलोकइ जोई । ताहि बधें कछु पाप न होई ॥
मूढ़ ! तोहि अतिसय अभिमाना । नारि-सिखावन करसि न काना ॥
मम भुज-बल-आश्रित[3] तेहि जानी । मारा चहसि अधम अभिमानी ॥"

दो०—"सुनहु राम ! स्वामी सन चल न चातुरी मोरि ।
प्रभु ! अजहूँ मैं पापी,[1] अंतकाल गति तोरि ॥ ९ ॥"

सुनत राम अति कोमल बानी । बालि सीस परसेउ निज पानी ॥
"अचल करौं तनु, राखहु प्राना" । बालि कहा, "सुनु कृपानिधाना ॥
जन्म-जन्म मुनि जतनु कराहीं । अंत राम कहि आवत नाहीं ॥
जासु नाम-बल संकर कासी । देत सबहि सम-गति अबिनासी[1] ॥
मम लोचन-गोचर[2] सोइ आवा । बहुरि कि प्रभु ! अस बनिहि बनावा[3] ॥

छं०—सो नयन-गोचर, जासु गुन नित नेति कहि[4] श्रुति गावहीं ।
जिति पवन[5], मन-गो निरस करि[6] मुनि ध्यान कबहुँक पावहीं ॥
मोहि जानि अति अभिमान-बस प्रभु ! कहेउ, राखु सरीरही ।
अस कवन सठ, हठि काटि सुरतरु बारि करिहि[7] बबूरही ॥१॥

अब नाथ ! करि करुना बिलोकहु, देहु जो बर मागऊँ ।
जेहिं जोनि जन्मौं कर्म-बस, तहँ राम-पद अनुरागऊँ ॥
यह तनय मम-सम बिनय-बल, कल्यानप्रद प्रभु ! लीजिऐ ।
गहि बाँह सुर नर-नाह ! आपन दास अंगद कीजिऐ ॥२॥"

दो० राम-चरन दृढ़ प्रीति करि बालि कीन्ह तनु त्याग ।
सुमन-माल जिमि कंठ ते गिरत न जानइ नाग[7] ॥ १० ॥

राम बालि निज धाम पठावा । नगर - लोग सब ब्याकुल धावा ॥
नाना बिधि बिलाप कर तारा । छूटे केस, न देह सँभारा ॥
तारा बिकल देखि रघुराया । दीन्ह ग्यान, हरि लीन्ही माया ॥
"छिति[1]-जल-पावक-गगन-समीरा । पंच रचित अति अधम सरीरा ॥
प्रगट सो तनु तव आगें सोवा । जीव नित्य,[2] केहि लगि तुम्ह रोवा ॥"

---

९. ३ मेरी भुजाओं के बल पर निर्भर ।

१०. १ एक-जैसी अविनाशी गति (मुक्ति), २ आंखों के सामने प्रत्यक्ष, ३ हे प्रभु ! क्या मुझे ऐसा संयोग फिर मिल पायेगा ? ४ पवन (प्राणवायु) को वश मे कर, ५ मन और इन्द्रियों को सुखा कर, ६ पानी डालेगा, सींचेगा, ७ हाथी ।

११ १ क्षिति, पृथ्वी; २ जीव तो अमर है ।

उपजा ग्यान, चरन तब लागी । लीन्हेसि परम भगति-बर मागी ॥
उमा ! दारु-जोषित[3] की नाईं । सबहि नचावत रामु गोसाईं ॥११॥

(६३) वर्षा ऋतु

[छन्द-संख्या ११(शेषांश) से १२ राम के आदेश पर सुग्रीव द्वारा वालि का मृतक-कर्म, तथा लक्ष्मण द्वारा सुग्रीव का राजा और अंगद का युवराज के पद पर अभिषेक, राम द्वारा सुग्रीव को अपने (सीता की खोज के) दायित्व की चिन्ता करते हुए सुखपूर्वक राज्य करने की सलाह, देवताओं द्वारा पहले से तैयार की हुई गुफा में, प्रवर्षण पर्वत पर, राम-लक्ष्मण का वर्षा-वास ।]

सुंदर बन कुसुमित अति सोभा । गुंजत मधुप-निकर मधु लोभा ॥
कंद मूल-फल-पत्र सुहाए । भए बहुत, जब ते प्रभु आए ॥
देखि मनोहर सैल[1] अनूपा । रहे तहँ अनुज-सहित सुरभूपा ॥
मधुकर खग-मृग तनु धरि देवा । करहिं सिद्ध-मुनि प्रभु कै सेवा ॥
मंगलरूप भयउ बन तब ते । कीन्ह निवास रमापति[2] जब ते ॥
फटिक-सिला[3] अति सुभ्र[4], सुहाई । सुख-आसीन[5] तहाँ द्वौ भाई ॥
कहत अनुज सन कथा अनेका । भगति, बिरति, नृपनीति, बिवेका ॥
बरषा-काल मेघ नभ छाए । गरजत लागत परम सुहाए ॥

दो०—"लछिमन ! देखु मोर गन नाचत बारिद[6] पेखि ।
गृही बिरति-रत हरष जस बिष्नुभगत कहुँ देखि ॥ १३ ॥

घन घमंड नभ गरजत घोरा । प्रिया-हीन डरपत मन मोरा ॥
दामिनि-दमक रह न घन माहीं । खल कै प्रीति जथा थिर नाहीं ॥
बरषहिं जलद भूमि निअराएँ[1] । जथा नवहिं बुध बिद्या पाएँ ॥
बूँद अघात सहहिं गिरि कैसें । खल के बचन संत सह जैसें ॥
छुद्र नदीं भरि चलीं तोराई[2] । जस थोरेहुँ धन खल इतराई ॥
भूमि परत भा ढाबर[3] पानी । जनु जीवहि माया लपटानी ॥

---

११ ३ कठपुतली (दारु = काठ, योषित = स्त्री) ।

१३ १ पर्वत, २ लक्ष्मी (रमा) के पति, राम, ३ स्फटिक (संगमरमर) की चट्टान, ४ उज्ज्वल, ५ सुखपूर्वक बैठे हुए ६ बादल ।

१४ १ निकट आ कर, लग कर, २ (अपने किनारे) तोड़ कर, ३ गँदला ।

समिटि-समिटि जल भरहिं तलावा। जिमि सदगुन सज्जन पहिं आवा॥
सरिता जल जलनिधि महुँ आई। होइ अचल जिमि जिव हरि पाई॥
दो० हरित भूमि तृन-संकुल[४] समुझि परहिं नहिं पंथ।
जिमि पाखंड बाद[५] ते गुप्त होहिं सदग्रंथ[६]॥१४॥

दादुर-धुनि चहु दिसा सुहाई। बेद पढ़हिं जनु बटु-समुदाई[१]॥
नव पल्लव भए बिटप अनेका। साधक-मन जस मिलें बिबेका॥
अर्क-जवास[२] पात बिनु भयऊ। जस सुराज, खल-उद्यम[३] गयऊ॥
खोजत कतहुँ मिलइ नहिं धूरी। करइ क्रोध जिमि धरमहि दूरी॥
ससि-संपन्न[४] सोह महि कैसी। उपकारी कै संपति जैसी॥
निसि तम घन, खद्योत[५] बिराजा। जनु दंभिन्ह कर मिला समाजा॥
महावृष्टि चलि फूटि किआरी। जिमि सुतंत्र भएँ बिगरहिं नारी॥
कृषी निरावहिं[६] चतुर किसाना। जिमि बुध तजहिं मोह-मद-माना॥
देखिअत चक्रबाक खग नाहीं। कलिहि पाइ जिमि धर्म पराहीं॥
ऊसर बरषइ, तृन नहिं जामा। जिमि हरिजन हियँ उपज न कामा॥
बिबिध जंतु-संकुल महि भ्राजा[७]। प्रजा बाढ़ जिमि पाइ सुराजा॥
जहँ-तहँ रहे पथिक थकि नाना। जिमि इंद्रिय-गन उपजें ग्याना॥
दो०—कबहुँ प्रबल बह मारुत जहँ-तहँ मेघ बिलाहिं[८]।
जिमि कपूत के उपजें कुल-सद्धर्म[९] नसाहिं॥१५(क)॥
कबहुँ दिवस महँ निबिड़[१०] तम, कबहुँक प्रगट पतंग[११]।
बिनसइ उपजइ ग्यान जिमि पाइ कुसंग-सुसंग॥१५(ख)॥"

(६४) शरद् ऋतु

"बरषा बिगत, सरद रितु आई। लछिमन[१] देखहु परम सुहाई॥
फूलें कास सकल महि छाई। जनु बरषाँ कृत प्रगट बुढ़ाई[१]॥
उदित अगस्ति[२] पंथ-जल सोषा। जिमि लोभहि सोषइ संतोषा॥
सरिता-सर निर्मल जल सोहा। संत-हृदय जस गत-मद-मोहा॥

---

१४. ४ घास से ढकी हुई, ५ पाखण्ड मत ६ अच्छे (सच्चे धार्मिक) ग्रंथ।

१५. १ विद्यार्थियों के समुदाय, २ मदार और जवासा, ३ दुष्टों के धंधे, ४ सस्य से सम्पन्न (लहलहाती खेती से भरी हुई), ५ जुगनू, ६ निराते हैं (घास-पात निकालते हैं), ७ सुशोभित हैं, ८ गायब हो जाते हैं, ९ कुल के उत्तम धर्म (उत्तम आचरण); १० घना, ११ सूर्य।

१६ १ बुढ़ापा प्रकट कर दिया है, २ अगस्त्य तारा।

रस-रस[3] सूख सरित-सर पानी। ममता त्याग करहिं जिमि ग्यानी॥
जानि सरद रितु खंजन आए। पाइ समय जिमि सुकृत[4] सुहाए॥
पंक न रेनु, सोह असि धरनी। नीति-निपुन नृप कै जसि करनी॥
जल-संकोच[5] बिकल भइँ मीना। अबुध कुटुंबी[6] जिमि धनहीना॥
बिनु घन निर्मल सोह अकासा। हरिजन-इव परिहरि सब आसा॥
कहुँ-कहुँ बृष्टि सारदी[7] थोरी। कोउ एक पाव भगति जिमि मोरी॥
दो०—चले हरषि तजि नगर नृप, तापस, बनिक, भिखारि।
जिमि हरिभगति पाइ श्रम तजहिं आश्रमी चारि[8]॥ १६॥
सुखी मीन जे नीर अगाधा। जिमि हरि-सरन न एकउ बाधा॥
फूलें कमल सोह सर कैसा। निर्गुन ब्रह्म सगुन भएँ जैसा॥
गुंजत मधुकर मुखर अनूपा। सुंदर खग-रव नाना रूपा॥
चक्रबाक मन दुख निसि पेखी। जिमि दुर्जन पर-संपति देखी॥
चातक रटत, तृषा अति ओही। जिमि सुख लहइ न संकर-द्रोही॥
सरदातप निसि-ससि अपहरई[1]। संत-दरस जिमि पातक टरई॥
देखि इंदु चकोर-समुदाई। चितवहिं, जिमि हरिजन हरि पाई॥
मसक-दंस[2] बीते हिम-त्रासा[3]। जिमि द्विज-द्रोह किएँ कुल-नासा॥
दो०—भूमि जीव-संकुल रहे, गए[4] सरद रितु पाइ।
सदगुर मिलें जाहिं जिमि संसय-भ्रम-समुदाइ॥ १७॥"

[छन्द-संख्या १८ से ३० शरद् आने पर भी सीता की सुधि नहीं मिलने के कारण राम व्याकुल हो जाते हैं और उन्हें सुग्रीव द्वारा अपने कार्य की उपेक्षा पर क्रोध होता है। वह सुग्रीव को भय दिखा कर ले आने के लिए लक्ष्मण को भेजते हैं। इधर हनुमान द्वारा स्मरण दिलाने पर सुग्रीव को राम का कार्य भुला देने पर भय और पश्चात्ताप होता है और वह एक पखवारे के अन्दर सभी वानरों को एकत्र होने का संदेश भिजवाता है। क्रुद्ध लक्ष्मण के नगर में प्रवेश करने पर वह उनकी अभ्यर्थना करता है और उन्हें दूतों के प्रेषण की सूचना देता है। सभी राम के पास पहुँचते हैं और सुग्रीव उनके

---

१६. ३ धीरे धीरे, ४ पुण्य, ५ जल की कमी, ६ मूर्ख गृहस्थ, ७ शरद् ऋतु की; ८ (ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यासी) चारों आश्रम वाले।

१७. १ हर लेता है, २ मच्छर और डाँस, ३ जाड़े के डर से नष्ट हो गये, ४ नष्ट हो गये।

सामने आत्मदैन्य प्रकट करता है। उसी समय असख्य वानरो का आगमन होता है और वे अगद, नल आदि के नेतृत्व मे दक्षिण की यात्रा करते हैं। राम हनुमान् को अपनी कर-मुद्रिका और सीता के प्रति सदेश देते हैं।

वन, नदी आदि मे सीता की खोज करते हुए वानर प्यास से व्याकुल हो जाते हैं और हनुमान् एक पर्वत-शिखर पर चढ कर पृथ्वी की गुफा के आगे आते-जाते हुए पक्षियो को देख कर जल का अनुमान करते है। वहाँ जाने पर उन्हे मन्दिर मे एक तपस्विनी से भेंट होती है। वहाँ सरोवर का जल पीने और उपवन के फल खाने के बाद वे तपस्विनी के कहने पर आँखें मूँद कर खोलते ही अपने को समुद्रतट पर खडा पाते हैं। उधर तपस्विनी राम के पास पहुँचती और उनके आदेश से बदरिकाश्रम चली जाती है।

समुद्रतट पर वानर दुखी और भयभीत अगद को सीता की खोज का आश्वसन देते तथा कुश डाल कर बैठ जाते हैं। उनका वार्तालाप सुन कर सम्पाति (गीध) पर्वत की कन्दरा से बाहर आता और प्रसग जानने पर उन्हे सीता का पता देता है। समुद्र लाँघने के सम्बन्ध मे बूढा जामवन्त अपनी असमर्थता बतलाता है और अगद समुद्र पार से अपने लौटने के सम्बन्ध म आशका व्यक्त करता है। इस पर जामवन्त हनुमान् को सीता की सुधि ले कर आने का परामर्श देता है।]

०

(९५) हनुमान् का समुद्रलंघन

जामवंत के बचन सुहाए। सुनि हनुमंत हृदय अति भाए॥
'तब लगि मोहि परिखेहु[1] तुम्ह भाई। सहि दुख, कंद मूल-फल खाई॥
जब लगि आवौं सीतहि देखी। होइहि काजु मोहि हरष बिसेषी॥"
यह कहि नाइ सबन्हि कहुँ माथा। चलेउ हरषि हियँ धरि रघुनाथा॥
सिंधु-तीर एक भूधर[2] सुंदर। कौतुक कूदि चढ़ेउ ता ऊपर॥
बार-बार रघुबीर सँभारी[3]। तरकेउ[4] *पवनतनय बल भारी॥
जेहिं गिरि चरन देइ हनुमंता। चलेउ सो गा[5] पाताल तुरंता॥
जलनिधि रघुपति दूत बिचारी। तैं मैनाक[6] होहि श्रमहारी[7]॥"
दो०— हनूमान तेहि परसा कर, पुनि कीन्ह प्रनाम।
"राम काजु कीन्हे बिनु मोहि कहाँ बिश्राम॥ १॥"

जात पवनसुत देवन्ह देखा। जानैं कहुँ बल-बुद्धि बिसेषा[1]॥
सुरसा नाम अहिन्ह कै माता। पठइन्हि,आइ कही तेहिं बाता॥
"आजु सुरन्ह मोहि दीन्ह अहारा।' सुनत बचन कह पवनकुमारा॥
'राम काजु करि फिरि मैं आवौं। सीता कइ सुधि[2] प्रभुहि सुनावौं॥
तब तव बदन पैठिहउँ आई। सत्य कहउँ,मोहि जान दे माई॥'
कवनेहुँ जतन देइ नहिं जाना। ग्रससि[3] न मोहि,' कहेउ हनुमाना॥
जोजन[4] भरि तेहिं बदनु पसारा। कपि,तनु कीन्ह दुगुन बिस्तारा॥
सोरह जोजन मुख तेहिं ठयऊ। तुरत पवनसुत बत्तिस भयऊ॥
जस जस सुरसा बदनु बढ़ावा। तासु दून[5] कपि रूप देखावा॥

---

१ १ प्रतीक्षा करना २ पर्वत, ३ स्मरण करते हुए ४ कूदने लगे ५ गया, ६ मैनाक नामक पर्वत, ७ (हनुमान की) थकावट दूर करने वाला।

२ १ उनके विशेष बल और बुद्धि को जानने के लिए (यह जानने के लिए कि वह राम का कार्य करने की शक्ति और बुद्धि रखते हैं या नहीं), २ समाचार, ३ खा जाती हो, ४ योजन (चार कोस), ५ दूना।

सत जोजन तेहिं आनन[६] कीन्हा । अति लघु रूप पवनसुत लीन्हा ॥
बदन पइठि पुनि बाहेर आवा । मागा बिदा ताहि सिरु नावा ॥
"मोहि सुरन्ह जेहि लागि पठावा । बुधि-बल-मरमु[७] तोर मैं पावा ॥

दो० —राम-काजु सबु करिहहु, तुम्ह बल बुद्धि-निधान ।"
आसिष देइ गई सो, हरषि चलेउ हनुमान ॥ २ ॥

निसिचरि एक सिंधु महुँ रहई । करि माया नभु के खग गहई ॥
जीव-जंतु जे गगन उड़ाहीं । जल बिलोकि तिन्ह कै परिछाहीं ॥
गहइ छाहँ, सक सो न उड़ाई । एहि बिधि सदा गगनचर[१] खाई ॥
सोइ छल हनूमान कहँ कीन्हा । तासु कपटु कपि तुरतहिं चीन्हा ॥
ताहि मारि मारुतसुत[२] बीरा । बारिधि पार गयउ मतिधीरा ॥
तहाँ जाइ देखी बन-सोभा । गुंजत चंचरीक[३] मधु लोभा ॥
नाना तरु फल-फूल सुहाए । खग-मृग-बृंद देखि मन भाए ॥
सैल बिसाल देखि एक आगें । ता पर धाइ चढ़ेउ भय त्यागें ॥
उमा! न कछु कपि कै अधिकाई[४] । प्रभु प्रताप जो कालहि खाई ॥
गिरि पर चढ़ि लंका तेहिं देखी । कहि न जाइ, अति दुर्ग[५] बिसेषी ॥
अति उतंग[६] जलनिधि चहु पासा । कनक कोट कर परम प्रकासा ॥ ३ ॥

(६६) हनुमान् का लंका-प्रवेश

मसक[१]-समान रूप कपि धरी । लंकहि चलेउ सुमिरि नरहरी[२] ॥
नाम लंकिनी एक निसिचरी । सो कह,"चलेसि मोहि निंदरी[३] ॥
जानेहि नहीं मरमु सठ ! मोरा । मोर अहार जहाँ लगि चोरा ॥"
मुठिका एक महा-कपि हनी[४] । रुधिर बमत धरनीं ढनमनी[५] ॥
पुनि संभारि उठी सो लंका[६] । जोरि पानि कर बिनय ससंका ॥
"जब रावनहि ब्रह्म बर दीन्हा । चलत बिरंचि कहा मोहि चीन्हा[७] ॥

---

२. ६ मुख; ७ बुद्धि और बल का भेद ।

३. १ आकाश में उड़ने वाले जीव, २ पवन के पुत्र हनुमान्; ३ भौंरा, ४ बड़ाई, ५ किला, ६ ऊँचा ।

४. १ मच्छर, २ मनुष्य का रूप धारण करने वाले भगवान्, राम, ३ मेरी उपेक्षा कर (मुझसे पूछे बिना), ४ मारी, ५ लुढ़क पड़ी, ६ लंकिनी, ७ पहचान ।

बिकल होसि तैं कपि कें मारे। तब जानेसु निसिचर संघारे॥
तात ! मोर अति पुन्य बहूता। देखेउँ नयन राम कर दूता॥
दो० तात ! स्वर्ग-अपबर्ग-सुख धरिअ तुला[८] एक अंग[९]।
तूल न ताहि[१०] सकल मिलि जो सुख लव[११]-सतसंग॥ ४॥
प्रबिसि नगर कीजे सब काजा। हृदयँ राखि कोसलपुर-राजा॥"
गरल सुधा, रिपु करहिं मिताई। गोपद सिंधु[१], अनल सितलाई[२]॥
गरुड़ ! सुमेरु रेनु-सम ताही। राम-कृपा करि चितवा[३] जाही॥
अति लघु रूप धरेउ हनुमाना। पैठा नगर सुमिरि भगवाना॥

(६७) विभीषण से भेंट

[छन्द संख्या ५ (प्रथम सात अर्द्धालियाँ) हनुमान् को लंका के किसी भी भवन में—यहाँ तक कि रावण के भवन में भी—सीता नहीं मिलीं]

भवन एक पुनि दीख सुहावा। हरि-मंदिर[४] तहँ भिन्न बनावा॥
दो०—रामायुध-अंकित[५] गृह, सोभा बरनि न जाइ।
नव तुलसिका-बृंद[६] तहँ देखि हरष कपिराइ॥ ५॥
लंका निसिचर-निकर-निवासा। इहाँ कहाँ सज्जन कर बासा॥
मन महुँ तरक[१] करैं कपि लागा। तेहीं समय बिभीषनु जागा॥
राम-राम तेहिं सुमिरन कीन्हा। हृदयँ हरष कपि सज्जन चीन्हा॥
एहि सन हठि करिहउँ पहिचानी। साधु ते होइ न कारज-हानी[२]॥
बिप्र-रूप धरि बचन सुनाए। सुनत बिभीषन उठि तहँ आए॥
करि प्रनाम, पूँछी कुसलाई। "बिप्र ! कहहु निज कथा बुझाई॥
की तुम्ह हरि दासन्ह महँ कोई। मोरें हृदय प्रीति अति होई॥
की तुम्ह रामु दीन-अनुरागी। आयहु मोहि करन बड़भागी॥"
दो०—तब हनुमंत कही सब राम-कथा, निज नाम।
सुनत जुगल तन पुलक, मन मगन सुमिरि गुन-ग्राम[३]॥ ६॥

---

४ ८ तराजू; ९ एक अंग (पलड़े) में, १० बराबर नहीं होते, ११ क्षण।

५ १ समुद्र गाय के खुर के बराबर हो जाता है, २ आग शीतल हो जाती है, ३ देखा, ४ भगवान् का मन्दिर, ५ राम के आयुधों (धनुष और बाण) से अंकित, ६ तुलसी के नये पौधे।

६ १ तर्क, २ कार्य की हानि, ३ राम के गुण समूह।

"सुनहु पवनसुत ! रहनि हमारी । जिमि दसनन्हि महुँ¹ जीभ बिचारी ॥
तात ! कबहुँ मोहि जानि अनाथा । करिहहिं कृपा भानुकुल-नाथा ॥
तामस-तनु² कछु साधन नाहीं । प्रीति न पद सरोज मन माहीं ॥
अब मोहि भा भरोस³ हनुमंता ! बिनु हरिकृपा मिलहिं नहिं संता ॥
जौं रघुबीर अनुग्रह कीन्हा । तौ तुम्ह मोहि दरसु हठि दीन्हा ॥"
'सुनहु बिभीषन ! प्रभु कै रीती । करहिं सदा सेवक पर प्रीती ॥
कहहु, कवन मैं परम कुलीना । कपि चंचल, सबही बिधि हीना ॥
प्रात लेइ जो नाम हमारा । तेहि दिन ताहि न मिलै अहारा ॥

दो०—अस मैं अधम, सखा ! सुनु मोहू पर रघुबीर ।
कीन्ही कृपा, सुमिरि गुन भरे बिलोचन नीर ॥ ७ ॥

जानतहूँ अस स्वामि बिसारी । फिरहिं, ते काहे न होहिं दुखारी ॥"
एहि बिधि कहत राम-गुन ग्रामा । पावा अनिर्बाच्य बिश्रामा¹ ॥
पुनि सब कथा बिभीषन कही । जेहि बिधि जनकसुता तहँ रही ॥
तब हनुमंत कहा, "सुनु भ्राता ! देखी चहउँ जानकी माता ॥"
जुगुति बिभीषन सकल सुनाई । चलेउ पवनसुत बिदा कराई ॥

(९८) सीता-रावण-संवाद

करि सोइ रूप गयउ पुनि तहवाँ । बन असोक सीता रह जहवाँ ॥
देखि मनहि महुँ कीन्ह प्रनामा । बैठेहि बीति जात निसि-जामा² ॥
कृस³ तनु, सीस जटा एक बेनी⁴ । जपति हृदयँ रघुपति-गुन-श्रेनी⁵ ॥

दो०—निज पद नयन दिएँ, मन राम-पद-कमल लीन ।
परम दुखी भा पवनसुत देखि जानकी दीन ॥ ८ ॥

तरु-पल्लव महुँ रहा लुकाई । करइ बिचार, करौं का भाई ॥
तेहि अवसर रावनु तहँ आवा । संग नारि बहु किएँ बनावा¹ ॥
बहु बिधि खल सीतहि समुझावा । साम-दान-भय-भेद देखावा ॥
कह रावनु, 'सुनु सुमुखि ! सयानी ! मंदोदरी आदि सब रानी ॥
तव अनुचरीं करउँ, पन मोरा । एक बार बिलोकु मम ओरा ॥'

---

७ १ दाँतों के बीच, २ तामसी (राक्षस) शरीर, ३ विश्वास ।

८ १ अवर्णनीय शान्ति, २ रात्रि के (सभी) पहर, ३ दुबला, ४ सिर पर जटाओं की केवल वेणी (चोटी), ५ गुण श्रेणी—गुण-समूह ।

९ १ शृंगार ।

तृन धरि ओट, कहति बैदेही। सुमिरि अवधपति परम सनेही॥
"सुनु दसमुख! खद्योत-प्रकासा[2]। कबहुँ कि नलिनी[3] करइ बिकासा॥
अस मन समुझु, कहति जानकी। खल[1] सुधि नहिं रघुबीर बान की॥
सठ! सूनें हरि आनेहि मोही। अधम[1] निलज्ज[1] लाज नहिं तोही॥"

दो०—आपुहि सुनि खद्योत-सम, रामहि भानु-समान।
परुष बचन सुनि, काढ़ि असि[4] बोला अति खिसिआन॥ ९॥

"सीता! तैं मम कृत अपमाना। कटिहउँ तव सिर कठिन कृपाना॥
नाहिं त सपदि[1] मानु मम बानी। सुमुखि[1] होति न त जीवन-हानी॥'
"स्याम-सरोज-दाम-सम[2] सुंदर। प्रभु-भुज करि कर-सम[3] दसकंधर॥
सो भुज कंठ, कि तव असि घोरा। सुनु सठ[1] अस प्रवान पन मोरा[4]॥
चंद्रहास[5]! हरु मम परितापं। रघुपति-बिरह-अनल-संजातं[6]॥
सीतल, निसित[7] बहसि[8] बर धारा।" कह सीता, "हरु मम दुख-भारा॥"
सुनत बचन पुनि मारन धावा। मयतनयाँ[9] कहि नीति बुझावा॥
कहेसि सकल निसिचरिन्ह बोलाई। "सीतहि बहु बिधि त्रासहु जाई॥
मास दिवस महुँ कहा न माना। तौ मैं मारबि काढ़ि कृपाना॥"

दो०—भवन गयउ दसकंधर, इहाँ पिसाचिनि-बृंद।
सीतहि त्रास देखावहिं, धरहिं रूप बहु मंद[10]॥ १०॥

(६६) सीता-त्रिजटा-संवाद

त्रिजटा नाम राच्छसी एका। राम-चरन-रति, निपुन-बिबेका॥
सबन्हौ बोलि सुनाएसि सपना। "सीतहि सेइ करहु हित अपना॥
सपनें बानर लंका जारी। जातुधान सेना[1] सब मारी॥
खर-आरूढ़[2] नगन दससीसा। मुंडित सिर, खंडित भुज बीसा॥
एहि बिधि सो दच्छिन दिसि[3] जाई। लंका मनहुँ बिभीषन पाई॥

---

९ २ जुगनुओं का प्रकाश, ३ कमलिनी, ४ तलवार खींच कर।

१०. १ जल्दी से, २ नीले कमलों की माला के समान; ३ हाथी की सूँड़ के समान (दृढ़), ४ यही मेरा सच्चा प्रण है, ५ हे चन्द्रहास! (नामक तलवार), ६ राम के विरह की अग्नि से उत्पन्न; ७ तेज, ८ धारण करते हो, ९ मय दानव की पुत्री मन्दोदरी ने; १० बहुत बुरे।

११ १ राक्षसों की सेना, २ गदहे पर सवार, ३ दक्षिण दिशा (यमपुरी की दिशा)।

नगर फिरी रघुबीर-दोहाई। तब प्रभु सीता बोलि पठाई॥
यह सपना मैं कहउँ पुकारी। होइहि सत्य गएँ दिन चारी॥"
तासु बचन सुनि ते सब डरीं। जनकसुता के चरनन्हि परीं॥
दो०—जहँ-तहँ गईं सकल, तब सीता कर मन सोच।
मास दिवस बीतें मोहि मारिहि निसिचर पोच[४]॥ ११॥
त्रिजटा सन बोलीं कर जोरी। "मातु! बिपति-संगिनि तैं मोरी॥
तजौं देह, करु बेगि उपाई। दुसह बिरहु अब नहिं सहि जाई॥
आनि काठ, रचु चिता बनाई। मातु! अनल पुनि देहि लगाई॥
सत्य करहि मम प्रीति सयानी। सुनै को श्रवन सूल सम बानी।"
सुनत बचन, पद गहि समुझाएसि। प्रभु प्रताप-बल-सुजसु सुनाएसि॥
"निसि न अनल मिल, सुनु सुकुमारी।" अस कहि सो निज भवन सिधारी॥

(१००) सीता-हनुमान्-संवाद

कह सीता, "बिधि भा प्रतिकूला। मिलिहि न पावक, मिटिहि न सूला॥
देखिअत प्रगट गगन अंगारा। अवनि न आवत एकउ तारा॥
पावकमय ससि, स्रवत न आगी। मानहुँ मोहि जानि हतभागी।
सुनहि बिनय मम बिटप असोका। सत्य नाम करु, हरु मम सोका॥
नूतन किसलय अनल-समाना। देहि अगिनि जनि करहि निदाना[१]॥"
देखि परम बिरहाकुल सीता। सो छन कपिहि कलप-सम बीता॥
सो०—कपि करि हृदयँ बिचार, दीन्हि मुद्रिका[२] डारि तब।
जनु असोक अंगार दीन्ह हरषि उठि कर गहेउ॥ १२॥
तब देखी मुद्रिका मनोहर। राम-नाम अंकित, अति सुंदर॥
चकित चितव[१] मुदरी पहिचानी। हरष-बिषाद हृदयँ अकुलानी॥
जीति को सकइ अजय रघुराई। माया तें असि रचि नहिं जाई॥
सीता मन बिचार कर नाना। मधुर बचन बोलेउ हनुमाना॥
रामचंद्र-गुन बरनैं लागा। सुनतहि सीता कर दुख भागा॥
लागीं सुनै श्रवन-मन लाई। आदिहु तें सब कथा सुनाई॥

---

११ ४ नीच।

१२ १ मेरे वियोग का अन्त मत कर (अन्तिम सीमा तक मत पहुँचा), २ अँगूठी।

१३. १ चकित हो कर देखने लगीं।

सुनि कपि-बचन बहुत खिसिआना । 'बेगि न हरहु मूढ़ कर प्राना'॥
सुनत निसाचर मारन धाए । सचिवन्ह-सहित बिभीषनु आए ॥
नाइ सीस, करि बिनय बहूता । "नीति बिरोध न मारिअ दूता ॥
आन[1] दंड कछु करिअ गोसाँई !" सबहीं कहा, "मंत्र[2] भल भाई ॥"
सुनत, बिहसि बोला दसकंधर । "अंग भंग करि पठइअ बंदर ॥

दो०—कपि कें ममता पूँछ पर सबहि कहउँ समुझाइ ।
तेल बोरि पट[3], बाँधि पुनि, पावक देहु लगाइ ॥ २४ ॥

पूँछहीन बानर तहँ जाइहि । तब सठ निज नाथहि लइ आइहि ॥
जिन्ह कै कीन्हिसि बहुत बड़ाई । देखउँ मैं तिन्ह कै प्रभुताई ॥"
बचन सुनत कपि मन मुसुकाना । भइ सहाय सारद, मैं जाना ॥
जातुधान सुनि रावन-बचना । लागे रचैं मूढ़ सोइ रचना ॥
रहा न नगर बसन, घृत तेला । बाढ़ी पूँछ, कीन्ह कपि खेला ॥
कौतुक कहँ आए पुरबासी । मारहिं चरन, करहिं बहु हाँसी ॥
बाजहिं ढोल, देहिं सब तारी । नगर फेरि, पुनि पूँछ प्रजारी[1]॥
पावक जरत देखि हनुमंता । भयउ परम लघुरूप तुरंता ।
निबुकि[2] चढ़ेउ कपि कनक अटारीं । भईं सभीत निसाचर-नारीं ॥

दो० – हरि प्रेरित तेहि अवसर चले *मरुत उनचास ।
अट्टहास करि गर्जा कपि बढ़ि लाग अकास । २५ ॥

देह बिसाल, परम हरुआई[1] । मंदिर तें मंदिर चढ़ धाई ॥
जरइ नगर, भा लोग बिहाला । झपट लपट बहु कोटि-कराला ॥
'तात'!'मातु'!'हा'! सुनिअ पुकारा । "एहिं अवसर को हमहि उबारा ॥
हम जो कहा, यह कपि नहिं होई । बानर रूप धरें सुर कोई ॥
साधु-अवग्या[2] कर फलु ऐसा । जरइ नगर अनाथ कर जैसा ॥"
जारा नगरु निमिष एक माहीं । एक बिभीषण कर गृह नाहीं ॥
ता कर दूत, अनल जेहिं सिरिजा । जरा न सो तेहि कारन गिरिजा ॥
उलटि-पलटि लंका सब जारी । कूदि परा पुनि सिंधु मझारी ॥ २६ ॥

---

२४ १ अन्य, २ सलाह, ३ कपड़ा ।

२५ १ पूँछ में आग लगा दी, २ निर्मुक्त हो कर, बन्धन से छूट कर ।

२६ १ बहुत हल्की, २ साधु का अपमान ।

(१०२) सीता का सन्देश

(दोहा-संख्या २६ से छन्द-संख्या ३०/५ लघु रूप धारण कर हनुमान् का सीता के पास आगमन और उनसे सहिदानी देने की प्रार्थना; हनुमान् को चूड़ामणि देकर सीता का, राम के लिए एक महीने के अन्दर आने का, सन्देश, हनुमान् की विदाई, समुद्रलंघन और वानरों का प्रस्थान, उनका मधुवन के फल खाने और रोकने पर मारने की, सुग्रीव से, रखवाली की शिकायत और सुग्रीव का हर्ष, सुग्रीव के पास वानरों का आगमन और सबकी राम से भेंट, जामवन्त द्वारा हनुमान् के करतबों की चर्चा।)

पवनतनय के चरित सुहाए। जामवंत रघुपतिहि सुनाए॥
सुनत कृपानिधि मन अति भाए। पुनि हनुमान हरषि हियँ लाए॥
"कहहु तात! केहि भाँति जानकी। रहति, करति रच्छा स्वप्रान की॥"
दो०— "नाम पाहरू[1], दिवस निसि ध्यान तुम्हार कपाट।
लोचन निज पद जंत्रित[2], जाहिं प्रान केहिं बाट॥ ३०॥

चलत मोहि चूड़ामनि[1] दीन्ही।" रघुपति हृदयँ लाइ सोइ लीन्ही॥
"नाथ! जुगल लोचन भरि बारी। बचन कहे कछु जनककुमारी॥
अनुज-समेत गहेहु प्रभु चरना। दीन-बंधु, प्रनतारति-हरना[2]॥
मन क्रम-बचन चरन-अनुरागी। केहिं अपराध नाथ[1] हौं त्यागी॥
अवगुन एक मोर, मैं माना। बिछुरत, प्रान न कीन्ह पयाना[3]॥
नाथ[1] सो नयनन्हि को अपराधा। निसरत प्रान[4] करहिं हठि बाधा॥
बिरह अगिनि, तनु तूल[5], समीरा। स्वास, जरइ छन माहिं सरीरा॥
नयन स्रवहि जलु निज हित लागी। जरैं न पाव देह बिरहागी[6]॥
सीता कै अति बिपति बिसाला। बिनहिं कहें भलि, दीनदयाला॥
दो०— निमिष निमिष करुनानिधि! जाहिं कलप सम बीति।
बेगि चलिअ प्रभु[1] आनिअ भुज-बल खल-दल जीति॥ ३१॥"

---

३०. १ आपका नाम ही पहरेदार है, २ उनकी आँखें आपके चरणों में जड़ी हुई हैं।

३१ १ चूड़ामणि (रत्नों से जड़ा हुआ शीशफूल), २ शरणागत का दुःख हरने वाले, ३ प्राण नहीं निकले, ४ प्राणों के निकलने में, ५ शरीर रूई के समान है; ६ विरह की आग।

कह सुग्रीव, "सुनहु रघुराई। आवा मिलन दसानन - भाई॥"
कह प्रभु, "सखा बूझिऐ काहा।" कहइ कपीस, "सुनहु नरनाहा॥
जानि न जाइ निसाचर-माया। कामरूप[1] केहि कारन आया॥
भेद हमार लेन सठ आवा। राखिअ बाँधि, मोहि अस भावा॥"
"सखा! नीति तुम्ह नीकि बिचारी। मम पन सरनागत-भयहारी॥"
सुनि प्रभ-बचन हरस हनुमाना। सरनागत-बच्छल[2] भगवाना॥
दो०—"सरनागत कहुँ जे तजहिं निज अनहित अनुमानि।
ते नर पावँर-पापमय, तिन्हहि बिलोकत हानि॥ ४३॥

कोटि बिप्र-बध लागहिं जाहू। आएँ सरन, तजउँ नहिं ताहू॥
सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं। जन्म-कोटि-अघ[1] नासहिं तबहीं॥
पापवंत[2] कर सहज सुभाऊ। भजनु मोर तेहि भाव न काऊ॥
जौं पै दुष्टहृदय सोइ होई। मोरें सनमुख आव कि सोई॥
निर्मल मन, जन सो मोहि पावा। मोहि कपट-छल-छिद्र[3] न भावा॥
भेद लेन पठवा दससीसा। तबहुँ न कछु भय-हानि, कपीसा॥
जग महुँ सखा! निसाचर जेते। लछिमनु हनइ[4] निमिष महुँ तेते॥
जौं सभीत आवा सरनाई। रखिहउँ ताहि प्रान की नाई॥
दो०—उभय भाँति तेहि आनहु," हँसि कह कृपानिकेत।
"जय कृपाल!" कहि, कपि चले अंगद-हनू-समेत॥ ४४॥

सादर तेहि आगें करि बानर। चले जहाँ रघुपति करुनाकर॥
दूरिहि ते देखे द्वौ भ्राता। नयनानंद-दान के दाता[1]॥
बहुरि राम छबिधाम बिलोकी। रहेउ ठटुकि एकटक पल रोकी॥
भुज प्रलंब,[2] कंजारुन[3]-लोचन। स्यामल गात, प्रनत-भय-मोचन॥
सिंघ कंध, आयत उर सोहा। आनन अमित-मदन-मन मोहा॥
नयन नीर, पुलकित अति गाता। मन धरि धीर कही मृदु बाता॥
'नाथ! दसानन कर मैं भ्राता। निसिचर-बंस-जनम, सुरत्राता[4]॥

४३. १ अपनी इच्छा के अनुसार रूप बदलने वाला, छली, २ शरणागत पर स्नेह रखने वाले।

४४. १ करोड़ों जन्म का पाप; २ पापी, ३ छिद्र=दोष, बुराई, ४ मार सकते हैं।

४५. १ नेत्रों को आनन्द का दान देने वाले, २ लम्बी, ३ लाल कमल; ४ देवताओं की रक्षा करने वाले।

सहज पापप्रिय तामस देहा। जथा उलूकहि तम पर नेहा॥
दो०—श्रवन सुजसु सुनि आयउँ प्रभु ! भंजन-भव-भीर।
त्राहि-त्राहि आरति-हरन, सरन-सुखद[५] रघुबीर॥ ४५॥"
अस कहि करत दंडवत देखा। तुरत उठे प्रभु हरष बिसेषा॥
दीन बचन सुनि प्रभु मन भावा। भुज बिसाल गहि हृदयँ लगावा॥ ४६॥

(१०६) राम-विभीषण-संवाद

[छन्द-संख्या ४६ (शेषांश) से ४७ : विभीषण को समीप बैठाने के बाद उससे, लंका मे अपना धर्म बनाये रखने के विषय मे, राम की जिज्ञासा, विभीषण द्वारा राम की प्रशंसा और प्रार्थना तथा उनके साक्षात् दर्शन के कारण अपने सौभाग्यशाली होने की चर्चा।]

"सुनहु सखा ! निज कहउँ सुभाऊ। जान भुसुंडि, संभु, गिरिजाऊ[१]॥
जौं नर होइ चराचर-द्रोही। आवै सभय सरन तकि मोही॥
तजि मद-मोह-कपट छल नाना। करउँ सद्य[२] तेहि साधु-समाना॥
जननी, जनक, बंधु, सुत, दारा। तनु, धनु, भवन, सुहृद, परिवारा॥
सब कै ममता-ताग[३] बटोरी। मम पद मनहि बाँध बरि[४] डोरी॥
समदरसी, इच्छा कछु नाहीं। हरष-सोक-भय नहिं मन माहीं॥
अस सज्जन मम उर बस कैसें। लोभी-हृदयँ बसइ धनु जैसें॥
तुम्ह सारिखे[५] संत प्रिय मोरें। धरउँ देह, नहिं आन निहोरें[६]॥
दो०—सगुन-उपासक, परहित-निरत, नीति दृढ़ नेम।
ते नर प्रान-समान मम जिन्ह कें द्विज-पद-प्रेम॥ ४८॥
सुनु लंकेस ! सकल गुन तोरें। तातें तुम्ह अतिसय प्रिय मोरें॥"
राम-बचन सुनि बानर-जूथा। सकल कहहिं, "जय कृपा-बरूथा"॥
सुनत बिभीषनु प्रभु कै बानी। नहिं अघात श्रवनामृत जानी॥
पद-अंबुज गहि बारहिं बारा। हृदयँ समात न प्रेमु अपारा॥
"सुनहु देव ! सचराचर-स्वामी। प्रनतपाल ! उर-अंतरजामी॥
उर कछु प्रथम बासना रही। प्रभु-पद प्रीति-सरित[१] सो बही॥

---

४५. ५ शरणागत को सुख देने वाले।

४८ १ गिरिजा भी, २ तुरन्त, ३ ममता को डोरी, ४ बट कर, ५ तुम्हारे जैसे, ६ किसी दूसरे के लिए नहीं।

४९ १ प्रभु के चरणो की प्रीति की नदी मे।

अब कृपाल[1] निज भगति पावनी। देहु सदा सिव-मन-भावनी" ॥
'एवमस्तु' कहि प्रभु रनधीरा। मागा तुरत सिंधु कर नीरा ॥
"जदपि सखा ! तव इच्छा नाहीं। मोर दरसु अमोघ जग माहीं ॥"
अस कहि राम, तिलक तेहि सारा[2]। सुमन-वृष्टि नभ भई अपारा ॥

दो०—रावण क्रोध अनल, निज स्वास समीर प्रचंड।
जरत बिभीषनु राखेउ, दीन्हेउ राजु अखंड ॥ ४९ (क) ॥
जो संपति सिव रावनहि दीन्हि, दिएँ दस माथ[3]।
सोइ संपदा बिभीषनहि सकुचि दीन्हि रघुनाथ ॥ ४९ (ख) ॥

(१०७) समुद्र द्वारा सेतु-निर्माण का परामर्श

(छन्द-संख्या ५० से ५७/१२ राम द्वारा विभीषण से समुद्र पार करने की युक्ति के विषय मे प्रश्न, विभीषण का सबसे पहले समुद्र की प्रार्थना करने का परामर्श, लक्ष्मण का विरोध और लक्ष्मण को समझाने के बाद, राम द्वारा तट पर, दर्भासन पर बैठ कर समुद्र की प्रार्थना।

रावण द्वारा शुक आदि दूतों का प्रेषण, भेद मालूम होने पर सुग्रीव के आदेश से वानर रूपधारी शुक का उत्पीडन, लक्ष्मण की दयार्द्रता और उसे छुड़ा कर रावण के पास पत्र के साथ प्रेषण, रावण के पूछने पर शुक द्वारा राम के तेज की प्रशंसा, लक्ष्मण का पत्र पढ कर रावण का व्यंग्य और शुक द्वारा राम से सन्धि का परामर्श सुनते ही रावण का उस पर पाद प्रहार, राम के पास पहुँच कर सारी कथा कहने के बाद प्रभु की कृपा से उसकी मुक्ति और उल्लेख कि वह अगस्त्य के शाप द्वारा मुनि से राक्षस बन गया था, और शापमुक्त होने के बाद अपने आश्रम की ओर प्रस्थान।]

दो० —विनय न मानत जलधि जड, गए तीनि दिन बीति।
बोले राम सकोप तब, 'भय बिनु होइ न प्रीति ॥ ५७ ॥
लछिमन ! बान सरासन आनू। सोषौं बारिधि बिसिख-कृसानू[1]' ॥

---

४९ २ लगाया, ३ अपने दस सिर काट कर चढ़ाने पर।

५८ १ अग्निबाण।

सठ सन[2] बिनय, कुटिल सन प्रीती। सहज कृपन सन सुंदर नीती॥
ममता-रत मन ग्यान-कहानी। अति लोभी सन बिरति बखानी॥
क्रोधिहि सम[3], कामिहि हरि-कथा। ऊसर बीज बएँ फल जथा॥"
अस कहि, रघुपति चाप चढ़ावा। यह मत लछिमन के मन भावा॥
संधानेउ प्रभु बिसिख कराला। उठी उदधि-उर-अंतर[4] ज्वाला॥
मकर उरग-झष[5]-गन अकुलाने। जरत जंतु जलनिधि जब जाने॥
कनक-थार भरि मनि-गन नाना। बिप्र-रूप आयउ तजि माना॥

दो०—काटेहिं पइ[6] कदरी फरइ कोटि जतन कोउ सींच।
बिनय न मान खगेस! सुनु, डाटेहिं पइ नव[7] नीच॥ ५८॥

सभय सिंधु गहि पद प्रभु केरे। "छमहु नाथ! सब अवगुन मेरे॥
गगन, समीर, अनल, जल, धरनी। इन्ह कइ नाथ! सहज जड़ करनी॥
तव प्रेरित मायाँ उपजाए। सृष्टि-हेतु सब ग्रंथनि गाए॥
प्रभु-आयसु जेहि कहँ जस अहई। सो तेहि भाँति रहे, सुख लहई॥
प्रभु! भल कीन्ह, मोहि सिख दीन्ही। मरजादा[1] पुनि तुम्हरी कीन्ही॥
ढोल, गवाँर, सूद्र, पसु, नारी। सकल ताड़ना[2] के अधिकारी॥
प्रभु-प्रताप मैं जाब सुखाई। उतरिहि कटकु, न मोरि बड़ाई॥
प्रभु-अग्या अपेल[3] श्रुति गाई। करौं सो बेगि, जो तुम्हहि सोहाई॥"

दो०—सुनत बिनीत बचन अति कह कृपाल मुसुकाइ।
"जेहि बिधि उतरै कपि-कटकु तात! सो कहहु उपाइ॥ ५९॥"

"नाथ! नील-नल कपि द्वौ भाई। लरिकाई[1] रिषि-आसिष पाई॥
तिन्ह कें परस किएँ गिरि भारे[2]। तरिहहिं जलधि, प्रताप तुम्हारे॥
मैं पुनि उर धरि प्रभु-प्रभुताई। करिहउँ बल-अनुमान[3] सहाई॥
एहि बिधि नाथ! पयोधि बँधाइअ। जेहिं यह सुजसु लोक तिहुँ गाइअ॥
एहि सर मम उत्तर तट-बासी[4]। हतहु नाथ! खल नर अघ-रासी॥"

---

५८. २ सन = से. ३ शम, शान्ति की बात, ४ समुद्र के हृदय के भीतर, ५ झष = मछली, ६ पर, ७ झुकता है।

५९ १ मर्यादा, २ दण्ड, ३ अटल।

६० १ बचपन में; २ भारी, ३ शक्ति भर; ४ उत्तरतट के मणिकुल्य नामक स्थान के निवासी।

सुनि कृपाल, सागर मन-पीरा। तुरतहिं हरी राम रनधीरा॥
देखि राम-बल-पौरुष भारी। हरषि पयोनिधि भयउ सुखारी॥
सकल चरित कहि प्रभुहि सुनावा। चरन बंदि पाथोधि[५] सिधावा॥

छं०— निज भवन गवनेउ सिंधु, श्रीरघुपतिहि यह मत भायऊ।
यह चरित कलि-मलहर, जथामति दास तुलसी गायऊ॥
सुख-भवन[६], संसय-समन[७], दवन बिषाद[८] रघुपति-गुन-गना॥
तजि सकल आस-भरोस गावहि सुनहि संतत सठ मना॥

दो०— सकल सुमंगल दायक रघुनायक गुन गान।
सादर सुनहिं ते तरहिं भव-सिंधु बिना जलजान॥ ६०॥

---

६० ५ समुद्र, ६ सुख-धाम, ७ सन्देह नष्ट करने वाले, ८ दुखों का दमन करने वाले।

(१०८) शिवलिंग की स्थापना

(छन्द-संख्या १ से २/२ नल-नील द्वारा भालुओं और वानरों द्वारा लाये गये पर्वतों तथा वृक्षों से समुद्र पर सेतु-रचना और उसे देख कर राम का निम्नलिखित कथन ।)

परम रम्य[१], उत्तम यह धरनी । महिमा अमित, जाइ नहिं बरनी ॥
करिहउँ इहाँ *संभु-थापना[२] । मोरे हृदयँ परम कलपना[३] ॥
सुनि, कपीस[४] बहु दूत पठाए । मुनिवर सकल बोलि लै आए ॥
लिंग थापि, बिधिवत करि पूजा । सिव समान प्रिय मोहि न दूजा ॥
सिव-द्रोही मम भगत कहावा । सो नर सपनेहुँ मोहि न पावा ॥
संकर-बिमुख, भगति चह मोरी । सो नारकी, मूढ़ मति थोरी ॥

दो०—संकरप्रिय मम द्रोही, सिव-द्रोही मम दास ।
ते नर करहिं कलप-भरि घोर नरक महुँ बास ॥ २ ॥

जे रामेस्वर-दरसनु करिहहिं । ते तनु तजि मम लोक सिधरिहहिं ॥
जो गंगाजलु आनि चढ़ाइहि । सो साजुज्य-मुक्ति[१] नर पाइहि ॥
होइ अकाम[२] जो छल तजि सेइहि । भगति मोरि तेहि संकर देइहि ॥ ३ ॥

(१०९) प्रहस्त का परामर्श

[छन्द-संख्या ३ (शेषांश) से ८/६ सेतु पर सेना का प्रस्थान तथा समुद्र के जीवों का प्रकट हो कर राम के दर्शन, समुद्र पार करने के बाद राम का कपियों को फल-मूल खाने का आदेश और उनके द्वारा राक्षसों का नाक-कान काट कर विरूपण, राक्षसों द्वारा रावण को सभी बातों की सूचना और उसकी व्याकुलता, रावण द्वारा मन्दोदरी का प्रबोधन और सभा में आकर मन्त्रियों से युद्ध-सम्बन्धी युक्ति पूछने पर उनकी दम्भोक्ति ।]

---

२ १ अत्यन्त सुन्दर; २ शिवलिंग की स्थापना; ३ संकल्प; ४ सुग्रीव ।

३ १ सायुज्य मुक्ति, वह मुक्ति है, जिसमें जीव भगवान् से मिल कर एक हो जाता है; २ कामना-रहित ।

दो०—सब के वचन श्रवन सुनि कह प्रहस्त[1] कर जोरि।
'नीति-विरोध न करिअ प्रभु ! मन्त्रिन्ह मति अति थोरि ॥ ८ ॥

कहहिं सचिव सठ ठकुरसोहाती। नाथ ! न पूर आव एहि भाँती[1] ॥
बारिधि नाघि एक कपि आवा। तासु चरित मन महुँ सबु गावा ॥
छुधा न रही तुम्हहि तब काहू। जारत नगरु कस न[2] धरि खाहू ॥
सुनत नीक, आगें दुख पावा। सचिवन अस मत प्रभुहि सुनावा ॥
जेहिं बारीस[3] बँधायउ हेला[4]। उतरेउ सेन समेत सुबेला[5] ॥
सो भनु मनुज, खाब हम भाई[6] ! बचन कहहिं सब गाल फुलाई[7] ॥
तात ! बचन मम सुनु अति आदर। जनि मन गुनहु मोहि करि कादर[8] ॥
प्रिय बानी जे सुनहिं, जे कहहीं। ऐसे नर निकाय जग अहहीं ॥
बचन परम हित सुनत कठोरे। सुनहिं, जे कहहिं ते नर प्रभु ! थोरे ॥
प्रथम बसीठ[9] पठउ सुनु नीती। सीता देइ करहु पुनि प्रीती ॥

दो०—नारि पाइ फिरि जाहिं जौं, तौ न बढ़ाइअ रारि[10]।
नाहिं त सन्मुख समर महि तात ! करिअ हठि मारि ॥ ९ ॥

यह मत जौं मानहु प्रभु ! मोरा। उभय प्रकार सुजसु जग तोरा ॥

(११०) चन्द्र-कलंक

[छन्द-संख्या १० (शेषांश) से दोहा संख्या ११ (क) प्रहस्त पर रावण का क्रोध और प्रहस्त का अपने भवन के लिए प्रस्थान, सन्ध्या समय रावण का लंका शिखर पर अखाड़ा-दर्शन, सुबेल के एक उच्च शिखर पर लक्ष्मण आदि के साथ आसीन राम की शोभा।]

दो०—पूरब दिसा बिलोकि प्रभु देखा उदित मयंक[1]।
कहत सबहि देखहु ससिहि मृगपति सरिस असंक[2] ॥११(ख)॥

---

८ १ रावण का पुत्र प्रहस्त।

९ १ इससे काम चलने वाला नहीं है, २ क्यों नहीं, ३ समुद्र, ४ खेल-खेल में, ५ सुबेल पर्वत पर, ६-७ कहते तो, क्या वह मनुष्य है, जिसे, हे भाई ! तुम कहते हो कि हम खा जायेंगे ? सब लोग गाल फुला कर (घमण्ड के साथ) ऐसे वचन कह रहे हैं, ८ कायर, ९ दूत; १० झगड़ा।

११ १ चन्द्रमा, २ सिंह की तरह निडर।

पूरब दिसि गिरिगुहा[1] निवासी। परम प्रताप तेज बल रासी ॥
मत्त-नाग तम-कुंभ बिदारी[2] । ससि केसरी[3] गगन बन चारी[4] ॥
बिथुरे नभ मुकुताहल-तारा। निसि सुंदरी[5] केर सिंगारा ॥
कह प्रभु ससि महुँ मेचकताई[6] । कहहु काह निज निज मति भाई ॥
कह सुग्रीव सुनहु रघुराई ! ससि महुँ प्रगट भूमि कै झाँई ॥"
मारेउ *राहु ससिहि , कह कोई। उर महँ परी स्यामता[7] सोई ॥
कोउ कह जब बिधि रति मुख कीन्हा[8]। सार भाग ससि कर हरि लीन्हा ॥
छिद्र सो प्रगट इंदु उर माहीं। तेहि मग देखिअ नभ परिछाहीं ॥
प्रभु कह गरल बंधु ससि केरा। अति प्रिय निज उर दीन्ह बसेरा ॥
बिष संजुत कर निकर[9] पसारी। जारत बिरहवंत नर-नारी ॥
दो०—कह हनुमंत सुनहु प्रभु ! ससि तुम्हार प्रिय दास।
तव मूरति बिधु उर बसति सोइ स्यामता अभास[10] ॥ १२(क) ॥

(१११) रावण का अखाड़ा

दो०—पवन-तनय[11] के बचन सुनि बिहँसे रामु सुजान।
दच्छिन दिसि अवलोकि प्रभु बोले कृपानिधान ॥ १२ (ख) ॥

देखु बिभीषन ! दच्छिन आसा[1] । घन घमंड दामिनी बिलासा[2] ॥
मधुर मधुर गरजइ घन घोरा। होइ बृष्टि जनि[3] उपल[4] कठोरा ॥
कहत बिभीषन सुनहु कृपाला ! होइ न तड़ित[5] न बारिद माला[6] ॥
लंका सिखर उपर आगारा[7] । तहँ दसकंधर देख अखारा[8] ॥
छत्र मेघडंबर सिर धारी[9] । सोइ जनु जलद घटा अति कारी ॥
मंदोदरी श्रवन ताटंका[10] । सोइ प्रभु ! जनु दामिनी दमंका[11] ॥

---

१२ १ पूर्वदिशा-रूपी पर्वत की गुफा, २ अन्धकार-रूपी मतवाले हाथी का मस्तक फाड़ने वाला, ३ चन्द्रमा-रूपी सिंह, ४ आकाश-रूपी वन में विचरण करने वाला, ५ रात्रि रूपी सुन्दरी, ६ कालिमा, ७ काला दाग, ८ रति का मुख बनाया, ९ विष से युक्त (विषैली) किरणों का समूह, १० साँवलेपन की झलक, ११ हनुमान् ।

१३ १ दक्षिण दिशा की ओर, २ बादल घुमड़ रहे हैं बिजली चमक रही है, ३ मानो, ४ ओले, ५ बिजली, ६ बादलों का समूह, ७ आगार महल, ८ (नाच-गान का) अखाड़ा, ९ (रावण) मेघडम्बर छत्र (मेघ की तरह बड़ा और काला छत्र) धारण किये हुए है, १० कर्णफूल, ११ दमक रही है ।

बाजहिं ताल मृदंग अनूपा। सोइ रव[12]मधुर, सुनहु सुरभूपा[13]॥"
प्रभु मुसुकान, समुझि अभिमाना[14]। चाप चढ़ाइ बान संधाना॥

दो०—छत्र मुकुट ताटंक तब हते[15] एकही बान।
सब कें देखत महि परे[16] मरमु न कोऊ जान॥ १३(क)॥
अस कौतुक करि राम-सर प्रबिसेउ आइ निषंग[17]।
रावण-सभा ससंक[18] सब देखि महा-रसभंग[19]॥ १३(ख)॥

कंप न भूमि, न मरुत बिसेषा[1]। अस्त्र सस्त्र कछु नयन न देखा॥
सोचहिं सब निज हृदय मझारी[2]। असगुन भयउ भयंकर भारी॥
दसमुख देखि सभा भय पाई। बिहसि बचन कह जुगुति बनाई[3]॥
'सिरउ गिरे संतत[4] सुभ जाही। मुकुट परे कस असगुन ताही॥
सयन करहु निज-निज गृह जाई"। गवने भवन सकल सिर नाई॥
मंदोदरी सोच उर बसेऊ। जब ते श्रवनपूर[5] महि खसेऊ॥१४॥

(११२) अंगद-पैंज

[छन्द-संख्या १४ (शेषांश) से ३४/७ मन्दोदरी द्वारा राम के विश्व रूप का वर्णन कर रावण से राम के प्रति शत्रुता त्यागने की प्रार्थना, रावण द्वारा नारी जाति के अवगुणों का उल्लेख, मन्दोदरी का प्रबोधन तथा प्रातःकाल राजसभा में आगमन, मन्त्रियों के परामर्श से राम द्वारा अंगद का दूत के रूप में प्रेषण, रावण के पुत्र का वध करने के बाद *अंगद का राजसभा में आगमन तथा रावण-अंगद-संवाद,* सभा में धरती पर अंगद के मुष्टिका-प्रहार से भूकम्प, भूकम्प से गिरे हुए रावण के मुकुटों में से चार का अंगद द्वारा राम के पास प्रक्षेपण, रावण का क्रोध और उस पर अंगद का आक्रोश।]

समुझि राम प्रताप कपि कोपा। सभा माझ पन करि[1] पद रोपा॥
"जौं मम चरन सकसि सठ'टारी। फिरहिं रामु, सीता मैं हारी॥'

---

१३. १२. आवाज, १३ देवताओं के राजा राम; १४ (रावण का) अभिमान, १५ काट गिराये, १६ धरती पर गिर पड़े, १७ तरकस, १८ सशंक, भयभीत, १९ रंग में भंग।

१४ १ विशेष मारुत (हवा), आँधी, २ हृदय में, ३ युक्ति बना कर, बात बना कर, ४ सदैव, बराबर, ५ कर्णफूल।

३४. १ प्रण कर, दृढ़ता के साथ।

"सुनहु सुभट! सब", कह दससीसा। "पद गहि धरनि पछारहु कीसा[2] ।।"
इंद्रजीत आदिक बलवाना। हरषि उठे जहँ-तहँ भट नाना ।।
झपटहिं करि बल बिपुल उपाई। पद न टरइ, बैठहिं सिरु नाई ।।
पुनि उठि झपटहिं सुर-आराती[3]। टरइ न कीस-चरन, एहि भाँती ।।
पुरुष कुजोगी[4] जिमि उरगारी! मोह-बिटप नहिं सकहिं उपारी[5] ।।

दो०—कोटिन्ह मेघनाद सम सुभट उठे हरषाइ।
झपटहिं टरै न कपि-चरन, पुनि बैठहिं सिर नाइ ।। ३४ (क) ।।

भूमि न छाँडत कपि-चरन देखत, रिपु-मद-भाग।
कोटि बिघ्न ते संत कर मन जिमि नीति न त्याग ।। ३४ (ख) ।।

कपि-बल देखि सकल हियँ हारे। उठा आपु कपि कें परचारे[1] ।।
गहत चरन, कह बालिकुमारा। "मम पद गहें न तोर उबारा ।।
गहसि न राम-चरन, सठ! जाई।" सुनत फिरा मन अति सकुचाई ।।
भयउ तेजहत, श्री सब गई। मध्य-दिवस जिमि ससि सोहई ।।
सिंघासन बैठेउ सिर नाई। मानहुँ संपति सकल गँवाई ।।

(११३) मन्दोदरी की शिक्षा

[छन्द-संख्या ३५ (अवशिष्ट भाग) रावण का मान भंग करने के बाद अंगद का राम के पास आगमन।]

दो०—साँझ जानि दसकंधर भवन गयउ बिलखाइ।
मंदोदरी रावनहि बहुरि कहा समुझाइ ।।३५(ख) ।।

"कंत! समुझि मन तजहु कुमतिही[1]। सोह न समर तुम्हहि रघुपतिही ।।
रामानुज लघु रेख खचाई। सोउ नहिं नाघेहु, असि मनुसाई[2] ।।
पिय! तुम्ह ताहि जितब संग्रामा। जाके दूत केर यह कामा ।।
कौतुक सिंधु नाघि, तव लंका। आयउ कपि-केहरी असंका ।।
रखवारे हति बिपिन उजारा। देखत तोहि अच्छ[3] तेहिं मारा ।।
जारि सकल पुर कीन्हेसि छारा। कहाँ रहा बल गर्ब तुम्हारा ।।

---

३४ २ बन्दर, ३ देवताओं के शत्रु राक्षस; ४ कुयोगी, विषयी व्यक्ति; ५ उखाड़ नहीं सकते।

३५. १ ललकारने पर।

३६. १ कुबुद्धि; २ पुरुषत्व; ३ अक्षयकुमार।

अब पति! मृषा[४] गाल जनि मारहु । मोर कहा कछु हृदयँ बिचारहु ॥
पति! रघुपतिहि नृपति जनि मानहु । अग जग-नाथ, अतुलबल जानहु ॥
बान प्रताप जान मारीचा । तासु कहा नहिं मानेहि नीचा ॥
जनक-सभाँ अगनित भूपाला । रहे तुम्हउ, बल अतुल बिसाला ॥
भंजि धनुष जानकी बिआही । तब संग्राम जितेहु किन[५] ताही ॥
सुरपति-सुत जानइ बल थोरा । राखा जिअत, आँखि गहि फोरा ॥
सूपनखा कै गति तुम्ह देखी । तदपि हृदयँ नहिं लाज बिसेषी ॥

दो०—बधि *बिराध *खर *दूषनहि, लीलाँ हत्यो *कबंध ।
बालि एक सर मारयो, तेहि जानहु दसकंध ॥३६॥

जेहिं जलनाथ[१] बँधायउ हेला । उतरे प्रभु दल-सहित सुबेला ॥
कारुनीक दिनकर-कुल-केतू । दूत पठायउ तव हित हेतू ॥
सभा माझ जेहिं तव बल मथा । करि-बरूथ[२] महुँ मृगपति जथा ॥
अंगद हनुमत अनुचर जाके । रन बाँकुरे, बीर अति बाँके ॥
तेहि कहँ पिय! पुनि पुनि नर कहहू । मुधा[३] मान-ममता मद बहहू ॥
अहह कंत! कृत राम-बिरोधा । काल बिबस मन उपज न बोधा[४] ॥
काल दंड गहि काहु न मारा । हरइ धर्म-बल बुद्धि बिचारा ॥
निकट काल जेहि आवत साईं । तेहि भ्रम होइ तुम्हारिहि नाईं ॥

दो०—दुइ सुत मरे, दहेउ पुर, अजहुँ पूर पिय! देहु[५] ।
कृपासिंधु रघुनाथ भजि नाथ! बिमल जसु लेहु ॥"३७॥

नारि-बचन सुनि बिसिख[१]-समाना । सभाँ गयउ उठि होत बिहाना ॥३८॥

(११४) राक्षसों की सद्गति

[छन्द संख्या ३८ (शेषांश) से ४४ अंगद द्वारा रावण के चार मुकुटों के प्रक्षेपण के सम्बन्ध में राम की जिज्ञासा, अंगद का उत्तर और राम की महिमा, सचिवों के परामर्श से राम द्वारा लंका के चार द्वारों के लिए कपियों की चार सेनाओं का प्रेषण, कपियों का आक्रमण

---

३६ ४ झूठमूठ, व्यर्थ ही, ५ क्यों नहीं ।

३७ १ समुद्र, २ हाथियों का झुण्ड, ३ व्यर्थ; ४ ज्ञान, ५ हे प्रिय ! अब भी पूर्ति (समाप्ति) कर दीजिये ।

३८ १ तीर ।

लंका में कोलाहल, रावण के सैनिकों का प्रत्याक्रमण और भयानक युद्ध, अपने दल की विचलित अवस्था की जानकारी से रावण का क्रोध और युद्धभूमि से भागने वाले सैनिकों के वध का आदेश, लज्जित राक्षस सैनिकों का आक्रमण, वानर-सेना में भगदड़ की सूचना से, लंका के पश्चिम द्वार पर मेघनाद के विरुद्ध सघर्षरत हनुमान् का क्रोध, गढ़ के ऊपर आ कर मेघनाद पर पर्वत ले कर आक्रमण तथा मूर्छित मेघनाद को रथ पर डाल कर सारथी का उसके घर के लिए प्रस्थान, हनुमान और अंगद का रावण के भवन पर उत्पात पुनः शत्रु सेना में युद्ध और उनके द्वारा फेंके गये राक्षसों के सिरों का रावण के सामने पतन।]

महा महा मुखिआ[1] जे पावहिं। ते पद गहि प्रभु पास चलावहिं॥
कहइ बिभीषनु तिन्ह के नामा। देहिं राम तिन्हहू निज धामा॥
खल, मनुजाद[2] द्विजामिष भोगी[3]। पावहिं गति जो जाचत जोगी॥
उमा! राम मृदुचित, करुनाकर। बयर भाव सुमिरत मोहि निसिचर॥
देहिं परम गति सो जियँ जानी। अस कृपाल को कहहु भवानी॥
अस प्रभु सुनि न भजहिं भ्रम त्यागी। नर मतिमंद ते परम अभागी॥४५॥

(११५) माल्यवन्त की चेतावनी

[छन्द-संख्या ४५ (शेषांश) से ४८।४ अंगद और हनुमान का दुर्ग में प्रवेश और शत्रु-सैनिकों का मर्दन, साँझ होने पर उनकी राम के पास वापसी और वानर भालुओं के लौटते समय राक्षसों का आक्रमण, दोनों पक्षों में युद्ध, सेनापति अकम्पन अतिकाय आदि राक्षसों की माया में फँसे अन्धकार और रक्त तथा पत्थरों की वर्षा के कारण वानर-समूह की व्याकुलता, राम द्वारा अंगद और हनुमान् का प्रेषण, राम के अग्निबाण के प्रकाश से वानर भालुओं की भय मुक्ति, अंगद-हनुमान् की ललकार से राक्षस-सैनिकों का पलायन तथा वानर भालुओं द्वारा उनका विनाश, रात का समय जान कर चारों वानर सेनाओं की वापसी और राम की दृष्टि के स्पर्श से उनका श्रम परिहार, अपने आधे सैनिकों के विनाश की सूचना पा कर रावण का सचिवों से परामर्श।]

---

४५ १ प्रधान सेनापति, २ मनुष्य का आहार करने वाले, ३ ब्राह्मणों का मांस खाने वाले।

माल्यवत अति जरठ[1] निसाचर। रावन-मातु पिता[2] मंत्री बर ॥
बोला बचन, नीति अति पावन। "सुनहु तात[1] कछु मोर सिखावन॥
जब ते तुम्ह सीता हरि आनी। असगुन होहिं, न जाहिं बखानी॥
बेद पुरान जासु जसु गायो। राम बिमुख काहुँ न सुख पायो॥
दो०—हिरन्याच्छ भ्राता-सहित[3], मधु-कैटभ बलवान[4]।
जेहिं मारे, सोइ अवतरेउ कृपासिंधु भगवान ॥४८(क)॥
कालरूप, खल-बन-दहन, गुनागार, घनबोध,[5]।
सिव बिरंचि जेहि सेवहिं, तासों कवन बिरोध ॥४८(ख)॥
परिहरि बयरु देहु बैदेही। भजहु कृपानिधि परम सनेही॥"
ताके बचन बान-सम लागे। "करिआ मुहु करि जाहि अभागे[1]॥
बूढ़ भएसि, न त मरतेउँ तोही। अब जनि नयन देखावसि मोही॥"
तेहिं अपने मन अस अनुमाना। बध्यो चहत एहि कृपानिधाना॥४९॥

(११६) भरत-हनुमान्-संवाद

[छन्द-संख्या ४९ (शेषांश) से ५८।६ क्रुद्ध मेघनाद का सबेरे युद्ध में कौतुक दिखलाने का सङ्कल्प और उसके प्रति रावण का स्नेह, सबेरे वानरो द्वारा चारो द्वारा की घेराबन्दी, राक्षसो का उन पर विविध *अस्त्र-शस्त्रो तथा गढ से ढाए असंख्य पर्वत-शिखरो से आक्रमण*, मेघनाद का दुर्ग से उतर कर राम आदि को ललकार, उसके बाणो से वानर-*भालुओ का पलायन तथा हनुमान् को अपने ऊपर विशाल पर्वत फेंकते* देख कर उसका आकाश मे आरोहण, मेघनाद का राम पर आक्रमण और निष्फल होने पर माया का प्रसार, वानरो की व्याकुलता देख कर राम द्वारा माया का निवारण, लक्ष्मण और मेघनाद का युद्ध और मेघनाद के शक्तिबाण से लक्ष्मण की मूर्च्छा, सन्ध्या समय मूर्च्छित लक्ष्मण को देख कर राम का विषाद, रावण के वैद्य सुषेण के परामर्श से औषधि के लिए हनुमान् का प्रस्थान, रावण से प्रेरित कालनेमि राक्षस का मार्ग मे मुनिवेश धारण कर हनुमान् का सम्मोहन, उसका शिष्य

---

४८. १ बूढा, २ रावण की माता का पिता, रावण का नाना; ३ *हिरण्याक्ष को उसके भाई हिरण्यकशिपु के साथ, ४ *मधु और *कैटभ नामक बलवान् राक्षसों को, ५ ज्ञानघन, ज्ञान के भण्डार।

४९. १ रे अभागे! अपना मुँह काला कर जा।

बनने के लिए सरोवर मे स्नान करते समय हनुमान् द्वारा मकरी का वध और दिव्यदेहधारी मकरी से सूचना पा कर कालनेमि का वध, हनुमान् की यात्रा ।]

देखा सैल, न औषध चीन्हा । सहसा कपि उपारि[1] गिरि लीन्हा ।।
गहि गिरि, निसि नभ धावत भयऊ । अवधपुरी ऊपर कपि गयऊ ।।

दो०—देखा भरत बिसाल अति, निसिचर मन अनुमानि ।
बिनु फर[2] सायक मारेउ चाप श्रवन लगि तानि[3] ।। ५८ ।।

परेउ मुरुछि महि, लागत सायक । सुमिरत राम-राम रघुनायक ।।
सुनि प्रिय बचन, भरत तब धाए । कपि-समीप अति आतुर आए ।।
बिकल बिलोकि कीस उर लावा । जागत नहिं, बहु भाँति जगावा ।।
मुख मलीन, मन भए दुखारी । कहत बचन भरि लोचन बारी ।।
"जेहिं बिधि[1] राम-बिमुख मोहि कीन्हा । तेहिं पुनि यह दारुन दुख दीन्हा ।।
जौं मोरे मन, बच अरु काया । प्रीति राम-पद-कमल अमाया ।।
तौ कपि होउ बिगत-श्रम-सूला[2] । जौं मो पर रघुपति अनुकूला ।।"
सुनत बचन उठि बैठ कपीसा । कहि जय-जयति कोसलाधीसा ।।

सो०—लीन्ह कपिहि उर लाइ पुलकित तनु लोचन सजल ।
प्रीति न हृदयँ समाइ सुमिरि राम रघुकुल तिलक ।। ५९ ।।

"तात ! कुसल कहु सुखनिधान की । सहित-अनुज अरु मातु जानकी ।।"
कपि सब चरित समास[1] बखाने । भए दुखी, मन महुँ पछिताने ।।
"अहह दैव ! मैं कत जग जायउँ । प्रभु के एकहु काज न आयउँ ।।"
जानि कुअवसरु, मन धरि धीरा । पुनि कपि सन बोले बलबीरा[2] ।।
"तात ! गहरु[3] होइहि तोहि जाता । काजु नसाइहि होत प्रभाता ।।
चढ़ु मम सायक सैल-समेता । पठवौं तोहि जहँ कृपानिकेता ।।"
सुनि कपि-मन उपजा अभिमाना । मोरे भार चलिहि किमि बाना ।।
राम-प्रभाव बिचारि बहोरी । बंदि चरन, कह कपि कर जोरी ।।

---

५८. १ उखाड़; २ बिना फल का, ३ कान तक धनुष तान कर ।
५९. १ जिस विधाता ने, २ थकावट और पीडा से मुक्त ।
६०. १ संक्षेप मे; २ बलवान्; ३ विलम्ब ।

देखि विभीषनु आगे आयउ। परेउ चरन, निज नाम सुनायउ ॥
अनुज उठाइ हृदयँ तेहि लायो। रघुपति-भक्त जानि मन भायो ॥
"तात! लात रावन मोहि मारा। कहत परम हित मन्त्र-बिचारा[४] ॥
तेहिं गलानि रघुपति पहिं आयउँ। देखि दीन, प्रभु के मन भायउँ ॥"
सुनु सुत! भयउ कालबस रावन। सो कि मान अब परम सिखावन ॥
धन्य धन्य तैं धन्य विभीषन! भयहु तात! निसिचर-कुल-भूषन ॥
बंधु-बंस तैं कीन्ह उजागर। भजेहु राम सोभा-सुख-सागर ॥६४॥"

(११६) कुम्भकर्ण-वध

(दोहा-सख्या ६४ से छन्द-सख्या ७१/३ विभीषण से कुम्भकर्ण के आगमन की सूचना पा कर वानरो का आक्रमण, कुम्भकर्ण के प्रहार से हनुमान्, नल-नील, अगद आदि की मूर्च्छा, मूर्च्छा भग होते ही सुग्रीव द्वारा उसका नाक-कान काट कर विरूपण, रणभूमि मे क्रुद्ध कुम्भकर्ण की विनाशलीला और इससे उत्साहित हो कर राक्षस-सेना का जमाव, राम का धनुष-टकार और असख्य बाणो की वर्षा से राक्षसो का विनाश, कुम्भकर्ण का वानरो पर पर्वतो से आक्रमण, अपने सैनिको की रक्षा के लिए राम का उससे युद्ध और अपने ऊपर पर्वत से आक्रमण का प्रयत्न करते देख कर उसकी दोनो भुजाओ का विच्छेद; राम के बाणो से भरे मुख वाले भयानक कुम्भकर्ण का दौडते हुए आक्रमण ।)

तब प्रभु कोपि तीव्र सर लीन्हा। धर ते भिन्न[१] तासु सिर कीन्हा ॥
सो सिर परेउ दसानन आगें। विकल भयउ जिमि फनि मनि-त्यागें ॥
धरनि धसइ धर, धाव प्रचंडा। तब प्रभु काटि कीन्ह दुई खंडा ॥
परे भूमि जिमि नभ तें भूधर। हेठ दाबि[२] कपि-भालु-निसाचर ॥
तासु तेज प्रभु-बदन समाना। सुर-मुनि सबहिं अचंभव[३] माना ॥
सुर दुंदुभी बजावहिं, हरषहिं। अस्तुति करहिं, सुमन बहु बरषहिं ॥
करि बिनती सुर सकल सिधाए। तेही समय *देवरिषि आए ॥
गगनोपरि[४] हरि-गुन-गन गाए। रुचिर बीररस प्रभु-मन भाए ॥
"बेगि हतहु खल," कहि मुनि गए। राम समर-महि सोभत भए ॥

---

६४. ४ मन्त्र (सलाह) और विचार।

७१. १ धड से अलग, २ अपने नीचे दबा कर, ३ अचम्भा, ४ आकाश के ऊपर से ।

छं०—संग्राम भूमि बिराज रघुपति, अतुल-बल कोसल-धनी।
श्रम-बिंदु[५] मुख, राजीव-लोचन, अरुण तन सोनित-कनी[६] ।।
भुज जुगल फेरत सर-सरासन, भालु-कपि चहुँ दिसि बने।
कह दास तुलसी, कहि न सक छबि सेष जेहि आनन घने[७] ।।
दो०—निसिचर अधम मलाकर,[८] ताहि दीन्ह निज धाम।
गिरिजा! ते नर मंदमती जे न भजहिं श्रीराम ।। ७१ ।।

दिन के अंत फिरी द्वौ अनी[१]। समर भई सुभटन्ह श्रम घनी ।।
राम-कृपाँ कपि-दल-बल बाढ़ा। जिमि तृन पाइ लाग अति डाढ़ा[२] ।।
छीजहिं निसिचर दिनु अरु राती। निज मुख कहें सुकृत जेहि भाँती ।।
बहु बिलाप दसकंधर करई। बंधु-सीस पुनि पुनि उर धरई ।।
रोवहिं नारि हृदय हति पानी[३]। तासु तेज-बल बिपुल बखानी ।। ७२ ।।

(१२०) नागपाश

[छन्द-संख्या ७२ (शेषांश) से ७३/६ मेघनाद द्वारा रावण का प्रबोधन और दूसरे दिन अपनी वीरता दिखलाने की प्रतिज्ञा, प्रातःकाल युद्ध आरम्भ होने पर मेघनाद का मायामय रथ पर सवार हो कर आकाश से अनेक प्रकार के अस्त्र शस्त्रों की वर्षा तथा राम पर आक्रमण]

पुनि रघुपति सैं जूझै लागा। सर छाँडइ होइ लागहिं नागा[१] ।।
ब्याल-पास[२]-बस भए खरारी[३]। स्वबस,[४] अनंत, एक, अबिकारी ।।
नट-इव कपट-चरित[५] कर नाना। सदा स्वतंत्र, एक भगवाना ।।
रन-सोभा लगि प्रभुहिं बँधायो। नागपास देवन्ह भय पायो ।।
दो०—गिरिजा! जासु नाम जपि मुनि काटहिं भव-पास[६]।
सो कि बंध तर आवइ ब्यापक, बिस्व-निवास[७] ।। ७३ ।।

---

७१ ५ पसीने की बूँदें, ६ रक्त के कण, ७ बहुत-से (घने) मुखों वाले शेषनाग, ८ पाप के भण्डार।

७२ १ दोनों सेनाएँ, २ बहुत दाह होता है, आग और भी प्रज्वलित होती हैं, ३ हाथ से छाती पीट-पीट कर।

७३ १ साँप हो कर लगते हैं, २ नागपाश, ३ खर के शत्रु राम, ४ स्वतन्त्र, ५ दिखावटी खेल, ६ संसार के बन्धन, ७ विश्वरूप।

दो०—ताहि कि सपति, सगुन सुभ, सपनेहुँ मन विश्राम।
भूत-द्रोह-रत[१२] मोहवस, राम-विमुख, रति-काम[१३]॥ ७८ ॥

चलेउ निसाचर-कटकु[१] अपारा। चतुरंगिनी अनी[२] बहु धारा[३]॥
बिबिधि भाँति बाहन, रथ, जाना[४]। बिपुल बरन पताक-ध्वज नाना॥
चले मत्त-गज जूथ[५] घनेरे। प्राविट-जलद[६] मरुत जनु प्रेरे॥
बरन-बरन बिरदैत - निकाया[७]। समर-सूर जानहिं बहु माया॥
अति बिचित्र बाहिनी बिराजी। बीर बसत सेन जनु साजी॥
चलत कटक दिगसिंधुर[८] डगहीं। छुभित पयोधि, कुधर[९] डगमगहीं॥
उठी रेनु[१०], रवि गयउ छपाई। मरुत थकित, बसुधा अकुलाई॥
पनव[११]-निसान घोर रव बाजहिं। प्रलय समय के घन जनु गाजहिं॥
भेरि नफीरि[१२] बाज सहनाई। मारू राग[१३] सुभट-सुखदाई॥
केहरि नाद बीर सब करहीं। निज-निज बल पौरुष उच्चरहीं॥
कहइ दसानन, सुनहु सुभट्टा। मर्दहु भालु-कपिन्ह के ठट्टा[१४]॥
हौं[१५] मारिहउँ भूप द्वौ भाई।" अस कहि सन्मुख फौज रेंगाई[१६]॥
यह सुधि सकल कपिन्ह जब पाई। धाए करि रघुबीर - दोहाई॥

छं०— धाए बिसाल कराल मर्कट-भालु काल-समान ते।
मानहुँ सपच्छ उड़ाहिं भूधर-बृंद, नाना बान[१७] ते॥
नख - दसन - सैल महाद्रुमायुध[१८], सबल संक न मानहीं।
जय राम, रावन मत्त गज मृगराज[१९] सुजसु बखानहीं॥

(१२३) धर्मरथ

दो०— दुहु दिसि जय-जयकार करि निज निज जोरी जानि[२०]।
भिरे बीर इत रामहि, उत रावनहि बखानि॥७९॥

---

७८ १२ प्राणियों के प्रति शत्रुता मे लीन, १३ काम मे आसक्ति रखने वाला, कामासक्त।

७९. १ कटक =सेना; २ सेना, ३ बहुत-सी पक्तियों या टुकड़ियों मे बँट कर, ४ यान, ५ यूथ, अर्थात् झुण्ड, ६ वर्षा के मेघ, ७ वीरो के समूह, ८ दिग्गज, ९ पर्वत, १० धूल, ११ ढोल, १२ भेरी और तुरही, १३ मारू राग, युद्ध के समय का विशेष राग; १४ झुण्ड, १५ मैं; १६ बढ़ा दी; १७ वर्ण, रग, १८ महाद्रुम (विशाल वृक्ष)-रूपी आयुध, १९ रावण-रूपी मतवाले हाथी के लिए सिह, २० अपनी-अपनी जोडी समझ कर।

रावनु रथी[१] विरथ[२] रघुबीरा। देखि बिभीषन भयउ अधीरा ॥
अधिक प्रीति मन, भा सदेहा। बंदि चरन कह सहित सनेहा ॥
'नाथ! न रथ नहिं तन पद-त्राना[३]। केहि बिधि जितब बीर बलवाना ॥"
"सुनहु सखा!' कह कृपानिधाना। "जेहि जय होइ, सो स्यदन आना[४]॥
"सौरज[५] धीरज तेहि रथ चाका। सत्य-सील दृढ ध्वजा-पताका ॥
बल - बिबेक दम परहित घोरे[६]। छमा - कृपा - समता रजु जोरे[७] ॥
ईस-भजनु सारथी सुजाना। बिरति चर्म[८], सतोष कृपाना[९] ॥
दान परसु बुधि सक्ति[१०] प्रचडा। बर बिग्यान कठिन कोदडा[११] ॥
अमल-अचल मन त्रोन[१२]-समाना। सम जम नियम सिलीमुख[१३]नाना ॥
कवच अभेद[१४] बिप्र गुर-पूजा। एहि सम बिजय उपाय न दूजा ॥
सखा! धर्ममय अस रथ जाकें। जीतन कहँ न कतहुँ रिपु ताकें[१५] ॥

दो०—महा अजय ससार रिपु जीति सकइ सो बीर।
जाके अस रथ होइ दृढ, सुनहु सखा! मतिधीर ॥"८० (क) ॥

[दोहे-सख्या ८० (ख) से छन्द-सख्या ९५ (दोहा पूर्व भाग) देवता, ब्रह्मा आदि विमानों में बैठ कर युद्ध देखते हैं। दोनों दलों के सैनिकों में भयानक लडाई होती है। अपने दल को विचलित देख कर रावण रथ पर सवार हो कर चल पडता है और वानरों द्वारा फेंके गये वृक्ष पत्थर और पहाड उसकी वज्र देह से टकरा कर खण्ड खण्ड हो जाते हैं। उसके आक्रमण से वानर-सेना त्रस्त हो उठती है। लक्ष्मण अपने बाणों से रावण के रथ को तोड कर सारथी का वध कर देते हैं। उनके बाणों से रावण भी बेहोश हो कर गिर पडता है। किन्तु मूर्च्छा दूर होते ही रावण ब्रह्मशक्ति चला कर उन्हें अचेत कर देता है। वह मूर्च्छित लक्ष्मण को उठा कर ले जाना चाहता है, किन्तु हनुमान् के मुक्के की चोट से गिर पडता है। हनुमान् लक्ष्मण को उठा कर राम के पास ले जाते हैं। होश में आते ही लक्ष्मण रावण की ओर चल पडते हैं और उसको बाणों से बेध

---

८० १ रथ पर सवार, २ बिना रथ के, पैदल, ३ न शरीर पर कवच और न पांवों मे जूते, ४ वह रथ (स्यन्दन) दूसरा ही रथ है, ५ शौर्य, वीरता, ६ घोडे; ७ रस्सी मे जोडे हुए हैं, ८ ढाल, ९ तलवार, १० बरछा, ११ धनुष, १२ तरकस, १३ बाण, १४ अभेद्य (वह, जिसमे छेद नहीं किया जा सके।) १५ उसको।

कर धरती पर गिरा देते हैं। दूसरा सारथी उसे रथ पर डाल कर लका ले जाता है।

विभीषण से रावण के यज्ञ की सूचना पा कर, प्रभात होते ही राम अगद आदि को यज्ञ विध्वस के लिए भेजते है। जब वानर उसकी स्त्रियों का केश पकड कर खीचने लगते हैं, तब वह क्रुद्ध हो कर उनमे भिड जाता हैं। इसी बीच वानर उसका यज्ञ-विध्वस कर देते हैं। क्रुद्ध राक्षस-सेना युद्ध के लिए प्रयाण करती है और देवताओ की प्रार्थना पर स्वय राम शार्ङ्ग धनुष ले कर सग्राम के लिए तत्पर हो जाते हैं।

राम देवताओ द्वारा भेजे गये दिव्य रथ पर चढते है। इसी समय रावण अपनी माया से लक्ष्मण-सहित अनेकानेक राम की रचना कर वानर-भालुओं को भयभीत कर देता है, किन्तु राम निमिष भर में उसकी माया काट देते हैं और उससे द्वन्द्वयुद्ध के लिए रथ बढाते हैं। एक छोटे धाग्युद्ध क बाद क्रुद्ध रावण राम पर असख्य वाण, चक्र आदि चलाता है, जिन्हे वह नष्ट कर देते है। राम रावण के सिरो को काटते जाते और उसकी धड पर नये-नये सिर उगते जाते हैं। काटे हुए सिरो से आकाश भर जाता है।

राम क्रुद्ध रावण द्वारा छोडी गयी शक्ति से विभीषण की रक्षा करते और उसके बाद विभीषण रावण से युद्ध करता है। विभीषण को थका हुआ देख कर हनुमान् रावण से लडने आते हैं। अपना पक्ष दुर्बल होते देख कर रावण माया का प्रयोग करता है।]

(१२४) रावण की माया

दो०—तब रघुबीर पचारे, धाए कीस प्रचड।
कपि बल प्रबल देखि तेहिं कीन्ह प्रगट पाषड ॥९५॥

अतरधान भयउ छन एका। पुनि प्रगटे खल रूप अनेका॥
रघुपति कटक भालु-कपि जेते। जहँ-तहँ प्रगट दसानन तेते॥
देखे कपिन्ह अमित दससीसा। जहँ-तहँ भजे भालु अरु कीसा॥
भागे, बानर, धरहिं न धीरा। 'त्राहि-त्राहि लछिमन! रघुबीरा!॥'
दहँ[१] दिसि धावहिं कोटिन्ह रावन। गर्जहिं घोर कठोर भयावन॥

---

९६. १ दस।

डरे सकल सुर, चले पराई। "जय कै आस तजहु अब भाई॥"
सब सुर जिते एक दसकंधर। अब बहु भए, तकहु गिरि-कंदर[2]॥
रहे बिरंचि-संभु मुनि ग्यानी। जिन्ह-जिन्ह प्रभु-महिमा कछु जानी॥

छं०—जाना प्रताप ते रहे निर्भय, कपिन्ह रिपु माने फुरे[3]।
चले बिचलि[4] मर्कट-भालु सकल, 'कृपाल पाहि' भयातुरे॥
हनुमंत, अंगद, नील, नल, अतिबल[5] लरत रन-बाँकुरे।
मर्दहिं दसानन कोटि-कोटिन्ह कपट-भू भट अंकुरे[6]॥

दो०—सुर-बानर देखे बिकल, हँस्यो कोसलाधीस।
सजि सारंग[7] एक सर हते सकल दससीस॥९६॥

प्रभु छन महुँ माया सब काटी। जिमि रबि उएँ जाहिं तम फाटी॥९७॥

[छन्द-संख्या ९७ (शेषांश) से ९८ पुन एक ही रावण देख कर देवताओं की प्रसन्नता और पुष्प-वर्षा, क्रुद्ध रावण का देवताओं पर आक्रमण, किन्तु अंगद द्वारा पाँव खींचने के कारण उसका भूमि पर पतन।

राम द्वारा उसके सिरों और भुजाओं का विच्छेद और उनके स्थान में नये सिरों और भुजाओं का जन्म, इस पर वानर-भालुओं का क्रोध, अंगद, हनुमान् आदि से रावण का युद्ध और उसके आघातों से उनकी मूर्च्छा। जामवन्त के आघात, से रथ से गिरते ही रावण की मूर्च्छा, रात्रि हो जाने के कारण सारथी द्वारा मूर्च्छित रावण को रथ पर डाल कर रखवाली, होश में आते ही वानर-भालुओं का राम के पास आगमन और भयभीत राक्षसों का रावण के पास जमाव।]

(१२५) सीता-त्रिजटा-संवाद

तेही निसि सीता पहिं जाई। त्रिजटा, कहि सब कथा सुनाई॥
सिर-भुज बाढ़ि सुनत रिपु केरी। सीता-उर भइ त्रास घनेरी॥
मुख मलीन, उपजी मन चिंता। त्रिजटा सन बोली तब सीता॥
"होइहि कहा, कहसि किन माता! केहि बिधि मरिहि बिस्व-दुखदाता॥

---

९६. २ पर्वत की गुफाओं में आश्रय लो, ३ सत्य, ४ विचलित हो कर, ५ अत्यन्त बलवान्, ६ कपट-रूपी भूमि से अंकुरों की तरह उत्पन्न करोड़ों योद्धा, ७ शार्ङ्ग नामक धनुष।

रघुपति सर सिर कटेहुँ न मरई। बिधि बिपरीत चरित सब करई॥
मोर अभाग्य जिआवत ओही। जेहिं हौं हरि-पद-कमल बिछोही॥
जेहिं कृत कपट-कनक मृग झूठा। अजहुँ सो दैव मोहि पर रूठा॥
जेहिं बिधि मोहि दुख दुसह सहाए। लछिमन कहुँ कटु बचन कहाए॥
रघुपति बिरह सबिष-सर[1] भारी। तकि-तकि मार[2] बार बहु मारी॥
ऐसेहुँ दुख जो राख मम प्राणा। सोइ बिधि ताहि जिआव न आना॥
बहु बिधि कर बिलाप जानकी। करि-करि सुरति कृपानिधान की॥
कह त्रिजटा सुनु राजकुमारी। उर सर लागत मरइ सुरारी[3]॥
प्रभु ताते उर हतइ न तेही। एहि के हृदयँ बसति बैदेही॥

छं० — एहि के हृदयँ बस जानकी जानकी उर मम बास है।
मम उदर भुअन अनेक लागत बान सब कर नास है॥
सुनि बचन हरष बिषाद मन अति देखि पुनि त्रिजटा कहा।
अब मरिहि रिपु एहि बिधि सुनहि सुंदरि तजहि संसय महा॥

दो० — काटत सिर होइहि बिकल छुटि जाइहि तव ध्यान।
तब रावनहि हृदय महुँ मरिहहिं रामु सुजान॥९९॥

अस कहि बहुत भाँति समुझाई। पुनि त्रिजटा निज भवन सिधाई॥
राम-सुभाउ सुमिरि बैदेही। उपजी बिरह बिथा अति तेही॥
निसिहि ससिहि निंदति बहु भाँती। जुग-सम भई सिराति न राती॥
करति बिलाप मनहिं मन भारी। राम बिरहँ जानकी दुखारी॥
जब अति भयउ बिरह उर-दाहू। फरकेउ बाम नयन अरु बाहू॥
सगुन बिचारि धरी मन धीरा। अब मिलिहहिं कृपाल रघुबीरा॥१००॥

(१२६) रावण वध

[पद-संख्या १०० (अपांश) से दोहा-संख्या १०१ (क) अर्द्धरात्रि में जागने पर रावण का रणभूमि से घर ले आने के कारण सारथी पर क्रोध, सारथी के समझा बुझा कर रोकने के बाद प्रातःकाल रथ पर बैठ कर रणभूमि में आगमन, वानर भालुओं का उस पर आक्रमण और उनसे घिर जाने पर उसके द्वारा माया का विस्तार, माया से असंख्य भूत पिशाचों की सृष्टि और वानर सेना का चिग्घाड़, एक ही तीर से रावण की माया काट कर राम द्वारा उसके सिरों और बाहुओं का विच्छेद।]

९९ १ राम का विरह रूपी विषैला तीर २ कामदेव ३ देवशत्रु रावण।

दो०—काटे सिर-भुज बार बहु, मरत न भट लंकेस ।
प्रभु क्रीडत, सुर-सिद्ध-मुनि व्याकुल देखि कलेस ।। १०१ (ख) ।।
काटत बढ़हिं सीस-समुदाई । जिमि प्रति-लाभ लोभ अधिकाई ।।
मरइ न रिपु, श्रम भयउ बिसेषा । राम बिभीषन तन तब देखा ।।
उमा ! काल मर जाकी ईछा । सो प्रभु जन कर प्रीति[1]-परीछा ।।
"सुनु सरबग्य ! चराचर-नायक ! । प्रनतपाल ! सुर-मुनि-सुखदायक ! ।।
नाभिकुंड पियूष बस याकें । नाथ ! जिअत रावनु बल ताकें ।।"
सुनत बिभीषन - बचन कृपाला । हरषि गहे कर बान कराला ।।
असुभ होन लागे तब नाना । रोवहिं खर, सृकाल[2] बहु स्वाना ।।
बोलहिं खग, जग आरति-हेतू[3] । प्रगट भए नभ जहँ - तहँ केतू[4] ।।
दस दिसि दाह होन अति लागा । भयउ परब बिनु रबि - उपरागा[5] ।।
मदोदरि - उर कम्पति भारी । प्रतिमा स्रवहिं नयन-मग बारी[6] ।।
छं० —प्रतिमा रुदहिं पबिपात[7] नभ, अति बात बह, डोलति मही ।
बरषहिं बलाहक[8] रुधिर-कच-रज असुभ अति सक को कही ।।
उतपात अमित बिलोकि नभ, सुर बिकल बोलहिं जय जए ।
सुर सभय जानि, कृपाल रघुपति चाप-सर जोरत भए ।।
दो०—खैंचि सरासन श्रवन लगि छाडे सर एकतीस ।
रघुनायक - सायक चले मानहुँ काल - फनीस[9] ।।१०२।।
सायक एक नाभि सर[1] सोषा । अपर[2] लगे भुज-सिर करि रोषा ।।
लै सिर - बाहु चले नाराचा[3] । सिर-भुज-हीन रुंड महि नाचा ।।
धरनि धसइ, धर[4] धाव प्रचंडा । तब सर हति प्रभु कृत दुइ खंडा ।।
गर्जेउ मरत घोर रव भारी । "कहाँ रामु ? रन हतौ पचारी ।।"
डोली भूमि गिरत दसकन्धर । छुभित सिंधु-सरि-दिग्गज-भूधर ।।
धरनि परेउ द्वौ खण्ड बढ़ाई[5] । चापि भालु - मर्कट - समुदाई ।।
मन्दोदरि आगे भुज - सीसा । धरि, सर चले जहाँ जगदीसा ।।
प्रबिसे सब निषंग महुँ जाई । देखि सुरन्ह दुन्दुभी बजाई ।।
तासु तेज समान प्रभु - आनन । हरषे देखि संभु - चतुरानन[6] ।।

---

१०२ १ भक्त की प्रीति; २ सियार, ३ संसार के अनिष्ट के सूचक, ४ धूमकेतु, ५ सूर्यग्रहण, ६ प्रतिमाओं की आँखों के रास्ते आँसू बहने लगे, ७ वज्रपात; ८ बादल, ९ काल-सर्प ।

१०३ १ नाभिकुण्ड, २ दूसरे, ३ बाण, ४ धड़; ५ बढ़ कर, फैल कर; ६ शिव और ब्रह्मा ।

जय - जय धुनि पूरी ब्रह्मंडा । जय रघुबीर प्रबल - भुजदंडा ॥
बरषहिं सुमन देव मुनि-बृंदा । जय कृपाल ! जय जयति मुकुंदा !"॥१०३॥

(१२७) मन्दोदरी का विलाप

[छन्द-संख्या १०३ (शेषांश) देवताओं द्वारा स्तुति और पुष्प-वर्षा, रणभूमि में राम की शोभा और उनकी कृपादृष्टि से देवताओं को अभय तथा वानर भालुओं को उल्लास ।]

पति - सिर देखत मंदोदरी । मुरुछित बिकल धरनि खसि परी ॥
जुबति बृंद रोवत उठि धाईं । तेहि उठाइ रावन पहिं आईं ॥
पति गति देखि ते करहिं पुकारा । छूटे कच नहिं बपुष सँभारा[1] ॥
उर ताड़ना करहिं बिधि नाना । रोवत करहिं प्रताप बखाना ॥
"तव बल नाथ ! डोल नित धरनी । तेज - हीन पावक-ससि-तरनी[2] ॥
सेष-कमठ सहि सकहिं न भारा । सो तनु भूमि परेउ भरि छारा ॥
*बरुन - कुबेर सुरेस समीरा । रन सन्मुख धरि काहुँ न धीरा ॥
भुजबल जितेहु काल जम साईं । आजु परेहु अनाथ की नाईं ॥
जगत - बिदित तुम्हारि प्रभुताई । सुत परिजन बल बरनि न जाई ॥
राम-बिमुख अस हाल तुम्हारा । रहा न कोउ कुल रोवनिहारा ॥
तव बस बिधि प्रपंच सब नाथा । सभय दिसिप[3] नित नावहिं माथा ॥
अब तव सिर भुज जंबुक[4] खाहीं । राम बिमुख यह अनुचित नाहीं ॥
काल बिबस पति ! कहा न माना । अग जग-नाथु मनुज करि जाना ॥

छं०—जान्यो मनुज करि दनुज - कानन - दहन-पावक[5] हरि स्वयं ।
जेहि नमत सिव ब्रह्मादि सुर, पिय ! भजेहु नहिं करुनामय ॥
आजन्म ते परद्रोह - रत - पापौघमय[6] तव तनु अयं[7] ।
तुम्हहू दियो निज धाम राम, नमामि ब्रह्म निरामयं ॥

दो०—अहह नाथ ! रघुनाथ सम कृपासिंधु नहिं आन ।
जोगि - बृंद - दुर्लभ गति तोहि दीन्हि भगवान ॥१०४॥

---

१०४ १ देह को सँभाल नहीं रही, २ तरणि -सूर्य, ३ दिक्पाल; ४ गीदड़; ५ राक्षसों के वन को जलाने वाली अग्नि; ६ पाप-समूह से पूर्ण; ७ तुम्हारा यह शरीर ।

(१२८) सीता की अग्नि-परीक्षा

(छन्द-संख्या १०५ से १०८।२ ब्रह्मा, शिव, नारद आदि की राम के दर्शन से प्रेमाकुलता; राम के आदेश से विभीषण द्वारा रावण का दाहकर्म, आदेश पा कर सुग्रीव आदि का, विभीषण का लंका नगर में राज्याभिषेक।

राम के आदेश से हनुमान् द्वारा सीता को रावण के वध और विभीषण के अभिषेक की सूचना, सीता की प्रसन्नता, हनुमान् को वरदान और राम के दर्शन की व्यवस्था करने के लिए उनसे अनुरोध।)

सुनि संदेसु भानुकुलभूषन। बोलि लिए जुबराज बिभीषन॥
"मारुतसुत के संग सिधावहु। सादर जनकसुतहि लै आवहु॥"
तुरतहिं सकल गए जहँ सीता। सेवहिं सब निसिचरी बिनीता॥
बेगि बिभीषन तिन्हहि सिखायो। तिन्ह बहु बिधि मज्जन करवायो॥
बहु प्रकार भूषन पहिराए। सिबिका[1] रुचिर साजि पुनि ल्याए॥
ता पर हरषि चढ़ी बैदेही। सुमिरि राम सुखधाम, सनेही॥
बेतपानि रच्छक[2] चहु पासा। चले सकल, मन परम हुलासा॥
देखन भालु-कीस सब आए। रच्छक कोपि[3] निवारन धाए॥
कह रघुबीर, "कहा मम मानहु। सीतहि सखा! पयादें आनहु॥
देखहुँ कपि जननी की नाईं।" बिहसि कहा रघुनाथ गोसाईं॥
सुनि प्रभु-बचन भालु-कपि हरषे। नभ ते सुरन्ह सुमन बहु बरषे॥
सीता प्रथम अनल महुँ राखी। प्रगट कीन्हि चह अंतर साखी[4]॥

दो०—तेहि कारन करुनानिधि कहे कछुक दुर्बाद[5]।
सुनत जातुधानीं[6] सब लागीं करैं बिषाद॥१०८॥

प्रभु के बचन सीस धरि सीता। बोली मन-क्रम-बचन पुनीता॥
"लछिमन! होहु धरम के नेगी[1]। पावक प्रगट करहु तुम्ह बेगी॥"
सुनि लछिमन सीता कै बानी। बिरह-बिबेक-धरम-निति[2] सानी॥
लोचन सजल, जोरि कर दोऊ। प्रभु सन कछु कहि सकत न ओऊ॥

---

१०८ १ पालकी; २ हाथों में छड़ी लिए रक्षक, ३ क्रुद्ध होकर; ४ साक्षी के बहाने (असली सीता को) अग्नि के भीतर से प्रकट करना चाहते थे, ५ ऊँच-नीच, ६ राक्षसियाँ।

१०९. १ सहायक, २ निति=नीति।

देखि राम रुख लछिमन धाए। पावक प्रगटि[3] काठ बहु लाए॥
पावक प्रबल देखि बैदेही। हृदयँ हरष नहिं भय कछु तेही॥
जौं मन-बच क्रम मम उर माहीं। तजि रघुबीर आन गति नाहीं॥
तौ कृसानु ! सब कै गति जाना। मो कहुँ होउ श्रीखंड समाना[4]॥

छं०—श्रीखंड सम पावकप्रबेस कियो, सुमिरि प्रभु मैथिली।
जय कोसलेस ! महेस बंदित चरन रति अति निर्मली॥
प्रतिबिंब[5] अरु लौकिक कलंक प्रचंड पावक महुँ जरे।
प्रभु चरित काहुँ न लखे नभ सुर सिद्ध मुनि देखहिं खरे॥१॥
धरि रूप पावक पानि गहि श्री सत्य[6] श्रुति-जग बिदित जो।
जिमि छीरसागर इंदिरा रामहि समर्पी आनि सो॥
सो राम बाम बिभाग[7] राजति रुचिर अति सोभा भली।
नव नील नीरज[8] निकट मानहुँ कनक-पंकज[9] की कली॥२॥

दो०—बरषहिं सुमन हरषि सुर बाजहिं गगन निसान।
गावहिं किंनर सुरबधू नाचहिं चढ़ीं बिमान॥१०९(क)॥

दो०—जनकसुता समेत प्रभु सोभा अमित अपार।
देखि भालु कपि हरषे जय रघुपति सुख सार॥१०९(ख)॥

तब रघुपति अनुसासन पाई। मातलि चलेउ चरन सिरु नाई॥
आए देव सदा स्वारथी। बचन कहहिं जनु परमारथी॥
दीन बंधु ! दयाल रघुराया ! देव ! कीन्हि देवन्ह पर दाया॥
बिस्व द्रोह रत यह खल कामी। निज अघ गयउ कुमारगगामी[1]॥
तुम्ह समरूप ब्रह्म अबिनासी। सदा एकरस सहज उदासी॥
अकल[2] अगुन अज अनघ अनामय। अजित अमोघसक्ति करुनामय॥
मीन कमठ सूकर नरहरी[3]। बामन परसुराम बपु धरी[4]।
जब जब नाथ! सुरन्ह दुखु पायो। नाना तनु धरि तुम्हइँ नसायो॥
यह खल मलिन सदा सुरद्रोही। काम लोभ मद रत अति कोही॥
अधम सिरोमनि[5] तव पद पावा। यह हमरें मन बिसमय आवा॥

---

१०९ ३ आग लगा कर, ४ चन्दन की तरह शीतल, ५ छाया (छाया सीता), ६ सत्य श्री असली सीता, ७ बायीं ओर, ८ कमल, ९ सोने का कमल।

११० १ कुमार्ग पर चलने वाला, २ अखण्ड, ३-४ आपने *मत्स्य, *कच्छप *वराह *नृसिंह *वामन और *परशुराम का शरीर धारण किया है ५ पापियों का सरदार।

हम देवता परम अधिकारी। स्वारथ-रत, प्रभु-भगति बिसारी ॥
भव प्रबाहँ[६] सतत हम परे। अब प्रभु पाहि! सरन अनुसरे ॥११०॥

(१२६) दशरथ-दर्शन

(दोहा संख्या ११० से छन्द-संख्या १११ देवताओं सिद्धों तथा ब्रह्मा द्वारा स्तुति)

तेहि अवसर दसरथ तहँ आए। तनय बिलोकि नयन जल छाए ॥
अनुज-सहित प्रभु बंदन कीन्हा। आसिरबाद पिताँ तब दीन्हा ॥
"तात! सकल तव पुन्य प्रभाऊ। जीत्यो अजय निसाचर राऊ ॥"
सुनि सुत-बचन प्रीति अति बाढ़ी। नयन सलिल, रोमावलि ठाढ़ी ॥
रघुपति प्रथम प्रेम अनुमाना[१]। चितइ पितहि दीन्हेउ दृढ़ ग्याना ॥
ताते उमा! मोच्छ नहिं पायो। दसरथ भेद-भगति[२] मन लायो ॥
सगुनोपासक मोच्छ न लेहीं। तिन्ह कहुँ राम भगति निज देहीं ॥
बार-बार करि प्रभुहि प्रनामा। दसरथ हरषि गए सुरधामा ॥११२॥

[दोहा-संख्या ११२, से छन्द-संख्या १२१/५ . इन्द्र द्वारा राम की स्तुति, राम के आदेश से इन्द्र द्वारा अमृत बरसा कर मरे हुए भालुओं-कपियों का पुनरुज्जीवन, देवताओं के जाने के बाद शिव का आगमन और उनके द्वारा राम की स्तुति, विभीषण द्वारा राम से अपने घर चलने और कोष से कपियों को पुरस्कार देने के लिए प्रार्थना, भरत से मिलने के लिए व्याकुल राम का अयोध्या लौटने का प्रबन्ध करने के लिए विभीषण से अनुरोध, विभीषण का विमान में बैठ कर आकाश से वस्त्रों और आभूषणों की वर्षा और मणियों को मुँह में रख कर वानरों द्वारा उनका त्याग, वस्त्रों और आभूषणों से सज्जित वानर-भालुओं का राम के पास आगमन और राम द्वारा उनकी विदाई।

सुग्रीव, नील आदि की प्रेमविह्वलता देख कर राम का उन्हें विमान पर बैठा कर उत्तर की ओर प्रस्थान, राम का सीता को युद्ध के विभिन्न स्थलों, सेतुबन्ध आदि को दिखाते हुए दण्डक वन और चित्रकूट

---

११० ६ आवागमन का चक्र।

११२. १ राम ने यह जान लिया कि दशरथ के मन में वही पहला (पुत्र-विषयक) प्रेम अब भी बना हुआ है, २ भेद-भक्ति। इस भक्ति में भक्त और भगवान् का भेद बना रहता है]

में उतर कर मुनियों के दर्शन प्रयाग मे उतर कर त्रिवेणी मे स्नान और दान हनुमान को अयोध्या भेजकर भरद्वाज से भेंट और पुन विमान से यात्रा ।]

(१३०) निषाद से भेंट

इहाँ निषाद सुना प्रभु आए। नाव-नाव कहँ लोग बोलाए॥
सुरसरि नाघि जान[1] तब आयो। उतरेउ तट प्रभु आयसु पायो॥
तब सीताँ पूजी सुरसरी। बहु प्रकार पुनि चरनन्हि परी॥
दीन्हि असीस हरषि मन गगा। 'सुंदरि! तव अहिवात अभंगा[2]॥
सुनत गुहा[3] धायउ प्रमाकुल। आयउ निकट परम सुख-संकुल[4]॥
प्रभुहि सहित बिलोकि बैदेही। परेउ अवनि तन सुधि नहि तेही॥
प्रीति परम बिलोकि रघुराई। हरषि, उठाइ लियो उर लाई॥

सब भाँति अधम निषाद सो हरि भरत ज्यों उर लाइयो ।
मतिमंद तुलसीदास सो प्रभु मोह बस बिसराइयो ॥
यह रावनारि चरित्र पावन राम पद रतिप्रद[5] सदा ।
कामादिहर[6] बिग्यानकर[7] सुर सिद्ध मुनि गावहिं मुदा[8] ॥ २ ॥

दो०—समर विजय रघुबीर के चरित जे सुनहिं सुजान ।
बिजय बिवेक बिभूति नित तिन्हहि देहिं भगवान ॥१२१(क)॥
यह कलिकाल मलायतन[9] मन ! करि देखु बिचार ।
श्रीरघुनाथ-नाम तजि नाहिन आन अधार ॥१२१(ख)॥

---

१२१ १ यान पुष्पक विमान, २ अखण्ड ३ केवट ४ आनन्द से पूर्ण हो कर, ५ राम के चरणों मे प्रेम उत्पन्न करने वाला, ६ काम आदि दोषों को दूर करने वाला, ७ सच्चा ज्ञान उत्पन्न करने वाला, ८ आनंदित हो कर, ९ पापों का खजाना ।

(१३१) अयोध्या में प्रत्यागमन

(छन्द-संख्या १ से ४/८ राम के वनवास की अवधि पूर्ण होने में एक ही दिन शेष रहने के कारण अयोध्यावासियों की चिन्ता, शुभ शकुनों से माताओं और भरत को प्रसन्नता, बटुरूपधारी हनुमान द्वारा भरत को राम के आगमन की सूचना, हनुमान् की राम के पास वापसी, भरत का अयोध्या में आगमन और वशिष्ठ तथा माताओं को सूचना, नगरवासियों का उल्लास और राम के स्वागत की तैयारियाँ, अटारियों से स्त्रियों का विमान-दर्शन और राम का विमान से सुग्रीव आदि को नगर दिखा कर उसकी प्रशंसा।)

दो०—आवत देखि लोग सब कृपासिंधु भगवान।
नगर-निकट प्रभु प्रेरेउ[१] उतरेउ भूमि बिमान ॥४(क)॥
उतरि कहेउ प्रभु पुष्पकहि 'तुम्ह कुबेर पहिं जाहु'।
प्रेरित राम चलेउ सो, हरषु बिरहु[२] अति ताहु ॥४(ख)॥

आए भरत संग सब लोगा। कृस-तन श्रीरघुबीर-बियोगा ॥
बामदेव बसिष्ट मुनिनायक। देखे प्रभु महि धरि धनु सायक ॥
धाइ धरे गुर-चरन-सरोरुह। अनुज-सहित अति पुलक तनोरुह[१] ॥
भेंटि, कुसल बूझी मुनिराया। 'हमरें कुसल तुम्हारिहिं दाया ॥'
सकल द्विजन्ह मिलि नायउ माथा। धर्म धुरंधर रघुकुलनाथा ॥
गहे भरत पुनि प्रभु-पद-पंकज। नमत जिन्हहि सुर मुनि-संकर-अज ॥
परे भूमि, नहिं उठत उठाए। बर करि[२] कृपासिंधु उर लाए ॥
स्यामल गात रोम भए ठाढ़े। नव राजीव नयन जल बाढ़े ॥

छं०—राजीव-लोचन स्रवत जल तन ललित पुलकावलि बनी।
अति प्रेम हृदयँ लगाइ अनुजहि मिले प्रभु त्रिभुअन-धनी ॥
प्रभु मिलत अनुजहि सोह, मो पहिं जाति नहिं उपमा कही।
जनु प्रेम अरु सिंगार तनु धरि मिले, बर सुषमा लही[३] ॥१॥

---

४ १ प्रेरित किया, आदेश दिया, २ अपने स्वामी के पास लौटने का हर्ष और राम से अलग होने का दुःख।

५ १ शरीर के रोम, २ बलपूर्वक; ३ उत्तम रूप में सुशोभित थे।

बूझत कृपानिधि कुसल भरतहि, बचन बेगि न आवई ।
सुनु सिवा ! सो सुख बचन-मन ते भिन्न[४], जान जो पावई ।।
"अब कुसल कौसलनाथ ! आरत जानि जन दरसन दियो ।
बूडत बिरह-बारीस[५] कृपानिधान ! मोहि कर गहि लियो ।।२।।"

दो०—पुनि प्रभु हरषि सत्रुहन भेंटे हृदयँ लगाइ ।
लछिमन - भरत मिले तब परम प्रेम दोउ भाइ ।।५।।

भरतानुज[१]-लछिमन पुनि भेंटे । दुसह बिरह-सम्भव[२] दुख मेटे ।।
सीता-चरन भरत सिरु नावा । अनुज-समेत परम सुख पावा ।।
प्रभु बिलोकि हरषे पुरबासी । जनित बियोग[३] बिपति सब नासी ।।
प्रेमातुर सब लोग निहारी । कौतुक कीन्ह कृपाल खरारी ।।
अमित रूप प्रगटे तेहि काला । जथा-जोग मिले सबहि कृपाला ।।६।।

[छन्द-संख्या ६ (शेषांश) से २०/५ एक साथ अनेक रूप धारण कर राम का पुरवासियों से मिलन, माताओं से राम, लक्ष्मण और सीता का मिलन, माताओं द्वारा आरती और आशिष, भरत के शील-स्नेह की विभीषण, सुग्रीव आदि के द्वारा प्रशंसा और राम से परिचय पा कर वसिष्ठ तथा माताओं की चरण वन्दना, अयोध्या की सजावट और उल्लास, राम का सबसे पहले अपने कर्म पर लज्जित कैकेयी के भवन जा कर उसका प्रबोधन ।

वसिष्ठ द्वारा, ब्राह्मणों को बुला कर, राज्याभिषेक के मुहूर्त का निश्चय और उनके आदेश से सुमन्त्र का लोगों को भेज कर मंगलद्रव्य का संकलन, अभिषेक के दि— राम के आदेश से सेवकों का सुग्रीव आदि को स्नान कराना, राम का भरत की जटाएँ खोलकर तीनों भाइयों को स्नान कराने के बाद अपनी जटाओं का उन्मोचन और गुरु से आदेश ले कर स्नान, स्नान के बाद राम की सज्जा, सासों द्वारा सीता की सज्जा, विप्रों द्वारा राम का अभिषेक, आकाश में देवताओं का उल्लास और उनके द्वारा राम की स्तुति, उनके जाने के बाद बन्दी वेशधारी वेदों द्वारा स्तुति, शिव का आगमन और उनके द्वारा राम की स्तुति ।

---

५. ४ परे; ५ विरह-रूपी समुद्र ।
६. १ शत्रुघ्न; २ वियोग से उत्पन्न; ३ वियोग-जनित ।

छह मास बीत जाने के बाद राम द्वारा सुग्रीव आदि को वस्त्र-आभूषण पहना कर विदाई; पितृहीन अंगद की अयोध्या में रह जाने की इच्छा और राम द्वारा, उसको समझा-बुझा कर, विदाई, कुछ समय तक राम के पास रहने के लिए सुग्रीव से अनुमति ले कर हनुमान् की वापसी, भूषण-वस्त्र देकर राम द्वारा निषादराज की विदाई।]

(१३२) राम राज्य

रघुपति-चरित देखि पुरबासी। पुनि-पुनि कहहिं, "धन्य सुखरासी!"[१]॥
राम राज बैठें त्रैलोका। हरषित भए, गए सब सोका॥
बयरु न कर काहू सन कोई। राम-प्रताप बिषमता[२] खोई॥

दो०—बरनाश्रम निज-निज धरम-निरत[३], बेद-पथ[४] लोग।
चलहिं सदा, पावहिं सुखहि, नहिं, भय-सोक, न रोग॥२०॥

दैहिक, दैविक, भौतिक तापा[१]। राम-राज नहिं काहुहि ब्यापा॥
सब नर करहिं परस्पर प्रीती। चलहिं स्वधर्म, निरत-श्रुति-नीती[२]॥
चारिउ चरन धर्म[३] जग माहीं। पूरि रहा, सपनेहुँ अघ नाहीं॥
राम-भगति-रत नर अरु नारी। सकल परम गति[४] के अधिकारी॥
अल्पमृत्यु नहिं कवनिउ[५] पीरा। सब सुंदर, सब बिरुज[६] सरीरा॥
नहिं दरिद्र, कोउ दुखी न दीना। नहिं कोउ अबुध[७], न लच्छनहीना[८]॥
सब निर्दंभ, धर्मरत, पुनी[९]। नर अरु नारि चतुर, सब गुनी॥
सब गुनग्य, पंडित, सब ग्यानी। सब कृतग्य, नहिं कपट-सयानी[१०]॥

दो०—राम-राज नभगेस[१] सुनु, सचराचर जग माहिं।
काल कर्म-सुभाव-गुन-कृत दुख[११] काहुहि नाहिं॥२१॥

भूमि सप्त-सागर-मेखला[१]। एक भूप रघुपति कोसला॥
भुअन अनेक रोम-प्रति[२] जासू। यह प्रभुता कछु बहुत न तासू॥

---

२०. १ हे सुख के पुंज राम! २ असमानता; ३ धर्म या कर्तव्य में लगे हुए; ४ वेद द्वारा निर्दिष्ट कर्म।

२१ १ ताप, कष्ट, २ वेद द्वारा बताऐ हुए कर्म में संलग्न थे; ३ धर्म के चारों चरण (तप, शौच, दया और सत्य), ४ मुक्ति; ५ किसी को भी, ६ नीरोग; ७ मूर्ख; ८ अच्छे लक्षणों से हीन, ९ पुण्यात्मा; १० किसी में कपट या धूर्तता नहीं थी; ११ काल, कर्म, स्वभाव और गुणों से उत्पन्न दुःख।

२२. १ सात समुद्रों की करधनी (मेखला) वाली पृथ्वी; २ प्रत्येक रोम में

तीर-तीर देवन्ह के मंदिर । चहुँ दिसि तिन्ह के उपवन सुंदर ।।
देखत पुरी अखिल अघ भागा । वन, उपवन, बापिका, तड़ागा ।।
दो०—रमानाथ जहँ राजा, सो पुर बरनि कि जाइ ।
अनिमादिक[४] सुख-संपदा रही अवध सब छाइ ।। २६ ।।

(१३५) सन्तों के लक्षण

(छन्द-संख्या ३० से ३७/ ५ : नगरवासियों द्वारा राम की महिमा और गुणगान, रामराज्य की धर्ममयता, एक बार भाइयों और हनुमान् के साथ उपवन जाने पर राम के पास सनकादि ऋषियों का आगमन, और राम आदि द्वारा उनकी अभ्यर्थना; सनकादि द्वारा राम की स्तुति और उनसे भक्ति का वर पा कर प्रस्थान, हनुमान् का राम से यह निवेदन कि भरत उनसे कुछ पूछना चाहते हैं और राम की अनुमति पा कर भरत का सन्तों के लक्षण के सम्बन्ध में प्रश्न ।)

संतन्ह के लच्छन सुनु भ्राता । अगनित, श्रुति-पुरान-बिख्याता ।।
संत-असंतन्हि कै असि करनी । जिमि कुठार-चंदन-आचरनी[१] ।।
काटइ परसु मलय,[२] सुनु भाई । निज गुन देइ सुगंध बसाई ।।

दो०—ताते सुर-सीसन्ह चढ़त जग-बल्लभ श्रीखंड[३] ।
अनल दाहि, पीटत घनहिं[४] परसु-बदन, यह दंड ।। ३७ ।।

बिषय-अलंपट[१] सील-गुनाकर[२] । पर-दुख दुख, सुख सुख देखे पर ।।
सम, अभूतरिपु[३], बिमद, बिरागी । लोभामरष[४]-हरष-भय त्यागी ।।
कोमलचित, दीनन्ह पर दाया । मन-बच-क्रम मम भगति अमाया ।।
सबहि मानप्रद, आपु अमानी[५] । भरत ! प्रान-सम मम ते प्रानी ।।

---

२६. ४ अणिमा आदि सिद्धियाँ ।

३७. १ जैसे कुल्हाड़ी और चन्दन का आचरण (व्यवहार) होता है; २ *कुल्हाड़ी से काटे जाने पर चन्दन; ३ चन्दन संसार भर का प्रिय होता है,* ४ घन (हथौड़े) से ।

३८. १ सांसारिक विषयों के प्रति अनासक्त, २ शील और गुणों के भाण्डार; ३ जिसका कोई शत्रु नहीं हो, ४ लोभ और क्रोध, ५ निरभिमान ।

त्रिगर्त-काम, मम नाम परायन[६]। सांति, बिरति, बिनती, मुदितायन[७] ॥
सीलसेता, सरलता मयत्री[८]। द्विज पद प्रीति धर्म-जनयत्री[९] ॥
ए सब लच्छन बसहिं जासु उर। जानेहु तात संत संतत फुर ॥
सम दम-नियम-नीति नहि डोलहिं। परुष बचन कबहूँ नहिं बोलहिं ॥

दो०—निंदा अस्तुति उभय सम ममता मम पद कंज।
ते सज्जन मम प्रानप्रिय गुन मंदिर, सुख पुंज ॥३८॥

सुनहु असंतन्ह कर सुभाऊ। भूलेहुँ संगति करिअ न काऊ ॥
तिन्ह कर संग सदा दुखदाई। जिमि कपिलहि घालइ हरहाई[१] ॥
खलन्ह हृदयँ अति ताप बिसेषी। जरहिं सदा पर संपति देखी ॥
जहँ-कहुँ निंदा सुनहिं पराई। हरषहिं मनहुँ परी निधि[२] पाई ॥
काम क्रोध-मद-लोभ परायन[३]। निर्दय, कपटी, कुटिल मलायन[४] ॥
बयरु अकारन सब काहू सों। जो कर हित अनहित ताहू सों ॥
झूठइ लेना झूठइ देना। झूठइ भोजन झूठ चबना ॥
बोलहिं मधुर बचन जिमि मोरा[५]। खाइ महा अहि[६] हृदय कठोरा ॥

दो०—पर-द्रोही, पर दार रत पर धन पर अपवाद[७]।
ते नर। पावर पापमय देह धरे मनुजाद[८] ॥३९॥

लोभइ ओढ़न लोभइ डासन। सिस्नोदर पर[१] जमपुर त्रास न[२] ॥
काहू की जौं सुनहिं बड़ाई। स्वास लेहिं जनु जूड़ी आई ॥
जब काहू कै देखहिं बिपती। सुखी भए मानहुँ जग-नृपती ॥
स्वारथ रत, परिवार बिरोधी। लंपट काम लोभ, अति क्रोधी ॥
मातु, पिता गुर बिप्र न मानहिं। आपु गए अरु घालहिं आनहिं[३] ॥
करहिं मोह-बस द्रोह परावा[४]। संत-संग, हरि-कथा न भावा ॥

---

३८ ६ मेरे नाम का निरन्तर जप करने वाला, ७ प्रसन्नता का भवन, प्रसन्न, ८ मैत्री, ९ धर्म को जन्म देने वाली।

३९ १ जैसे हरहाई (हरियाली देखते ही दौड़ पड़ने वाली) गाय अपने साथ चलने वाली कपिला (सीधी) गाय को भी पिटवा देती है २ पड़ी हुई निधि, ३ परायण = आसक्त, ४ पाप का घर, पापी; ५ मोर ६ भारी सर्प, ७ पर-निन्दा, ८ राक्षस।

४० १ कामी और पेटू, २ उन्हे जमपुर (नरक) का भी डर नहीं होता, ३ वे आप तो गय-बीते हैं ही, दूसरो को भी ले डूबते हैं, ४ दूसरो से द्रोह।

अवगुन सिंधु, मदमति, कामी। बेद-बिदूषक,[५] परधन-स्वामी ॥
बिप्र-द्रोह, पर-द्रोह बिसेषा। दंभ-कपट जियँ धरे सुबेषा[६] ॥

दो०—ऐसे अधम मनुज खल कृतजुग-त्रेताँ नाहिं।
द्वापर कछुक बृंद बहु होइहहिं कलिजुग माहिं ॥४०॥

पर हित-सरिस धर्म नहिं भाई। पर-पीडा-सम नहिं अधमाई[१] ॥
निनय सकल पुरान-बेद कर। कहेउँ तात! जानहिं कोबिद नर ॥
नर-सरीर धरि जे पर पीरा। करहिं, ते सहहिं महा भव-भीरा[२] ॥
करहिं मोह-बस नर अघ नाना। स्वारथ रत परलोक-नसाना ॥
कालरूप तिन्ह कहँ मैं भ्राता! सुभ अरु असुभ कर्म फल-दाता ॥
अस बिचारि जे परम सयाने। भजहिं मोहि संसृत[३] दुख जाने ॥
त्यागहिं कर्म सुभासुभ दायक। भजहिं मोहि सुर-नर-मुनि-नायक ॥
संत असंतन्ह के गुन भाष। ते न परहिं भव जिन्ह लखि राखे ॥

दो०—सुनहु तात! माया-कृत गुन अरु दोष अनेक।
गुन यह, उभय न देखिअहिं, देखिअ सो अबिबेक ॥४१॥

(१३६) भक्तिमार्ग की सुगमता

(छन्द-संख्या ४२ से ४३/६ बार-बार नारद का अयोध्या आगमन और ब्रह्मपुर में राम के नूतन चरित का वर्णन।

एक बार राम के बुलाने पर गुरु, द्विज और पुरवासियों का आगमन तथा उनके सामने राम द्वारा भक्तिमार्ग की प्रशंसा।)

बड़ें भाग मानुष-तनु पावा। सुर-दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा ॥
साधन धाम[१], मोच्छ कर द्वारा[२]। पाइ न जेहिं परलोक सँवारा ॥

दो०—सो परत्र[३] दुख पावइ सिर धुनि धुनि पछिताइ।
कालहि, कर्महि, ईस्वरहि मिथ्या दोष लगाइ ॥४३॥

---

४० ५ वेद-निन्दक; ६ अच्छा वेश।

४१ १ अधमता पाप, २ आवागमन का संकट ३ संसृति संसार।

४३ १ सभी साधनों का घर या आश्रय, २ मोक्ष का द्वार या माध्यम, ३ परलोक (में)।

एहि तन कर फल बिषय[१] न भाई। स्वर्गउ स्वल्प अंत दुखदाई[२] ॥
नर-तनु पाइ बिषयँ मन देहीं। पलटि सुधा ते सठ बिष लेहीं ॥
ताहि कबहुँ भल कहइ न कोई। गुंजा ग्रहइ परस मनि खोई ॥
आकर चारि,[३] लच्छ चौरासी[४]। जोनि भ्रमत यह जिव अबिनासी ॥
फिरत सदा माया कर प्रेरा। काल कर्म सुभाव गुन घेरा[५] ॥
कबहुँक करि करुना नर-देही। देत ईस, बिनु हेतु सनेही ॥
नर-तनु भव-बारिधि कहुँ बेरो[६]। सन्मुख मरुत अनुग्रह मेरो[७] ॥
करनधार सदगुर दृढ़ नावा। दुर्लभ साज सुलभ करि पावा ॥

दो०—जो न तरै भव-सागर नर समाज[८] अस पाइ।
सो कृत निंदक[९], मंदमति, आत्माहन गति जाइ[१०] ॥४४॥

जौं परलोक इहाँ सुख चहहू। सुनि मम बचन हृदयँ दृढ़ गहहू ॥
सुलभ, सुखद, मारग यह भाई। भगति मोरि पुरान-श्रुति गाई ॥
ग्यान अगम, प्रत्यूह[१] अनेका। साधन कठिन, न मन कहुँ टेका ॥
करत कष्ट बहु, पावइ कोऊ। भक्ति हीन मोहि प्रिय नहिं सोऊ ॥
भक्ति सुतंत्र, सकल सुख-खानी। बिनु सतसंग न पावहिं प्रानी ॥
पुन्य पुंज बिनु मिलहिं न संता। सतसंगति संसृति कर अंता[२] ॥
पुन्य एक जग महुँ नहिं दूजा। मन क्रम बचन बिप्र पद-पूजा ॥
सानुकूल[३] तेहि पर मुनि देवा। जो तजि कपटु करइ द्विज-सेवा ॥

दो०—औरउ एक गुपुत मत सबहि कहउँ कर जोरि।
संकर-भजन बिना नर भगति न पावइ मोरि ॥४५॥

कहहु, भगति पथ कवन प्रयासा। जोग[१] न मख[२]-जप-तप-उपवासा ॥
सरल सुभाव, न मन कुटिलाई। जथा लाभ संतोष सदाई[३] ॥

---

४४ १ भोग, २ स्वर्ग का सुख थोड़े दिनों का होता है, और अन्त में वही दुःख मिलता है, ३ जीवों के चार समूह (अण्डज, पिण्डज स्वेदज और उद्भिज), ४ चौरासी लाख योनियाँ, ५ घिरा हुआ, ६ बेड़ा, जहाज, ७ मेरा अनुग्रह ही उसके लिए सम्मुख (अनुकूल) वायु है, ८ साधन, ९ कृतघ्न, १० उसे आत्महत्या करने वाले की गति मिलती है।

४५ १ बाधाएँ; २ संसृति (जन्म-मरण के प्रवाह) का अन्त करने वाला; ३ प्रसन्न।

४६ १ योग, २ यज्ञ, ३ सदैव।

मोर दास कहाइ नर आसा[४]। करइ तौ कहहु कहा बिस्वासा॥
बहुत कहउँ का कथा बढ़ाई। एहि आचरन बस्य[५] मैं भाई॥
बैर न बिग्रह आस न त्रासा। सुखमय ताहि सदा सब आसा॥
अनारंभ,[६] अनिकेत,[७] अमानी। अनघ, अरोष दच्छ,[८] बिग्यानी॥
प्रीति सदा सज्जन संसर्गा। तृन सम बिषय स्वर्ग अपबर्गा॥
भगति पच्छ हठ नहिं सठताई। दुष्ट तर्क सब दूरि बहाई॥
दो०—मम गुन ग्राम नाम रत गत ममता मद मोह।
ता कर सुख सोइ जानइ परानंद संदोह[९]॥४६॥

(१३७) वसिष्ठ का निवेदन

(छंद संख्या ४७ सभी लोगों के द्वारा राम की स्तुति और उनके आदेश से अपने अपने घर वापसी।)

एक बार बसिष्ट मुनि आए। जहाँ राम सुखधाम सुहाए॥
अति आदर रघुनायक कीन्हा। पद पखारि पादोदक[१] लीन्हा॥
'राम सुनहु', मुनि कह कर जोरी। 'कृपासिंधु! बिनती कछु मोरी॥
देखि देखि आचरन तुम्हारा। होत मोह मम हृदय अपारा॥
महिमा अमित बेद नहिं जाना। मैं केहि भाँति कहउँ भगवाना॥
उपरोहित्य कर्म[२] अति मंदा। बेद पुरान सुमृति[३] कर निंदा॥
जब न लेउँ मैं, तब बिधि मोही[४]। कहा लाभ आगें सुत तोही॥
परमातमा ब्रह्म नर रूपा। होइहि रघुकुल भूषन भूपा॥
दो०—तब मैं हृदयँ बिचारा जोग जग्य ब्रत, दान।
जा कहुँ करिअ,[५] सो पैहउँ[६], धर्म न एहि सम आन॥४८॥
जप-तप नियम-जोग निज धर्मा[१]। श्रुति-संभव[२] नाना सुभ कर्मा॥
ग्यान दया दम[३] तीरथ मज्जन। जहँ लगि धर्म कहत श्रुति सज्जन॥
आगम निगम पुरान अनेका। पढ़े सुने कर फल प्रभु! एका॥
तव पद पंकज प्रीति निरंतर। सब साधन कर यह फल सुंदर॥

---

४६ ४ किसी मनुष्य की आशा, ५ ऐसा आचरण करने वाले के वश में ६ जो आसक्तिपूर्वक कार्य आरम्भ नहीं करता ७ जिसका कोई घर (निकेत) नहीं है ८ दक्ष निपुण, ९ परमानंद-समूह।

४८ १ चरणामृत, २ पुरोहित का काम, ३ सुमृति=स्मृति ४ मुझ से, ५ जिस परमात्मा को पाने के लिए किए जाते हैं, ६ मैं उसे ही पा जाऊंगा।

४९ १ अपने वर्ण और आश्रम के धर्म २ वेद द्वारा कहे हुए, ३ दम (इन्द्रियों का दमन)।

छूटइ मल, कि मलहि के धोएँ। घृत कि पाव कोई बारि बिलोएँ[४] ॥
प्रेम-भगति जल बिनु रघुराई। अभिअंतर मल[५] कबहुँ न जाई ॥
सोइ सर्बग्य, तग्य सोइ पंडित। सोइ गुन गृह, बिग्यान अखंडित[६] ॥
दच्छ, सकल लच्छन-जुत सोई। जाकें पद-सरोज रति होई ॥
दो०—नाथ! एक बर मागउँ, राम! कृपा करि देहु।
जन्म जन्म प्रभु पद-कमल कबहुँ घटै जनि नेहु ॥४६॥

(१३८) पार्वती की कृतज्ञता

(छन्द-संख्या ५० से ५२ ५ राम का हनुमान तथा भाइयों के साथ नगर से बाहर शीतल अमराई में विश्राम, उसी समय नारद का आगमन, स्तुति और वापसी शिव द्वारा राम की महिमा।)

उमा! कहिउँ सब कथा सुहाई। जो भुसुंडि खगपतिहि सुनाई ॥
कछुक राम गुन कहेउँ बखानी। अब का कहौं, सो कहहु भवानी ॥
सुनि सुभ कथा उमा हरषानी। बोली अति बिनीत मृदु बानी ॥
'धन्य धन्य मैं धन्य, पुरारी! सुनेउँ राम गुन भव भय-हारी[१] ॥
दो०—तुम्हरी कृपा कृपायतन! अब कृतकृत्य, न मोह।
जानेउँ राम-प्रताप प्रभु चिदानंद संदोह[२] ॥५२(क)॥
नाथ! तवानन ससि स्रवत कथा-सुधा रघुबीर[३]।
श्रवन-पुटन्हि मन पान करि नहिं अघात, मतधीर ॥५२(ख)॥
राम चरित जे सुनत अघाहीं। रस बिसेष जाना तिन्ह नाहीं ॥
जीवनमुक्त महामुनि जेऊ। हरि गुन सुनहिं निरंतर तेऊ ॥
भव सागर चह पार जो पावा। राम-कथा ता कहँ[१] दृढ़ नावा ॥
बिषइन्ह कहँ पुनि हरि गुन ग्रामा। श्रवन-सुखद अरु मन अभिरामा ॥
श्रवनवंत[२] अस को जग माहीं। जाहि न रघुपति चरित सोहाहीं ॥
ते जड़ जीव निजात्मक घाती[३]। जिन्हहि न रघुपति-कथा सोहाती ॥
हरिचरित्र मानस तुम्ह गावा। सुनि मैं नाथ! अमिति सुख पावा ॥५३॥

---

४६ ४ पानी मथने से, ५ अन्तःकरण का मैल, ६ पूर्ण (अखण्डित) विज्ञान का ज्ञाता।

५२ १ बारम्बार जन्म-मरण के भय को दूर करने वाला, २ संदोह—समूह, ३ हे नाथ! आपके मुख-रूपी चन्द्रमा से बहने वाला, रामकथा का अमृत।

५३ १ उसके लिए, २ कान वाला, ३ आत्महत्या करने वाला।

(१३९) गरुड़ का मोह

[छन्द-संख्या ५३ (शेषांश) से ५८/२ः काक-शरीरधारी भुशुण्डि के रामभक्त होने के प्रति सन्देह प्रकट करते हुए पार्वती का शिव से भुशुण्डि द्वारा रामकथा प्राप्त करने की घटना के विषय में प्रश्न, ज्ञानी गरुड द्वारा भुशुण्डि से रामकथा सुनने के विषय में भी उनका प्रश्न, इस पर शिव की प्रसन्नता और यह उल्लेख कि किस प्रकार सती की मृत्यु के बाद उन्होंने सुमेरु पर्वत से दूर, नील पर्वत के सुनहले शिखर पर, हंस पक्षी के वेश में भुशुण्डि से रामकथा सुनी।]

जब रघुनाथ कीन्हि रन क्रीडा। समुझत चरित होति मोहि व्रीडा[१]॥
इंद्रजीत-कर आपु बँधायो। तब नारद मुनि गरुड पठायो॥
बंधन काटि गयो उरगादा[२]। उपजा हृदयँ प्रचंड बिषादा॥
प्रभु-बंधन समुझत बहु भाँती। करत बिचार उरग आरानी[३]॥
ब्यापक, ब्रह्म, बिरज, बागीसा[४]। माया-मोह-पार, परमीसा[५]॥
सो अवतार सुनेउँ जग माहीं। देखेउँ सो, प्रभाव कछु नाहीं॥

दो०—भव-बंधन ते छूटहिं नर, जपि जा कर नाम।
खर्व[६] निसाचर बाँधेउ नागपास सोई राम॥५८॥

(१४०) मोह-विनाशिनी भक्ति

(छन्द-संख्या ५९ से ७०/६. शिव द्वारा गरुड का काकभुशुण्डि के यहाँ प्रेषण, भुशुण्डि का अन्य पक्षियों के साथ गरुड का स्वागत, गरुड का संशय सुनने के बाद भुशुण्डि द्वारा मानस का रूपक, नारद मोह, रावण के अवतार तथा राम के बाल्यकाल से उनके राज्य तक की समस्त कथा का उल्लेख, गरुड का मोह निवारण और कृतज्ञता तथा भुशुण्डि द्वारा मोह की शक्तिमत्ता का वर्णन।)

मोह न अंध कीन्ह केहि-केही[१]। को जग, काम नचाव न जेही॥
तृस्नाँ केहि न कीन्ह बौराहा[२]। केहि कर हृदय क्रोध नहिं दाहा[३]॥

---

५८. १ लज्जा; २ सर्प (उरग)-भक्षक (अाद), गरुड, ३ गरुड; ४ वाणी के ईश्वर, ५ परमेश्वर; ६ तुच्छ।

७०. १ किस-किस को; २ बावला, ३ जलाया।

दो०—ग्यानी, तापस, सूर, कबि, कोविद,[४] गुन-आगार।
केहि कै लोभ बिडंबना कीन्हि[५] न एहिं संसार ॥७०(क)॥
श्री-मद बक्र न कीन्ह केहि,[६] प्रभुता बधिर न काहि।
मृगलोचनि के नैन-सर को अस लाग न जाहि ॥७०(ख)॥

गुन-कृत सन्यपात नहिं केही[१]। कोउ न मान-मद तजेउ निबेही[२]॥
जोबन-ज्वर[३] केहि नहिं बलकावा[४]। ममता केहि कर जस न नसावा॥
मच्छर[५] काहि कलंक न लावा। काहि न सोक-समीर डोलावा॥
चिंता साँपिनि को नहिं खाया। को जग, जाहि न ब्यापी माया॥
कीट मनोरथ, दारु सरीरा। जेहि न लाग घुन, को अस धीरा॥
सुत-बित-लोक-ईषना[६] तीनी। केहि कै मति इन्ह कृत[७] न मलीनी॥
यह सब माया कर परिवारा। प्रबल-अमिति[८] को बरनै पारा॥
सिव-चतुरानन जाहि डेराहीं। अपर जीव केहि लेखे माहीं[९]॥

दो०—ब्यापि रहेउ संसार महुँ माया-कटक[१०] प्रचंड।
सेनापति कामादि, भट दंभ-कपट-पाषंड ॥७१(क)॥
सो दासी रघुबीर कै समुझें मिथ्या सोपि[११]।
छूट न राम-कृपा बिनु नाथ! कहउँ पद रोपि ॥७१(ख)॥

जो माया सब जगहि नचावा। जासु चरित लखि काहुँ न पावा॥
सोइ प्रभु-भ्रू-बिलास[१] खगराजा! नाच नटी-इव सहित-समाजा॥
सोइ सच्चिदानंद-घन रामा। अज बिग्यान-रूप, बल-धामा॥
ब्यापक, ब्याप्य,[२] अखंड अनंता। अखिल अमोघसक्ति भगवंता॥

---

७० ४ विद्वान्, ५ विडम्बना की, अप्रतिष्ठा करायी; ६ धन (श्री) के मद ने किसको नहीं टेढ़ा (वक्र) बना दिया ?

७१. १ गुणों से (सत्त्व, रज और तम से) उत्पन्न सन्निपात (सरसाम) किसे नहीं हुआ ? २ ऐसा कोई नहीं है, जिसे मान और मद ने अछूता रहने दिया। ३ यौवन का ज्वर, ४ आपे से बाहर कर दिया, ५ मत्सर, ईर्ष्या, ६ पुत्र, धन (वित्त) और लोक (में प्रतिष्ठा) की एषणा (कामना), ७ किया, ८ प्रबल और अपार (अमित); ९ और (अपर) जीवों की तो गिनती (लेखा) ही क्या ? १० माया की सेना; ११ वह (माया) भी।

७२. १ भौंहों के संकेत पर; २ सब में व्याप्त (व्यापक) और व्याप्य। पाठभेदः व्यापक ब्रह्म।

अगुन, अदभ्र,[3] गिरा गोतीता[4] । सबदरसी, अनवद्य,[5] अजीता ॥
निर्मम,[6] निराकार निरमोहा । नित्य, निरंजन, सुख-संदोहा ॥
प्रकृति-पार प्रभु, सब उर-बासी । ब्रह्म, निरीह, बिरज, अबिनासी ॥
इहाँ मोह कर कारन नाहीं । रबि सन्मुख तम कबहुँ कि जाहीं ॥

दो०–भगत-हेतु भगवान प्रभु राम, धरेउ तनु-भूप[7] ।
किए चरित पावन परम प्राकृत-नर-अनुरूप[8] ॥ ७२ (क) ॥
जथा अनेक बेष धरि नृत्य करइ, नट कोइ ।
सोइ सोइ भाव देखावइ आपुन होइ न सोइ ॥ ७२ (ख) ॥

असि रघुपति-लीला उरगारी । दनुज बिमोहनि, जन-सुखकारी ॥
जे मति मलिन बिषयबस कामी । प्रभु पर मोह धरहिं इमि स्वामी ॥
नयन-दोष[1] जा कहँ जब होई । पीत बरन ससि कहुँ कहँ सोई ॥
जब जेहि दिसि भ्रम होइ खगेसा । सो कह पच्छिम उयउ दिनेसा ॥
नौकारूढ़ चलत जग देखा[2] । अचल, मोह-बस आपुहि लेखा ॥
बालक भ्रमहिं न भ्रमहिं गृहादी[3] । कहहिं परस्पर मिथ्याबादी ॥
हरि-बिषइक अस मोह बिहंगा । सपनेहुँ नहिं अग्यान-प्रसंगा[4] ॥
मायाबस, मतिमंद, अभागी । हृदयँ जमनिका बहु बिधि लागी[5] ॥
ते सठ, हठ-बस संसय करहीं । निज अग्यान राम पर धरहीं ॥

दो०–काम-क्रोध मद-लोभ-रत, गृहासक्त दुखरूप[6] ।
ते किमि जानहिं रघुपतिहि, मूढ़, परे तम-कूप ॥ ७३ (क) ॥
निर्गुन-रूप सुलभ अति, सगुन जान नहिं कोइ ।
सुगम-अगम नाना चरित सुनि मुनि-मन भ्रम होइ ॥ ७३ (ख) ॥

(१४१) भुशुण्डि का मोह

(छन्द-संख्या ७४ से ७५/३ भुशुण्डि द्वारा अपने मोह के प्रसंग का उल्लेख, उनका यह उल्लेख कि वह प्रत्येक रामावतार में प्रभु का बालचरित देखने के लिए बालवेश में अयोध्या में पाँच वर्ष बिताते हैं,

---

७२. ३ पूर्ण; ४ वाणी और इन्द्रियों से परे, ५ अनिन्द्य; ६ ममता-रहित ७ राजा का शरीर; ८ सामान्य मनुष्य-जैसा।

७३. १ आँख का रोग; २ नाव में बैठे हुए व्यक्ति को संसार चलता हुआ दीखता है; ३ गृह आदि; ४ अज्ञान का प्रसंग (कारण); ५ हृदय पर बहुत प्रकार के परदे पड़े रहते हैं; ६ दुःख-रूपी गृह में आसक्त।

एक बार की बात है कि बालक राम अपने भाइयों के साथ दशरथ के भवन में खेल रहे थे।)

बालबिनोद करत रघुराई। बिचरत अजिर[1], जननि-सुखदाई॥
मरकत मृदुल कलेवर स्यामा। अंग अंग प्रति छबि बहु कामा[2]॥
नव राजीव अरुन मृदु चरना। पदज रुचिर नख, ससि-दुति हरना॥
ललित अंक-कुलिसादिक चारी[3]। नूपुर चारु मधुर रवकारी॥
चारु पुरट[4] मनि-रचित बनाई। कटि किंकिनि कल, मुखर, सुहाई॥

दो०—रेखा त्रय सुंदर उदर, नाभी रुचिर गँभीर।
उर आयत भ्राजत बिबिधि बाल-बिभूषन चीर॥ ७६॥

अरुन पानि, नख, करज[1] मनोहर। बाहु बिसाल, बिभूषन सुंदर॥
कंध बाल-केहरि, दर[2] ग्रीवा। चारु चिबुक, आनन छबि-सींवा॥
कलबल[3] बचन, अधर अरुनारे। दुइ-दुइ दसन बिसद-बर-बारे[4]॥
ललित कपोल, मनोहर नासा। सकल सुखद ससि-कर-सम हासा॥
नील-कंज-लोचन भव-मोचन। भ्राजत भाल तिलक गोरोचन॥
बिकट भृकुटि, सम श्रवन सुहाए। कुंचित कच मेचक[5] छबि छाए॥
पीत-झीनि झगुली[6] तन सोही। किलकनि-चितवनि भावति मोही॥
रूप-रासि नृप-अजिर बिहारी। नाचहिं निज प्रतिबिंब निहारी॥
मोहि सन करहिं बिबिध बिधि क्रीडा। बरनत, मोहि होति अति ब्रीडा॥
किलकत मोहि धरन जब धावहिं। चलउँ भागि तब पूप देखावहिं॥

दो०—आवत निकट हँसहिं प्रभु, भाजत रुदन कराहिं।
जाउँ समीप गहन पद फिरि फिरि चितइ पराहिं[7]॥ ७७ (क)॥
प्राकृत-सिसु-इव लीला देखि भयउ मोहि मोह।
कवन चरित्र करत प्रभु चिदानंद-संदोह॥ ७७ (ख)॥

(१४२) मोहि सेवक-सम प्रिय कोउ नाहीं

(छन्द-संख्या ७८ से ८६/२ : सन्देह उत्पन्न होने ही भुशुण्डि की मोहग्रस्तता, उनका भ्रम देख कर राम की हँसी और उन्हें पकड़ने का

---

७६. १ आँगन; २ कामदेव; ३ उनके तलवे में, वज्र, अंकुश, ध्वजा और कमल, ये चार सुन्दर चिह्न थे; ४ सोना।

७७. १ उँगलियाँ; २ शंख; ३ तोतले; ४ उजले, सुन्दर और छोटे (दाँत) ५ काला रंग; ६ बच्चों का ढीला कुरता; ७ भाग जाते हैं।

भए लोग सब मोहबस, लोभ ग्रसे सुभ कर्म।
सुनु हरिजान[4] ग्यान-निधि कहउँ कछुक कलिधर्म ॥९७(ख)॥

बरन-धर्म नहिं आश्रम चारी। श्रुति बिरोध रत सब नर-नारी॥
द्विज श्रुति-बेचक[1], भूप प्रजासन[2]। कोउ नहिं मान निगम-अनुसासन॥
मारग सोइ जा कहुँ जोइ भावा। पंडित सोइ जो गाल बजावा॥
मिथ्यारंभ[3] दंभ-रत जोई। ता कहुँ संत कहइ सब कोई॥
सोइ सयान जो परधन-हारी। जो कर दंभ, सो बड़ आचारी॥
जो कह झूँठ-मसखरी जाना। कलिजुग सोइ गुनवंत बखाना॥
निराचार जो श्रुति-पथ-त्यागी। कलिजुग सोइ ग्यानी, सो बिरागी॥
जाकें नख अरु जटा बिसाला। सोइ तापस प्रसिद्ध कलिकाला॥

दो०—असुभ बेस भूषन धरें भच्छाभच्छ जे खाहिं।[4]
तेइ जोगी, तेइ सिद्ध नर, पूज्य ते कलिजुग माहिं॥९८(क)॥

सो०—जे अपकारी-चार[5], तिन्ह कर गौरव, मान्य तेइ।
मन क्रम-बचन लबार[6], तेइ बकता कलिकाल महुँ॥९८(ख)॥

नारि-बिबस नर सकल गोसाईं। नाचहिं नट-मर्कट[1] की नाईं॥
सूद्र द्विजन्ह उपदेसहिं ग्याना। मेलि जनेऊ लेहिं कुदाना[2]॥
सब नर काम-लोभ-रत, क्रोधी। देव-बिप्र-श्रुति-संत-बिरोधी॥
गुन मंदिर सुंदर पति त्यागी। भजहिं नारि पर-पुरुष अभागी॥
सौभागिनीं बिभूषन हीना। बिधवन्ह कें सिंगार नबीना॥
गुर-सिष बधिर-अंध का लेखा[3]। एक न सुनइ, एक नहिं देखा[4]॥

---

९७. ४ हरियान (विष्णु की सवारी), गरुड़।

९८. १ ब्राह्मण वेद बेचते हैं; २ राजा प्रजा का आहार करते हैं; ३ ढोंग रचने वाला, ४ जो अशुभ वेष और अशुभ भूषण (हड्डी आदि) पहनते हैं तथा भक्ष्य और अभक्ष्य (मांस, मदिरा आदि) खाते हैं, ५ अपकार करने वाले, ६ बकवादी।

९९. १ नट का बन्दर; २ बुरा दान, ३-४ गुरु और शिष्य बहरे और अन्धे जैसे हैं, जिनमें से एक (शिष्य) सुनता नहीं (गुरु के उपदेशों पर ध्यान नहीं देता) और एक (गुरु) देखता नहीं (ज्ञान की दृष्टि नहीं रखता)।

हरइ सिष्य-धन, सोक न हरई। सो गुर घोर नरक महुँ परई ॥
मातु पिता बालकन्हि बोलावहिं। उदर भरै सोइ धर्म सिखावहिं ॥

दो०—ब्रह्म-ग्यान बिनु नारि-नर कहहिं न दूसरि बात।
कौडी लागि[४] लोभ-बस करहिं बिप्र-गुर-घात ॥९९(क)॥
बादहिं[५] सूद्र द्विजन्ह सन, हम तुम्ह ते कछु घाटि।
जानइ ब्रह्म सो बिप्रबर, आँखि देखावहिं डाटि ॥९९(ख)॥

पर-त्रिय-लंपट, कपट-सयाने। मोह-द्रोह-ममता लपटाने ॥
तेइ अभेदबादी, ग्यानी नर। देखा मैं चरित्र कलिजुग कर ॥
आपु गए अरु तिन्हहू घालहिं[१]। जे कहुँ सत-मारग प्रतिपालहिं ॥
कल्प-कल्प भरि एक-एक नरका। परहिं, जे दूषहिं श्रुति करि तरका ॥
जे बरनाधम तेलि कुम्हारा। स्वपच[२], किरात, कोल, कलवारा ॥
नारि मुई, गृह-संपति नासी। मूड मुड़ाइ होहिं संन्यासी ॥
ते बिप्रन्ह सन आपु पुजावहिं। उभय लोक निज हाथ नसावहिं ॥
बिप्र निरच्छर, लोलुप कामी। निराचार[३], सठ, बृषली-स्वामी[४] ॥
सूद्र करहिं जप-तप-ब्रत नाना। बैठि बरासन[५] कहहिं पुराना ॥
सब नर कल्पित[६] करहिं अचारा। जाइ न बरनि अनीति अपारा ॥

दो०—भए बरन-संकर कलि भिन्नसेतु[७] सब लोग।
करहिं पाप, पावहिं दुख, भय, रुज, सोक, बियोग ॥१००(क)॥
श्रुति-संमत हरि-भक्ति-पथ संजुत[८]-बिरति-बिबेक।
तेहिं न चलहिं नर मोह-बस, कल्पहिं पंथ अनेक ॥१००(ख)॥

छं०—बहु दाम[१] सँवारहिं धाम जती[२]। बिषया हरि लीन्हि, न रहि बिरती[३] ॥
तपसी धनवंत, दरिद्र गृही। कलि-कौतुक तात न जात कही ॥
कुलवंति निकारहिं नारि सती। गृह आनहिं चेरि, निबेरि गती[४] ॥

---

९९. ४ पैसे के लिए; ५ कहते हैं।

१००. १ वे आप तो गये-बीते हो हैं, दूसरों को भी ले डूबते हैं, २ चाण्डाल; ३ दुराचारी; ४ व्यभिचारी स्त्रियों के स्वामी, ५ उच्चासन (व्यास गद्दी); ६ मनमाना, ७ मर्यादा (सेतु) के विरुद्ध; ८ युक्त।

१०१. १ बहुत पैसे से; २ सन्यासी लोग, ३ उनमे वैराग्य (विरति) नहीं रहा, उन्हे विषयों ने हर लिया, ४ लोग मुक्ति (गति) की चिन्ता किये बिना घर मे दासी ले आते हैं।

सुत मानहिं मातु पिता तब लौं । अबलानन[५] दीख नहीं जब लौं ॥
ससुरारि पिआरि लगी जब तें । रिपुरूप कुटुंब भए तब ते ॥
नृप पाप परायन, धर्म नहीं । करि दंड, विडंब प्रजा[६] नितहीं ॥
धनवंत, कुलीन, मलीन अपी[७] । द्विज चिन्ह जनेउ, उघार तपी ॥
नहिं मान पुरान, न वेदहि जो । हरि सेवक संत सही कलि सो ॥
कवि बृंद, उदार दुनी न सुनी[८] । गुन-दूषक-व्रात, न कोपि[९] गुनी ॥
कलि बारहिं बार दुकाल परैं । बिनु अन्न दुखी सब लोग मरैं ॥

दो०—सुनु खगेस[1] कलि कपट, हठ, दंभ, द्वेष, पाषंड ।
मान, मोह, मारादि मद ब्यापि रहे ब्रह्मंड ॥१०१(क)॥
तामस-धर्म करहिं नर जप, तप, व्रत, मख, दान ।
देव[१०] न बरषहिं धरनी, बए न जामहिं धान[११]॥१०१(ख)॥

छं०—अबला कच-भूषन[१], भूरि छुधा । धनहीन दुखी, ममता बहुधा ॥
सुख चाहहिं मूढ़, न धर्म-रता । मति थोरि, कठोरि, न कोमलता ॥
नर पीड़ित रोग, न भोग कहीं । अभिमान, विरोध अकारनहीं[२] ॥
लघु जीवन, संबतु पंच-दसा[३] । कलपांत न नास, गुमानु असा[४] ॥
कलिकाल बिहाल किए मनुजा । नहिं मानत क्वौ अनुजा तनुजा[५] ॥
नहिं तोष, बिचार न सीतलता । सब जाति कुजाति भए मगता[६] ॥
इरिषा, परुषाच्छर[७], लोलुपता । भरि पूरि रही, समता बिगता[८] ॥
सब लोग बियोग-बिसोक हए[९] । बरनाश्रम-धर्म अचार गए ॥
दम, दान, दया नहिं जानपनी[१०] । जड़ता, परबंचनताति घनी ॥
तनु-पोषक नारि-नरा सगरे । परनिंदक जे, जग मो बगरे[११] ॥

दो०—सुनु ब्यालारि[1] काल कलि मल-अवगुन आगार ।
गुनउ बहुत कलिजुग कर बिनु प्रयास निस्तार[१२] ॥१०२(क)॥

---

१०१ ५ स्त्री का मुख, ६ प्रजा को दुर्दशा करते हैं, ७ अपि, भी, ८ कवियों के ढेर दिखलायी पड़ते हैं, लेकिन दुनिया में उदार लोग नहीं मिलते, ९ कोऽपि, कोई भी; १० इन्द्र, ११ बीने पर भी धान नहीं जमते।

१०२. १ स्त्रियों के केश ही उनके आभूषण हैं (दरिद्रता के कारण उनके पास और कोई आभूषण नहीं), २ अकारण ही, ३ लोगों का, पाँच-दस वर्षों का ही, छोटा जीवन होता है, ४ लेकिन, उनमें ऐसा गुमान है कि कल्पान्त में भी उनका नाश नहीं होगा, ५ बहन और बेटी, ६ भिखारी, ७ गाली-गलौज; ८ समता विगत (नष्ट) हो गयी है; ९ मारे हुए, १० बुद्धिमानी; ११ भरे हुए, १२ सांसारिक बन्धनों से मुक्ति।

कृतजुग, त्रेताँ, द्वापर पूजा, मख अरु जोग ।
जो गति होइ, सो कलि हरि-नाम ते पावहि लोग ।।१०२(ख)।।

कृतजुग सब जोगी-बिग्यानी । करि हरि ध्यान तरहिं भव प्रानी ।।
त्रेताँ बिबिध जग्य नर करहीं । प्रभुहि समर्पि कर्म भव तरहीं ।।
द्वापर करि रघुपति पद-पूजा । नर भव तरहिं, उपाय न दूजा ।।
कलिजुग केवल हरि-गुन-गाहा[1] । गावत नर पावहिं भव-थाहा[2] ।।
कलिजुग जोग न जग्य, न ग्याना । एक अधार राम-गुन-गाना ।।
सब भरोस तजि जो भज रामहि । प्रेम-समेत गाव गुन-ग्रामहि ।।
सोइ भव तर, कछु संसय नाहीं । नाम-प्रताप प्रगट कलि माहीं ।।१०३।।

(१४४) ज्ञान और भक्ति

[छन्द-संख्या १०३ (शेषांश) से ११५/१०: भुशुण्डि द्वारा कलियुग मे भक्ति के प्रताप का वर्णन और यह उल्लेख कि वह कलियुग मे, अयोध्या मे बहुत वर्षो तक रहने के बाद, अकाल के कारण उज्जैन आ गये और कुछ समय बाद सम्पत्ति प्राप्त कर वहां शिव की सेवा करने लगे, एक वैदिक शिवपूजक ब्राह्मण के शिष्य के रूप मे उस जन्म के शूद्र भुशुण्डि की कट्टर शिवभक्ति और विष्णु-विरोध, गुरु के शिव और राम के अविरोध-सम्बन्धी उपदेश की निष्फलता; एक बार भुशुण्डि द्वारा स्वयं गुरु की उपेक्षा और इस पर उनको शिव का यह शाप कि वह अजगर हो जायें, गुरु की प्रार्थना पर शिव का यह वरदान कि यद्यपि भुशुण्डि एक हजार जन्म पायेंगे, किन्तु उनमे सदैव राम की भक्ति बनी रहेगी, भुशुण्डि का विन्ध्याचल जाकर सर्प के रूप मे निवास और कई जन्म बाद अन्त मे विप्र के रूप मे जन्म, विप्र भुशुण्डि द्वारा लोमश ऋषि के यहाँ जा कर सगुण ब्रह्म की आराधना-सम्बन्धी जिज्ञासा, लोमश द्वारा निर्गुण तत्त्व का उपदेश और भुशुण्डि का सगुण के पक्ष मे हठ, क्रुद्ध लोमश का भुशुण्डि को काक हो जाने का शाप, किन्तु उनका शील देख कर पश्चात्ताप और उन्हे राममन्त्र दे कर *बाल-रूप राम के ध्यान का उपदेश*, मुनि द्वारा रामचरितमानस का गुप्त उपदेश और रामभक्ति का वरदान, ब्रह्मवाणी द्वारा मुनि के वरदान की पुष्टि, भुशुण्डि का प्रस्थान, वर्तमान आश्रम मे सत्ताईस

---

१०३. १ भगवान् के गुणों की गाथा, २ भव-सागर की थाह ।

कल्पों से निवास और प्रत्येक रामावतार के समय अयोध्या जा कर राम की शिशु-लीला का दर्शन; गरुड का ज्ञान और भक्ति-सम्बन्धी प्रश्न ।]

"ग्यानहि भगतिहि अंतर केता[1] । सकल कहहु प्रभु कृपा-निकेता ॥"
सुनि उरगारि-बचन सुख माना । सादर बोलेउ काग सुजाना ॥१॥
'भगतिहि ग्यानहि नहिं कछु भेदा । उभय हरहिं भव-संभव खेदा[2] ॥
नाथ[1] मुनीस कहहिं कछु अंतर । सावधान सोउ सुनु बिहंगवर ॥
ग्यान, बिराग, जोग, बिग्याना । ए सब पुरुष, सुनहु हरिजाना[3] ॥
पुरुष-प्रताप प्रबल सब भाँती । अबला अबल सहज, जड जाती ॥
दो०—पुरुष त्यागि सक नारिहि जो बिरक्त, मति धीर ।
न तु कामी बिषयावस, बिमुख जो पद रघुबीर ॥११५(क)॥
सो०—सोउ मुनि ग्याननिधान, मृगनयनी बिधु मुख निरखि ।
बिबस होइ हरिजान[1] नारि बिष्नु माया प्रगट ॥११५(ख)॥
इहाँ न पच्छपात कछु राखउँ । बेद-पुरान-संत मत भाषउँ ॥
मोह न नारि नारि कें रूपा । पन्नगारि[1] यह रीति अनूपा ॥१॥
माया भगति सुनहु तुम्ह, दोऊ । नारि-बर्ग, जानइ सब कोऊ ॥
पुनि रघुबीरहि भगति पिआरी । माया खलु नर्तकी बिचारी ॥
भगतिहि सानुकूल रघुराया । तातें तेहि डरपति अति माया ॥
राम भगति निरुपम, निरुपाधी[2] । बसइ जासु उर सदा अबाधी[3] ॥
तेहि बिलोकि माया सकुचाई । करि न सकइ कछु निज प्रभुताई ॥
अस बिचारि जे मुनि बिग्यानी । जाचहिं भगति सकल सुख-खानी ॥११६॥"

(१४५) दास्य-भक्ति की अनिवार्यता

(दोहा-संख्या ११६ से छन्द-संख्या ११९/१०: भुशुण्डि यह कहते हैं कि ईश्वर का अंश होने के बावजूद जीव माया के वशीभूत हो कर बन्धनग्रस्त होता है और ज्ञान की साधना द्वारा उसे मुक्ति मिलती है, किन्तु ज्ञान का प्रकाश माया जनित विघ्नों के कारण ही कायम रह पाता है।)

इंद्री द्वार झरोखा नाना । तहँ-तहँ सुर बैठे करि थाना[1] ॥
आवत देखहिं बिषय बयारी । ते हठि देहिं कपाट[2] उघारी ॥
जब सो प्रभंजन[3] उर गृहँ जाई । तबहिं दीप बिग्यान बुझाई ॥

---

११५ १ कितना, २ संसार से उत्पन्न पीडा, ३ हरियान, गरुड ।

११६. १ पन्नग (सर्प)-अरि (शत्रु), गरुड; २ सभी प्रकार की उपाधियों से परे, ३ अबाध रूप से ।

११८. १ अड्डा जमा कर, २ किवाड, ३ तेज हवा ।

ग्रंथि न छूटि[४], मिटा सो प्रकासा। बुद्धि बिकल भइ बिषय-बतासा[५] ॥
इंद्रिन्ह-सुरन्ह न ग्यान सोहाई। बिषय भोग पर प्रीति सदाई ॥
बिषय-समीर बुद्धि कृत भोरी। तेहि बिधि दीप को बार[६] बहोरी ॥

दो०—तब फिरि जीव बिबिधि बिधि पावइ संसृति-क्लेस[७]।
हरि-माया अति दुस्तर[८] तरि न जाइ बिहगेस ॥ ११८(क)॥

कहत कठिन, समुझत कठिन, साधत कठिन बिबेक।
होइ घुनाच्छर-न्याय[९] जौं पुनि प्रत्यूह[१०] अनेक ॥ ११८(ख)॥

ग्यान-पंथ कृपान कै धारा। परत खगेस[१] होइ नहिं बारा[२] ॥
जो निर्बिघ्न पंथ निर्बहई। सो कैवल्य परम-पद लहई ॥
अति दुर्लभ कैवल्य परम-पद। संत, पुरान निगम, आगम बद ॥
राम भजत सोइ मुकुति गोसाईं। अनइच्छित आवइ बरिआईं[२] ॥
जिमि थल बिनु जल रहि न सकाई। कोटि भाँति कोउ करै उपाई ॥
तथा मोच्छ-सुख, सुनु खगराई[१]। रहि न सकइ हरि-भगति बिहाई ॥
अस बिचारि हरि-भगत सयाने। मुक्ति निरादर भगति लुभाने ॥
भगति करत बिनु जतन प्रयासा। संसृति-मूल[३] अबिद्या नासा ॥
भोजन करिअ तृपिति-हित लागी। जिमि सो असन[४] पचवै जठरागी ॥
असि हरि-भगति सुगम-सुखदाई। को अस मूढ़ न जाहि सोहाई ॥

दो०—सेवक-सेव्य-भाव बिनु भव न तरिअ, उरगारि।
भजहु राम-पद पंकज अस सिद्धांत बिचारि ॥११९(क)॥

जो चेतन कहँ जड़ करइ, जड़हि करइ चैतन्य।
अस समर्थ रघुनायकहि भजहिं जीव, ते धन्य ॥११९(ख)॥

कहेउँ ग्यान-सिद्धांत बुझाई। सुनहु भगति-मनि कै प्रभुताई ॥
राम-भगति चिंतामनि सुंदर। बसइ गरुड़[१] जाके उर अंतर ॥
परम प्रकास-रूप दिन-राती। नहिं कछु चहिअ दिआ-घृत-बाती ॥
मोह-दरिद्र निकट नहिं आवा। लोभ-बात नहिं ताहि बुझावा ॥

---

११८. ४ गाँठ नहीं खुल पाती; ५ विषय-रूपी वायु; ६ कौन (को) जलाये; ७ जन्म-मरण का कष्ट, ८ कठिन; ९ घुणाक्षर-न्याय से, किसी प्रकार; १० बाधाएँ।

११९. १ देर नहीं लगती; २ जबरदस्ती; ३ जन्म-मरण की जड़, ४ भोजन।

प्रबल अविद्या-तम मिटि जाई। हारहिं सकल सलभ-समुदाई[१] ॥
खल कामादि निकट नहिं जाहीं। बसइ भगति जाके उर माहीं ॥
गरल सुधासम, अरि हित होई। तेहि मनि बिनु सुख पाव न कोई ॥
ब्यापहिं मानस रोग न भारी। जिन्ह के बस सब जीव दुखारी ॥
राम भगति मनि उर बस जाकें। दुख लवलेस न सपनेहुँ ताकें ॥
चतुर सिरोमनि तेइ जग माहीं। जे मनि लागि सुजतन[२] कराहीं ॥
सो मनि जदपि प्रगट जग अहई। राम कृपा बिनु नहिं कोउ लहई ॥
सुगम उपाय पाइबे केरे। नर हतभाग्य देहिं भटभेरे[३] ॥
पावन पर्बत बेद पुराना। राम कथा रुचिराकर[४] नाना ॥
मर्मी सज्जन सुमति कुदारी[५]। ग्यान बिराग नयन उरगारी ॥
भाव सहित खोजइ जो प्रानी। पाव भगति मनि सब सुख-खानी ॥
मोरे मन प्रभु ! अस बिस्वासा। राम ते अधिक राम कर दासा ॥
राम सिंधु घन सज्जन धीरा। चंदन तरु हरि संत समीरा ॥
सब कर फल हरि भगति सुहाई। सो बिनु संत न काहूँ पाई ॥
अस बिचारि जोइ कर सतसंगा। राम-भगति तेहि सुलभ, बिहंगा ॥

दो०—ब्रह्म पयोनिधि[६] मंदर[७] ग्यान संत सुर आहिं।
कथा सुधा मथि काढ़हिं भगति मधुरता जाहिं ॥१२०(क)॥
बिरति चर्म[८] असि ग्यान मद लोभ मोह रिपु मारि।
जय पाइअ, सो हरि भगति देखु खगेस ! बिचारि ॥१२०(ख)॥

(१४६) गरुड़ के सात प्रश्न

पुनि सप्रेम बोलेउ खगराऊ। "जौं कृपाल ! मोहि ऊपर भाऊ ॥
नाथ! मोहि निज सेवक जानी। सप्त प्रस्न मम कहहु बखानी ॥
प्रथमहिं कहहु नाथ! मतिधीरा। सब ते दुर्लभ कवन सरीरा ॥
बड़ दुख कवन कवन सुख भारी। सोउ संछेपहिं कहहु बिचारी ॥
संत असंत-मरम तुम्ह जानहु। तिन्ह कर सहज सुभाव बखानहु ॥
कवन पुन्य श्रुति बिदित बिसाला। कहहु कवन अघ परम कराला ॥
मानस-रोग[१] कहहु समुझाई। तुम्ह सर्बग्य, कृपा अधिकाई ॥'

१२० १ पतिंगों (शलभों) का झुण्ड, २ सुयत्न, ३ ठुकरा देते हैं ४ सुन्दर खानें, ५ अच्छी बुद्धि-रूपी कुदाल, ६ समुद्र, ७ मन्दराचल, ८ ढाल।

१२१. १ मन के रोग।

"तात ! सुनहु सादर अति प्रीती । मैं संछेप कहउँ यह नीती ॥
नर-तन सम नहिं कवनिउ देही । जीव चराचर जाचत तेही ॥
नरक-स्वर्ग - अपबर्ग -निसेनी[2] । ग्यान-बिराग-भगति सुभ देनी ॥
सो तनु धरि हरि भजहिं न जे नर । होहिं बिषय-रत मंद मंद-तर ॥
काँच-किरिच[3] बदले ते लेहीं । कर ते डारि परस-मनि देहीं ॥
नहिं दरिद्र सम दुख जग माहीं । संत-मिलन सम सुख जग नाहीं ॥
पर-उपकार बचन मन-काया । संत सहज-सुभाउ, खगराया ॥
संत सहहिं दुख पर-हित लागी । पर-दुख-हेतु असंत अभागी ॥
भूर्ज-तरु सम[4] संत कृपाला । पर-हित निति सह बिपति बिसाला ॥
सन इव[5] खल पर-बंधन करई । खाल कढ़ाइ, बिपति सहि मरई ॥
खल बिनु स्वारथ पर अपकारी । अहि-मूषक-इव[6], सुनु उरगारी ॥
पर-संपदा बिनासि, नसाहीं । जिमि ससि हति हिम-उपल बिलाहीं ॥
दुष्ट-उदय जग-आरति-हेतू । जथा प्रसिद्ध अधम ग्रह केतू ॥
संत-उदय संतत सुखकारी । बिस्व-सुखद जिमि इंदु-तमारी[7] ॥
परम धर्म श्रुति-बिदित अहिंसा । पर-निंदा-सम अघ न गरीसा[8] ॥
हर-गुर-निंदक दादुर होई । जन्म सहस्र पाव तन सोई ॥
द्विज-निंदक बहु नरक भोग करि । जग जनमइ बायस-सरीर धरि ॥
सुर-श्रुति-निंदक जे अभिमानी । रौरव नरक परहिं ते प्रानी ॥
होहिं उलूक संत-निंदा-रत । मोह निसा प्रिय, ग्यान-भानु गत[9] ॥
सब कै निंदा जे जड करहीं । ते चमगादुर होइ अवतरहीं ॥
सुनहु तात ! अब मानस-रोगा । जिन्ह ते दुख पावहिं सब लोगा ॥
मोह सकल ब्याधिन्ह कर मूला । तिन्ह ते पुनि उपजहिं बहु सूला ॥
काम बात, कफ लोभ अपारा । क्रोध पित्त, नित छाती जारा ॥
प्रीति करहिं जौं तीनिउ भाई ! उपजइ सन्यपात[10] दुखदाई ॥
बिषय मनोरथ दुर्गम नाना । ते सब सूल, नाम को जाना ॥
ममता दादु कंडु इरषाई[11] । हरष-बिषाद गरह बहुलाई[12] ॥

---

१२१. २ निसेनी=सीढ़ी; ३ काँच के टुकड़े, ४ भोजपत्र के पेड़ के समान; ५ सन की तरह; ६ साँप और चूहे की तरह; ७ चन्द्रमा और सूर्य; ८ भारी, बड़ा, ९ उनके लिए ज्ञान का सूर्य डूब चुका है, १० सन्निपात; ११ ममता दाद है, ईर्ष्या खुजली है; १२ हर्ष और विषाद गले के विविध रोग हैं।

पर-सुख देखि जरनि सोइ छई[13] । कुष्ट[14] दुष्टता-मन कुटिलई ।।
अहंकार अति दुखद डमरुआ[15] । दंभ-कपट-मद-मान नेहरुआ[16] ।।
तृस्ना उदरबृद्धि[17] अति भारी । त्रिविधि ईषना तरुन तिजारी[18] ।।
जुग बिधि ज्वर[19] मत्सर-अबिबेका । कहँ लगि कहौं कुरोग अनेका ।।

दो०—एक ब्याधि-बस नर मरहिं, ए असाधि बहु ब्याधि ।
पीडहिं सतत जीव कहुँ, सो किमि लहै समाधि ।।१२१ (क)।।
नेम, धर्म, आचार, तप, ग्यान, जग्य, जप, दान ।
भेषज[20] पुनि कोटिन्ह, नहिं रोग जाहिं, हरिजान ।।१२१(ख)।।

एहि बिधि सकल जीव जग रोगी । सोक - हरष - भय - प्रीति-बियोगी ।।
मानस-रोग कछुक मैं गाए । हहिं सब कें, लखि बिरलेन्ह पाए ।।
जाने ते छीजहिं कछु पापी । नास न पावहिं जन-परितापी ।।
बिषय-कुपथ्य पाइ अंकुरे । मुनिहु हृदयँ, का नर बापुरे ।।
राम-कृपाँ नासहिं सब रोगा । जौं एहि भाँति बनै संयोगा ।।
सदगुर बैद, बचन बिस्वासा । संजम यह, न बिषय कै आसा ।।
रघुपति-भगति सजीवन-मूरी । अनूपान[1], श्रद्धा मति पूरी ।।
एहि बिधि भलेहि सो रोग नसाहीं । नाहिं त जतन कोटि नहिं जाहीं ।।
जानिअ तब मन बिरुज[2] गोसाँई । जब उर बल बिराग अधिकाई ।।
सुमति-छुधा बाढइ नित नई । बिषय आस दुर्बलता गई ।।
बिमल-ग्यान-जल जब सो नहाई । तब रह राम-भगति उर छाई ।।
*सिव-अज सुक सनकादिक-नारद । जे मुनि ब्रह्म-बिचार-बिसारद ।।
सब कर मत खगनायक! एहा । करिअ राम पद-पंकज नेहा ।।
श्रुति-पुरान सब ग्रंथ कहाहीं[3] । रघुपति-भगति बिना सुख नाहीं ।।
कमठ-पीठ जामहिं बरु बारा[4] । बंध्या सुत बरु काहुहि मारा[5] ।।
फूलहिं नभ बरु बहुबिधि फूला । जीव न लह सुख हरि-प्रतिकूला ।।
तृषा जाइ बरु मृगजल पाना । बरु जामहिं सस-सीस बिषाना[6] ।।

---

१२१. १३ क्षय, तपेदिक, १४ कोढ; १५ गठिया, १६ नसों का रोग, १७ जलोदर, १८ तिजारी (हर तीसरे दिन आने वाला बुखार); १६ द्वन्द्वज (दो विकारों या दोषों से उत्पन्न) ज्वर, २० औषधि ।

१२२. १ अनुपान, दवा के साथ खायी या पी जाने वाली चीज; २ नीरोग; ३ कहते हैं; ४ भले ही कछुए की पीठ पर केश जम जायें, ५ भले ही कोई बांझ के बेटे को मार दे, ६ भले ही खरहे के सिर पर सींग जम जायें ।

अंधकारु बरु रबिहि नसावै । राम-बिमुख न जीव सुख पावै ॥
हिम ते अनल प्रगट बरु होई । बिमुख राम सुख पाव न कोई ॥

दो०—बारि मथें घृत होइ बरु, सिकता ते बरु तेल ।
बिनु हरि-भजन न भव तरिअ, यह सिद्धांत अपेल[७] ॥१२२(क)॥"

(१४७) गरुड़ की कृतज्ञता

[दोहा-संख्या १२२ (ख-ग) से छन्द संख्या १२४ भुशुण्डि द्वारा गरुड-जैसे सन्त के समागम और राम की कथा कहने का अवसर पाने के कारण धन्यता का उल्लेख ।]

"मैं कृतकृत्य भयउँ तव बानी । सुनि रघुबीर-भगति-रस सानी ॥
राम-चरन नूतन रति भई । माया-जनित बिपति सब गई ॥
मोह-जलधि-बोहित तुम्ह भए । मो कहँ नाथ बिबिध सुख दए ॥
मो पहिं होइ न प्रति-उपकारा[१] । बंदउँ तव पद बारहिं बारा ॥
पूरन-काम राम-अनुरागी । तुम्ह-सम तात न कोउ बड़भागी ॥
संत, बिटप, सरिता, गिरि, धरनी । पर हित हेतु सबन्ह कै करनी ॥
संत हृदय नवनीत समाना । कहा कबिन्ह, परि कहै न जाना ॥
निज परिताप द्रवइ नवनीता । पर-दुख द्रवहिं संत सुपुनीता[२] ॥
जीवन-जन्म सुफल मम भयऊ । तव प्रसाद संसय सब गयऊ ॥
जानेहु सदा मोहि निज किंकर" । पुनि पुनि उमा कहइ बिहगबर[३] ॥

दो०—तासु चरन सिरु नाइ करि प्रेम-सहित मतिधीर ।
गयउ गरुड बैकुंठ तब हृदयँ राखि रघुबीर ॥१२४(क)॥

(१४८) शिव-पार्वती-उपसंवाद का समापन

[दोहा-संख्या १२५ (ख) से छन्द-संख्या १२७ शिव द्वारा राम-कथा की महिमा और राम भक्त की प्रशंसा ।]

"मति-अनुरूप कथा मैं भाषी । जद्यपि प्रथम गुप्त करि राखी ॥
तव मन प्रीति देखि अधिकाई । तब मैं रघुपति कथा सुनाई ॥

१२२- ७ अटल ।
१२५ १ उपकार का बदला; २ अत्यन्त पवित्र, ३ गरुड ।

यह न कहिअ सठही, हठसीलहि[1] । जो मन लाइ न सुनु हरि-लीलहि ।।
कहिअ न लोभिहि, क्रोधिहि, कामिहि । जो न भजइ सचराचर-स्वामिहि ।।
द्विज द्रोहिहि न सुनाइअ कबहूँ । सुरपति-सरिस होइ नृप जबहूँ ।।
राम-कथा के तेइ अधिकारी । जिन्ह कें सत-संगति अति प्यारी ।।
गुर-पद-प्रीति, नीति-रत जेई । द्विज सेवक, अधिकारी तेई ।।
ता कहँ यह बिसेष सुखदाई । जाहि प्रानप्रिय श्रीरघुराई ।।

दो०—राम-चरन-रति जो चह अथवा पद-निर्बान ।।
भाव-सहित सो यह कथा करउ श्रवन-पुट[2] पान ।।१२८।।

राम-कथा गिरिजा मैं बरनी । कलि-मल-समनि[1], मनोमल-हरनी[2] ।।
संसृति-रोग सजीवन-मूरी । राम-कथा गावहिं श्रुति, सूरी[3] ।।
एहि महँ रुचिर सप्त सोपाना । रघुपति - भगति केर पथाना ।।
अति हरि-कृपा जाहि पर होई । पाउँ देइ एहिं मारग सोई ।।
मन-कामना-सिद्धि नर पावा । जे यह कथा कपट तजि गावा ।।
कहहिं, सुनहिं, अनुमोदन करहीं । ते गोपद-इव[4] भवनिधि तरहीं ।।"
सुनि सब कथा हृदय अति भाई । गिरिजा बोली गिरा सुहाई ।।
"नाथ-कृपाँ मम गत संदेहा । राम-चरन उपजेउ नव नेहा ।।

दो०—मैं कृतकृत्य भइउँ अब तव प्रसाद बिस्वेस[5] ।
उपजी राम-भगति दृढ़, बीते सकल कलेस ।।१२९।।"

यह सुभ संभु-उमा-संबादा । सुख संपादन, समन बिषादा ।।
भव-भंजन, गंजन[1]-संदेहा । जन-रंजन, सज्जन प्रिय एहा ।।
राम-उपासक जे जग माहीं । एहि सम प्रिय तिन्ह कें कछु नाहीं ।।

(१४६) तुलसी का निवेदन

रघुपति-कृपाँ जथामति गावा । मैं यह पावन चरित सुहावा ।।
एहिं कलिकाल न साधन दूजा । जोग, जग्य, जप, तप, ब्रत, पूजा ।।
रामहि सुमिरिअ, गाइअ रामहि । संतत सुनिअ राम-गुन-ग्रामहि ।।

---

१२८. १ हठी स्वभाव वाले लोगों को, २ कानों का पुट (दोना) ।

१२९. १ कलियुग के पापों को मिटाने वाली, २ मन का मैल दूर करने वाली, ३ विद्वान्; ४ गाय के खुर से बने गड्ढे के समान, ५ विश्व के स्वामी ।

१३०. १ नष्ट करने वाला ।

जासु पतित पावन बड बाना । गावहिं कवि श्रुति-सत पुराना ॥
ताहि भजहि मन[1] तजि कुटिलाई । राम भजे गति केहि नहिं पाई ॥

छ०—पाई न केहिं गति पतित पावन राम भजि, सुनु सठ मना ।
*गनिका,*अजामिल,*ब्याध,*गीध्र,*गजादि खल तारे घना ॥
आभीर, जमन किरात खस, स्वपचादि अति अघरूप जे[2] ।
कहि नाम बारक तेपि पावन होहिं, राम ! नमामि ते ॥ १ ॥

रघुबस-भूषन चरित यह नर कहहिं, सुनहिं, जे गावही ।
कलि-मल मनोमल धोइ, बिनु श्रम राम धाम सिधावही ॥
सत पच चौपाई मनोहर जानि जो नर उर धरै ।
दारुन अविद्या पच-जनित बिकार[3] श्री रघुवर हरै ॥ २ ॥

सु दर, सुजान, कृपा निधान, अनाथ पर कर प्रीति जो ।
सो एक राम अकाम हित, निर्बानप्रद सम आन को ॥
जाकी कृपा लवलेस ते मतिमद तुलसीदासहू ।
पायो परम बिश्रामु[4], राम समान प्रभु नाहीं कहू ॥ ३ ॥

दो०—मो सम दीन, न दीन हित तुम्ह-समान रघुबीर !
अस बिचारि रघुबस मनि ! हरहु बिषम भव-भीर ॥१३०(क)॥
कामिहि नारि पिआरि जिमि, लोभिहि प्रिय जिमि दाम[5] ।
तिमि रघुनाथ ! निरतर प्रिय लागहु मोहि राम ॥१३०(ख)॥

श्लोक—यत्पूर्व प्रभुणा कृत सुकविना श्रीशम्भुना दुर्गम
श्रीमद्रामपदाब्जभक्तिमनिश प्राप्त्यै तु रामायणम् ।
मत्वा तद्रघुनाथनामनिरत स्वान्तस्तम शान्तये
भाषाबद्धमिद चकार तुलसीदासस्तथा मानसम् ॥ १ ॥

---

१३० २ पापरूप पापी, ३ अज्ञान से उत्पन्न पच विकार (अविद्या, अस्मिता राग द्वेष और अभिनिवेश), ४ शान्ति, ५ धन ।

श्लोक सुकवि भगवान् शिव ने श्रीराम के चरण-कमलो मे अखण्ड भक्ति प्राप्त करने के उद्देश्य से जिस दुर्लभ मानस-रामायण की रचना की उसको राम के नाम मे निरत देख कर तुलसीदास ने अपने मन के अन्धकार को दूर करने के लिए, इस मानस के रूप मे भाषाबद्ध किया ॥१॥

पुण्य पापहर सदा शिवकर विज्ञानभक्तिप्रदं
मायामोहमलापह सुविमल प्रेमाम्बुपूर शुभम् ।
श्रीमद्रामचरित्रमानसमिद भक्त्यावगाहन्ति ये
ते समारपतङ्गघोरकिरणैर्दह्यन्ति नो मानवा ॥ २ ॥

०

श्लोक यह मानस पवित्र पाप हरने वाला, सदा कल्याण करने वाला, विज्ञान (ब्रह्मज्ञान) और भक्ति प्रदान करने वाला तथा माया, मोह और मल का विनाश करने वाला है। जो मनुष्य रामचरित रूपी इस मानस सरोवर मे भक्तिपूर्वक स्नान करते हैं, वे ससार-रूपी सूर्य की प्रखर किरणों मे कभी नहीं जलते ।।२।।

(१५०) कुछ अवशिष्ट सूक्तियाँ

(१)

नहिं कोउ अस जनमा जग माहीं । प्रभुता पाइ जाहि मद[१] नाहीं ।। १/६०

(प्रजापति हो जा के कारण दक्ष के अभिमान पर टिप्पणी ।)

(२)

जद्यपि जग दारुन दुख नाना । सब तें कठिन जाति अवमाना[२] ।। १/६३

(दक्ष द्वारा शिव की अवमानना के कारण सती के क्षोभ पर टिप्पणी ।)

(३)

तपबल रचइ प्रपंचु[३] बिधाता । तपबल बिष्नु सकल जग-त्राता[४] ।।
तपबल संभु करहिं संघारा[५] । तपबल सेषु धरइ महिभारा[६] ।।
तप अधार सब सृष्टि भवानी । करहि जाइ तपु अस जियँ जानी ।। १/७३

(स्वप्न में विप्र का पार्वती से कथन ।)

(४)

.. .. ' श्रुति[७] कह, परम धरम उपकारा ।।
पर-हित लागि तजइ जो देही । संतत[८] संत प्रसंसहिं तेही ।। १/८४

(देवताओं से कामदेव का कथन ।)

(५)

बाँझ कि जान प्रसव कै पीरा ।। १/९७

(पार्वती की माता मैना की उक्ति ।)

(६)

सो न टरइ जो रचइ बिधाता ।।१/९७

(पार्वती का मैना से कथन ।)

(७)

कत बिधि सृजीं नारि जग माहीं[९] । पराधीन सपनेहुँ सुखु नाहीं ।। १/१०२

(पार्वती की विदाई के समय मैना की उक्ति ।)

---

१ घमण्ड, २ अपनी जाति (सजातियों) के द्वारा अपमान, ३ विश्व, सृष्टि; ४ संसार के रक्षक या पालक, ५ संहार, विनाश, ६ धरती (महि) का भार; ७ वेद, ८ सदैव, बराबर; ९ विधाता ने संसार में स्त्री की रचना ही क्यों की ?

(८)

जे कामी लोलुप[1] जग माहीं। कुटिल काक इव सबहि[2] डेराहीं ॥ १/१२५

(कामदेव के सम्बन्ध में भरद्वाज की उक्ति।)

(६)

परम स्वतन्त्र, न सिर पर कोई। १/१३७

(विष्णु के सम्बन्ध में नारद का कथन।)

(१०)

तुलसी जसि भवतव्यता[3], तैसी मिलइ सहाइ[4]।
आपुनु आवइ ताहि पहिं[5] ताहि तहाँ लै जाइ ॥ १/१५६

(राजा प्रतापभानु के सम्बन्ध में कवि की उक्ति।)

(११)

तुलसी देखि सुबेषु[6] भूलहिं मूढ़ न चतुर नर।
सुन्दर केकिहि पेखु[7] बचन सुधा सम, असन अहि[8] ॥ १/१६१

(मुनिवेशधारी शत्रु पर राजा प्रतापभानु के विश्वास के सम्बन्ध में कवि की टिप्पणी।)

(१२)

जिमि[9] सरिता सागर महुँ जाहीं। जद्यपि ताहि कामना नाहीं।
तिमि[10] सुख संपति बिनहिं बोलाएँ। धरमसील पहिं जाहिं सुभाएँ[11]॥१/२६४

(दशरथ के प्रति वसिष्ठ की उक्ति।)

(१३)

गुर श्रुति-संमत[12] धरम फलु पाइअ बिनहिं कलेस।
हठ बस सब संकट सहे गालव, नहुष नरेस[13] ॥ २/६१

(सीता को वन नहीं जाने का परामर्श देते समय राम का कथन।)

---

१ लालची, २ सबसे, ३ होनहार, ४ सहायता, ५ उसके पास, ६ सुन्दर वेश, ७ सुन्दर मोर को देखो ८ साँप (अहि) भोजन (असन) है अर्थात् वह साँप खाता है, ९ जैसे, १० वैसे उसी प्रकार, ११ स्वाभाविक रूप में, १२ गुरुजनों और वेदों की सम्मति के अनुसार, १३ गालव मुनि और राजा नहुष ने।

(१४)

मानस सलिल-सुधा प्रतिपाली[1]। जिअइ कि लवन पयोधि मराली[2] ॥
नव रसाल-बन बिहरनसीला[3]। सोह कि कोकिल बिपिन करीला[4] ॥ २/६३
(उपर्युक्त प्रसंग।)

(१५)

सहज सुहृद[5] गुर-स्वामि सिख[6] जो न करइ सिर मानि।
सो पछिताइ अघाइ उर, अवसि[7] होइ हित-हानि[8] ॥ २/६३
(उपर्युक्त प्रसंग।)

(१६)

और करै अपराधु, कोउ और पाव फल भोगु।
अति बिचित्र भगवंत गति[9] को जग जानै जोगु ॥ २/७७
(निरपराध राम के वनगमन पर अयोध्यावासियों की उक्ति।)

(१७)

धरमु न दूसर सत्य-समाना। २/९५
(सुमन्त्र से राम का कथन।)

(१८)

सब बिधि सोचिअ पर अपकारी। निज तनु-पोषक[10], निरदय भारी ॥
सोचनीय सबहीं बिधि सोई। जो न छाड़ि छलु हरि जन[11] होई ॥ २/१७३
(वसिष्ठ का भरत से कथन।)

(१९)

सहसा करि पछिताहिं बिमूढ़ा[12] ॥ २/१९२
(अपने सैनिकों से निषादराज का कथन।)

---

१ मानसरोवर के अमृत-जैसे जल में पलने वाली, २ हंसिनी (मराल) क्या नमकीन या खारे समुद्र (पयोधि) में जीवित रह सकती है; ३ नये-नये पल्लवों वाले आम (रसाल) के बगीचे में विहार करने वाली, ४ कोयल (कोकिल) को क्या करील के पेड़ों का जंगल अच्छा लग सकता है ?, ५ मित्र, ६ सीख, ७ अवश्य, ८ हित की हानि, अहित, ९ भगवान् की लीला, १० अपनी देह पोसने वाला, केवल अपनी शारीरिक सुविधाओं की चिन्ता करने वाला, ११ भगवान् का भक्त, १२ विमूढ़, मूर्ख।

(२०)

बैरु-प्रीति नहिं दुरइँ दुराएँ[1] ॥ २/१६३

(उपर्युक्त प्रसग ।)

(२१)

ग्रारत[2] काह न करइ कुकरमू ।। २/२०४

(तीर्थराज की प्रार्थना के क्रम मे भरत का कथन ।)

(२२)

बिषई जीव[3] पाइ प्रभुताई । मूढ मोह बस होहिं जनाई[4] ॥ २/२२८

(भरत के सेना-सहित आगमन की सूचना पर लक्ष्मण की उक्ति ।)

(२३)

सुनिग्र सुधा, देखिग्रहिं गरल, सब करतूति कराल[5] ।

जहँ-तहँ काक, उलूक, बक, मानस सुकृत[6] मराल ॥ २/२८१

(चित्रकूट मे कौशल्या आदि से सीता की माता का कथन ।)

(२४)

.. .. विधि-गति बडि बिपरीत बिचित्रा ॥

जो सृजि, पालइ हरइ[7] बहोरी[8] । बाल-केलि सम बिधि मति भोरी[9] ॥ २/२८२

(उपर्युक्त कथन के सन्दर्भ मे सुमित्रा की उक्ति ।)

(२५)

सागर सीप कि जाहिं उलीचे ॥[10] २/२८३

(उपर्युक्त ग्रवसर पर भरत के सम्बन्ध मे कौशल्या की टिप्पणी ।)

(२६)

कसें कनकु, मनि पारिखि पाएँ[11] । पुरुष परिखिग्रहिं समयँ सुभाएँ[12] ॥ २/२८३

(उपर्युक्त प्रसग ।)

---

१ बैर और प्रेम छिपाने पर भी नहीं छिपते; २ दुःखी, लाचार; ३ विषयी (सासारिक विषयों मे लीन) प्राणी, ४ (अपनी दुष्टता को) प्रकट कर देता है, ५ (विधाता की) सभी करतूतें ही कठोर (कराल) होती हैं, ६ केवल, एक, ७ नष्ट कर देता है, ८ फिर, ९ बच्चों के खेल (बाल-केलि) के समान विधाता की बुद्धि भी नासमझी से भरी होती है, १० क्या सीप से समुद्र उलीचा जा सकता है ?; ११ कसने पर सोने की और पारखी मिलने पर मणि की पहचान हो जाती है; १२ स्वाभाविक रूप मे ।

(२७)

सुर नर मुनि सब कै यह रीती। स्वारथ लागि[1] करहिं सब प्रीति॥ ४/१२

(शिव की उक्ति।)

(२८)

राम-नाम बिनु गिरा[2] न सोहा। देखु बिचारि त्यागि मद मोहा॥
बसन-हीन नहिं सोह सुरारी[3]। सब भूषन भूषित बर[4] नारी॥ ५/२३

(रावण की सभा मे हनुमान की उक्ति।)

(२९)

सचिव बैद गुर तीनि जौं प्रिय बोलहिं भय आस[5]।
राज धर्म तन तीनि कर होइ बेगिहीं नास॥ ५/३७

(मन्त्रियों द्वारा रावण की चाटुकारिता पर टिप्पणी।)

(३०)

जहाँ सुमति तहँ संपति नाना। जहाँ कुमति तहँ बिपति निदाना[6]॥ ५/४०

(रावण से विभीषण का कथन।)

(३१)

बरु भल बास नरक कर ताता[7]। दुष्ट-संग जनि[8] देइ बिधाता॥ ५/४६

(विभीषण से हनुमान का कथन।)

(३२)

कादर[9] मन कहुँ एक अधारा। दैव-दैव आलसी पुकारा॥ ५/५१

(विभीषण से लक्ष्मण का कथन।)

(३३)

नारि सुभाउ सत्य सब कहहीं। अवगुन आठ सदा उर रहहीं॥
साहस अनृत[10] चपलता माया। भय अबिबेक असौच[11] अदाया[12]॥६/१६

(मन्दोदरी से रावण का कथन।)

---

१ स्वार्थ के लिए २ वाणी, ३ हे देवताओं के शत्रु (अरि) रावण!, ४ श्रेष्ठ सुंदर ५ भय अथवा (लाभ की) आशा से, ६ अन्ततोगत्वा ७ हे भाई (तात)! ८ मत नहीं ९ कायर, १० झूठ, ११ अपवित्रता, १२ निष्ठुरता।

(३४)

फूलइ-फरइ न बेत, जदपि सुधा बरषहिं जलद ।
मूरख हृदयँ न चेत[1] जौ गुर मिलहिं बिरंचि सम ।। ६/१६

(रावण द्वारा मन्दोदरी के परामर्श की उपेक्षा पर कवि की टिप्पणी ।)

(३५)

प्रीति-बिरोध समान सन करिअ, नीति असि आहि[2] ।
जौ मृगपति[3] बध मेडुकन्हि[4], भल कि कहइ कोउ ताहि ।। ६/२३

(रावण की सभा मे अंगद की उक्ति ।)

(३६)

सन्मुख मरन बीर कै सोभा । ६/४२

(रावण की चेतावनी पर राक्षस-मंत्रिकों की प्रतिक्रिया ।)

(३७)

बिनु सतसंग न हरि-कथा, तेहि बिनु मोह न भाग ।
मोह गएँ बिनु राम-पद होइ न दृढ अनुराग ।।
मिलहिं न रघुपति बिनु अनुरागा । किएँ जोग, तप, ग्यान, बिरागा ।। ७/६१-६२

(गरुड़ से शिव का कथन ।)

(३८)

समुझइ खग खगही कै भाषा[5] ।। ७/६२

(पार्वती से शिव का कथन ।)

(३६)

भगति-हीन गुन सब सुख ऐसे । लवन बिना बहु बिंजन[6] जैसे ।। ७/८४

(भुशुण्डि से राम का कथन ।)

(४०)

जानें बिनु न होइ परतीती[7] । बिनु परतीति होइ नहिं प्रीती ।। ७/८६

(गरुड से भुशुण्डि का कथन ।)

---

१ ज्ञान; २ नीति यही है; ३ सिंह; ४ मेढक की, ५ पक्षी की बोली पक्षी ही समझता है; ६ व्यंजन, भोजन की सामग्री; ७ विश्वास ।

(४१)

गुर बिनु होइ कि ग्यान, ग्यान कि होइ बिराग बिनु ।
गावहिं बेद पुरान, सुख कि लहिअ हरि भगति बिनु ।। ७/८६

(उपर्युक्त प्रसंग ।)

(४२)

बिनु बिस्वास भगति नहिं तेहि बिनु द्रवहिं[1] न रामु ।
राम-कृपा बिनु सपनेहुँ जीव न लह बिश्रामु[2] ।। ७/९०

(उपर्युक्त प्रसंग ।)

(४३)

जेहि तें कछु निज स्वारथ होई । तेहि पर ममता कर सब कोई ।। ७/९५

(गरुड से भुशुण्डि का कथन ।)

(४४)

कबि-कोबिद[3] गावहिं असि नीती । खल सन कलह न भल, नहिं प्रीती ।।
उदासीन नित रहिअ गोसाईं । खल परिहरिअ[4] स्वान की नाईं ।। ७/१०६

(गरुड से भुशुण्डि का कथन ।)

(४५)

अति संघरषन[5] जौं कर कोई । अनल[6] प्रगट चंदन ते होई ।। ७/१११

(गरुड से भुशुण्डि का कथन ।)

(४६)

उमा जे राम-चरन-रत, बिगत[7] काम मद-क्रोध ।
निज प्रभुमय देखहिं जगत, केहि सन करहिं बिरोध ।। ७/११२

(शिव की उक्ति ।)

---

१ कृपा करते हैं; २ शान्ति, ३ कवि और विद्वान्; ४ छोड़ दीजिए, बचे रहिए; ५ रगड़; ६ आग; ७ रहित ।

परिशिष्ट

(मानस-कौमुदी के तारक-चिह्नान्वित शब्दों पर टिप्पणी)

अ

अगस्त्य : एक प्रसिद्ध ऋषि जिनका जन्म मिट्टी के घड़े मे सचित मित्रावरुण के रेत (वीर्य) से हुआ। इसलिए इन्हे कुम्भज और घटयोनि भी कहा गया है।

अजामिल कन्नौज का पापी ब्राह्मण, जिसने मरते समय अपने पुत्र नारायण का नाम लिया। 'नारायण' नाम सुन कर विष्णु के दूतो ने यम के दूतो से उसका उद्धार किया और वे उसे वैकुण्ठ ले गये।

अदिति : दक्ष प्रजापति की पुत्री और कश्यप ऋषि की पत्नी। यह देवताओ की माता है। इसके पुत्रो के रूप मे सात आदित्यो का भी उल्लेख मिलता है।

अहल्या गौतम नामक ऋषि की सुन्दर पत्नी। एक बार जब गौतम ब्राह्म-वेला मे गगा स्नान करने गये तब इन्द्र ने उनका वेश धारण कर इसके साथ व्यभिचार किया। लौटने पर गौतम को योगबल से सभी बातें मालूम हो गयी और उन्होने इन्द्र को यह शाप दिया कि तुम्हारे शरीर मे हजार भग हो जायें। उन्होने अहल्या को शिला (पत्थर) हो जाने का शाप दिया, किन्तु बाद मे दयार्द्र हो कर यह कहा कि यह त्रेता मे राम के चरण-स्पर्श से पुन नारी बन जायेगी।

मानस मे अहल्या के अन्य नाम है—ऋषिपत्नी, गौतमनारी, मुनिघरनी और मुनिबनिता।

आ

आगम *शिव के द्वारा रचे गये ग्रन्थ, जो वेदो की तरह ही पवित्र माने जाते हैं। शैव और शाक्त सम्प्रदायों मे इन ग्रन्थो की विशेष प्रतिष्ठा है।*

इ

इन्द्र देवताओ के राजा। देवराज होने के कारण इन्हे अमरपति, सुरपति और सुरेश कहा गया है। इनकी राजधानी अमरावती है, अत इनका नाम अमरावति-पाल है। इनके अन्य नाम हैं—शक्र (शक्तिशाली) मघवा (ऐश्वर्यवान्) और पुरन्दर (पुरो या नगरो को नष्ट करने वाले)। यह हजार आंखो वाले हैं, अत मानस मे इन्हे सहसाखी और सहसनयन नामो से अभिहित किया गया है। कथा है कि अहल्या के साथ व्यभिचार करने के कारण गौतम ऋषि ने इन्हें सहस्रभग हो जाने का शाप दिया। इनकी प्रार्थना पर द्रवित हो कर ऋषि ने इनके हजार छिद्रो को हजार नेत्रो मे बदल दिया।

उ

उपनिषद् वैदिक साहित्य के चार भाग हैं-सहिता, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद्। वैदिक साहित्य का अन्तिम भाग होने के कारण उपनिषदो को वेदान्त भी

कहा जाता है। इनमे ब्रह्मा, आत्मा, जगत् आदि विषयो का गम्भीर विवेचन मिलता है, अत ये वेदो का ज्ञानकाण्ड कही जाती हैं।

उमा : पार्वती का एक नाम। दे० पार्वती।

ऋ

ऋद्धि : समृद्धि, धन-धान्य की प्रचुरता।

ऋषि-आशिष : दे० नल-नील।

ऋषि-पत्नी दे० अहल्या।

क

कबन्ध : एक राक्षस, जो पूर्वजन्म मे बहुत सुन्दर और पराक्रमी व्यक्ति था। अपने साथ युद्ध करने पर इन्द्र ने इस पर वज्र से प्रहार किया। इससे इसका सिर और भुजाएँ इसकी धड़ के अन्दर घुस गयी। इसका सिर पेट मे निकल आया और इसकी भुजाएँ चार कोस लम्बी हो गयी। तुलसी के अनुसार कबन्ध दुर्वासा के शाप से राक्षस हो गया था। राम ने इसका उद्धार किया।

कनककशिपु दे० हिरण्यकशिपु।

कल्प : एक हजार महायुगो, अर्थात् ४ अरब ३२ करोड वर्षों की अवधि, जो ब्रह्मा के एक दिन के बराबर होती है।

कल्पवृक्ष : स्वर्ग का एक वृक्ष। इसकी छाया मे खडा हो कर व्यक्ति जो कुछ माँगता है, वह उसे तत्काल मिल जाता है। मानस मे इसके अन्य नाम है—कल्पतरु, कामतरु और सुरतरु।

कश्यप : सप्तर्षियो मे एक। यह ब्रह्मा के पौत्र और मरीचि के पुत्र हैं। इनकी पत्नी का नाम अदिति है।

कृतान्त : यमराज का पर्याय। दे० यम।

काम, कामदेव प्रेम और रूप का देवता। इसकी पत्नी का नाम रति है, अत इसे रतिपति और रतिनाथ कहा गया है। मन मे उत्पन्न होने के कारण इसे मनोज, मनोभव और मनसिज कहा गया है। मन को मथने के कारण यह मन्मथ है और मतवाला बनाने वाला होने के कारण, मदन या मयन। कामदेव ने शिव के हृदय में वासना उत्पन्न करनी चाही, तो उन्होने इसे अपने तीसरे नेत्र की ज्वाला से भस्म कर दिया। जल कर अशरीरी हो जाने के कारण कामदेव को अनतु और अनंग कहा जाने लगा।

मानस मे इसके अन्य नाम हैं-मार (मारने वाला), कन्दर्प (घमण्डी) और झपकेतु (वह, जिसकी पताका पर [illegible] का चिह्न है)।

जीवनतरु : वह वृक्ष, जिस पर किसी का जीवित रहना निर्भर हो। लोक-कथाओं में इस प्रकार के वृक्ष का बारम्बार उल्लेख मिलता है।

त

तुलसिका इसके अन्य नाम हैं—तुलसी, तुलसा और वृन्दा। यह कालनेमि की पुत्री और जालन्धर नामक दैत्य की पत्नी थी। अजेय जालन्धर की उत्पत्ति शिव के तेज से हुई थी, *लेकिन मदान्ध हो कर उसने स्वयं शिव पर आक्रमण किया।* उसे पराजित करने के लिए उसकी पत्नी वृन्दा का सतीत्व-भंग करना आवश्यक था और विष्णु ने जालन्धर का वेश धारण कर यह कार्य पूरा किया। रहस्य मालूम होने पर वृन्दा ने विष्णु को शाप दिया और अपने शरीर को भस्म कर दिया। उसकी चिता पर स्वरा, लक्ष्मी और गौरी द्वारा डाले गये बीजों से क्रमश धात्री, मालती और तुलसी की उत्पत्ति हुई। विष्णु को तुलसी में वृन्दा का सबसे अधिक सादृश्य दिखलायी पड़ा और वह उसको अपने साथ वैकुण्ठ ले गये। तब से तुलसी का विष्णु से घनिष्ठ सम्बन्ध है।

द

दधीचि एक आत्मत्यागी ऋषि, जिन्होंने इन्द्र को वृत्रासुर के वध के लिए अपनी हड्डियाँ दे दी। उनकी हड्डियों से विश्वकर्मा ने वज्र बनाया, जिससे इन्द्र ने वृत्र का विनाश किया।

दिक्पाल दिशा का देवता। हर एक दिशा का अपना अपना देवता है अत दिक्पालों की सख्या दस मानी गयी है। उनके नाम इस प्रकार हैं—इन्द्र (पूर्व) अग्नि (अग्निकोण) यम (दक्षिण) नैर्ऋत (नैर्ऋत कोण), वरुण (पश्चिम), मरुत् (वायुकोण), कुबेर (उत्तर), ईश (ईशान), ब्रह्मा (ऊर्ध्व दिशा) और अनन्त (अधो-दिशा)।

दिग्गज आठ दिशाओं के रक्षक आठ हाथी, जो पृथ्वी को दाँतों से दबाये रहते हैं। आठ दिग्गजों के नाम है—ऐरावत (पूर्व), पुण्डरीक (अग्निकोण) वामन (दक्षिण), कुमुद (नैर्ऋत), अजन (पश्चिम), पुष्पदन्त (वायुकोण), सार्वभौम (उत्तर) और सप्रतीक (ईशान)।

मानस में दिग्गज का एक पर्याय दिशिकुजर है।

दुर्वासा अत्रि नामक ऋषि के पुत्र, जो अपने क्रोध के लिए प्रसिद्ध हैं।

शिवभक्त दुर्वासा द्वारा फेंके गये केश से कृत्या नामक राक्षसी उत्पन्न हुई। इसने विष्णु के भक्त अम्बरीष पर आक्रमण किया। विष्णु के सुदर्शन चक्र ने कृत्या

का वध किया और दुर्वासा का पीछा तब तक किया, जब तक उन्होंने अम्बरीष से क्षमा नहीं माँगी।

दूषण . दे० खर।

देवर्षि : नारद को देवर्षि कहा जाता है। दे० नारद।

ध

धनद, धनेश कुबेर के पर्याय। दे० कुबेर।

ध्रुव . राजा उत्तानपाद और सुनीति के पुत्र। अपनी सौतेली माता सुरुचि द्वारा अपमानित होने पर ध्रुव ने घर छोड़ दिया और वन जा कर घोर तपस्या की। उनकी तपस्या से प्रसन्न हो कर विष्णु ने उन्हें आकाश मे ध्रुव नक्षत्र के रूप मे प्रतिष्ठित होने का वरदान किया। घर लौटने पर उन्हें पिता ने राज्य दिया और छत्तीस हजार वर्ष तक राज्य करने के बाद वह ध्रुवलोक गये, जहाँ वह आज भी नक्षत्र के रूप मे प्रतिष्ठित है।

न

नरकेसरी नृसिंह का पर्याय। दे० नृसिंह।

नर-नारायण : धर्म और मूर्त्ति (अहिंसा) के पुत्र जो विष्णु के अवतार माने गये हैं।

नरहरि नृसिंह का पर्याय। दे० नृसिंह।

नल-नील विश्वकर्मा के पुत्र जो बाल्यावस्था मे जाह्नवी तट पर पूजा करने वाले ब्राह्मण के शालग्राम जल मे फेंक दिया करते थे। इस पर ब्राह्मण ने नल और नील, दोनों को शाप दिया कि उनके द्वारा फेंके गये पत्थर पानी मे डूबने के बदले तैरेंगे। यह शाप उनके लिए वरदान बन गया।

नहुष जब ब्राह्मण वृत्रासुर की हत्या के पाप से डर कर इन्द्र मानसरोवर के जल मे छिप गये, तब ऋषियों और देवताओं ने अम्बरीष के पुत्र राजा नहुष को इन्द्रपद पर अभिषिक्त किया। इससे नहुष बहुत अहंकारी हो गया। एक बार इन्द्राणी को देखते ही वह उस पर आसक्त हो गया। उसने इन्द्राणी की कामना की, तो बृहस्पति आदि के परामर्श से उसने यह कहला भेजा कि यदि नहुष सप्तर्षियों द्वारा ढोयी गयी पालकी पर आये, तो वह उसकी हो जायेगी। नहुष ने सप्तर्षियों को पालकी ढोने के लिए बाध्य किया और जब वे जल्दी-जल्दी नहीं चलने लगे, तब राजा ने अगस्त्य (या भृगु) को लात मार कर 'सर्प! सर्प!' (जल्दी चलो, जल्दी चलो) कहा। सप्तर्षियों ने क्रोध मे आ कर उसे स्वर्ग से नीचे गिरा दिया और वह अगस्त्य (या भृगु) के शाप से अजगर बन गया।

नारद ब्रह्मा के पुत्र जो देवर्षि के नाम से प्रसिद्ध हैं। यह विष्णु के परम भक्त हैं और वीणा बजा कर हरि का गुणगान करते हुए सभी लोकों में भ्रमण करते रहते हैं। मानस में यह हर महत्त्वपूर्ण अवसर पर उपस्थित दिखलाये गये हैं।

निगम वेद का पर्याय। दे० वेद।

निमि राजा इक्ष्वाकु के पुत्र और मिथिला के संस्थापक। इन्होंने वसिष्ठ के बदले गौतम से यज्ञ करा लिया। इससे रुष्ट हो कर वसिष्ठ ने इन्हें विदेह हो जाने का शाप दिया। देवताओं के वरदान के कारण विदेह निमि हर व्यक्ति की पलकों पर निवास करते हैं।

नृसिंह विष्णु के अवतारों में एक। विष्णु के विरोधी हिरण्यकशिपु नामक दैत्य का पुत्र प्रह्लाद अपने पिता के ठीक विपरीत, विष्णु का भक्त था। हिरण्यकशिपु अपने पुत्र को अपने शत्रु के प्रति भक्ति के कारण बहुत पीडित करता था। एक बार क्रुद्ध हो कर उसने प्रह्लाद के सामने खम्भे पर यह कहते हुए आघात किया कि यदि विष्णु सर्वव्यापी है तो यह खम्भे से प्रकट हो कर दिखाये। विष्णु खम्भे से नृसिंह के रूप में प्रकट हो गये। उनका आधा शरीर सिंह का था और आधा शरीर मनुष्य (नृ या नर) का। उन्होंने हिरण्यकशिपु का वध कर अपने भक्त प्रह्लाद का उद्धार किया।

प

पवनतनय, पवनसुत पवन के पुत्र, अर्थात् हनुमान। दे० हनुमान्।

पार्वती शिव की पत्नी। इनके पिता हिमालय और इनकी माता मैना हैं। पर्वत की पुत्री होने के कारण इन्हें पार्वती गिरिजा, गिरिनन्दिनी और शैलकुमारी कहा गया है। हिमालय की पुत्री होने के कारण इनके लिए गिरिराजकुमारी, गिरिवरराजकिशोरी और हिमशैलसुता जैसे नामों का प्रयोग हुआ है। शिव की पत्नी होने के कारण यह शिवा और भवानी हैं। इन्हें गौरी (गौर वर्ण की), उमा (सौम्य, उज्ज्वल) और अम्बिका (माता) भी कहा गया है। यह पूर्व-जन्म में दक्ष प्रजापति की पुत्री सती थीं। गणेश और कार्तिकेय इनके पुत्र हैं। शक्ति-स्वरूपा पार्वती के अन्य नाम कालिका और दुर्गा हैं।

पुराण धार्मिक कथाओं के ग्रन्थ, जिनकी संख्या अट्ठारह है।

पुरारि शिव का एक नाम। दे० शिव।

प्रह्लाद दे० नृसिंह।

पृथु राजा वेन के पुत्र, जिन्होंने गोरूपधारी पृथ्वी का दोहन किया। इन्होंने विष्णु से उनका यश सुनने के लिए दस हजार कान माँगे।

ब

बलि विरोचन नामक दैत्य के पुत्र, जिन्होंने तपस्या द्वारा तीनों लोकों पर विजय पायी। देवताओं की प्रार्थना पर विष्णु ने, बलि के प्रभाव को नियन्त्रित करने के लिए कश्यप और अदिति के यहाँ वामन के रूप में जन्म लिया। जब बलि ने सौ अश्वमेध यज्ञ करना आरम्भ किया, तब वामन उनके यहाँ गये और दैत्यराज के प्रार्थना करने पर उनसे केवल तीन पग भूमि का दान माँगा। बलि ने दान देना स्वीकार कर लिया और वामन ने विराट् रूप धारण कर पहले पग में आकाश, दूसरे पग में पृथ्वी और तीसरे पग में बलि का शरीर ले लिया। वामन ने प्रसन्न हो कर बलि को पाताल का राज्य प्रदान किया।

ब्रह्मा विश्व के स्रष्टा, जिनके चार सिर हैं। ब्रह्मा विष्णु और महेश (शिव) को त्रिमूर्ति कहा जाता है। ब्रह्मा विश्व के स्रष्टा हैं, विष्णु इसके पालनकर्ता हैं और महेश इसके विनाशकर्ता। ब्रह्मा की पत्नी सरस्वती है और इनका वाहन हंस है। यह स्वयं उत्पन्न हुए, इसलिए अज कहलाते हैं। इनके चार मुख हैं, इसलिए इन्हें चतुर्मुख और चतुरानन कहा गया है।

मानस में ब्रह्मा के अन्य नाम हैं—विधाता, विधि और विरंचि।

भ

भुवन सृष्टि का विभाजन चौदह भुवनों में किया गया है। भू, भुव, स्वः, मह., जन, तप और सत्य, ये ऊपर के सात तथा तल, अतल, वितल, सुतल, तलातल, रसातल और पाताल, ये नीचे के सात भुवन हैं।

म

मदन : दे० कामदेव।

मधुकैटभ : दे० कैटभ।

मनोज दे० कामदेव।

मरुत् वेदों में इन्हें रुद्र, रुद्र और वृष्णि की सन्तान कहा गया है। पुराणों में इन्हें कश्यप-अदिति की सन्तान माना गया है। मरुतों की संख्या ४९ है।

मन्दर, मन्दराचल, मन्दरमेरु वह पर्वत, जिससे देवताओं और असुरों ने समुद्र का मन्थन किया। विष्णु ने मन्दराचल को अपनी पीठ पर रखा तथा देवों और असुरों ने वासुकि नाग को इसमें लपेट कर समुद्र का मन्थन किया, जिससे लक्ष्मी, चन्द्रमा, अमृत, विष, शंख, पारिजात आदि चौदह रत्न प्रकट हुए।

मारुतसुत दे० हनुमान्।

मीन विष्णु का एक अवतार। मीन या मत्स्य के रूप में विष्णु ने प्रलय के समय वैवस्वत मनु की रक्षा की।

मुनिघरनी, मुनिपत्नी गौतम मुनि की पत्नी अहल्या। दे० अहल्या।

य

यम मृत्यु के देवता। इनका लोक यमलोक है, जहाँ पाप करने वाले प्राणी मृत्यु के बाद जाते हैं। इनके दूत यमदूत कहे जाते हैं, जो पापकर्मियों की आत्माओं को पाश (यमपाश) में बाँध कर नरक या यमलोक ले जाते हैं।

मानस में यम का एक अन्य नाम है—कृतान्त।

र

रति : कामदेव की पत्नी, जो स्त्री सौन्दर्य का प्रतिमान मानी जाती है। इसका जन्म दक्ष प्रजापति के स्वेद (पसीने) से हुआ।

रतिपति रति का पति, अर्थात् कामदेव। दे० कामदेव।

राहु एक दानव, जो विप्रचित्ति और सिंहिका का पुत्र है। इसके चार हाथ और एक पूँछ थी। समुद्र मन्थन के बाद देवता अमृत पीने को एकत्र हुए, तो राहु भी देवता का रूप ग्रहण कर उनकी पंक्ति में सम्मिलित हो गया। सूर्य और चन्द्रमा से इसके छल की सूचना पा कर विष्णु ने सुदर्शन चक्र से इसके दो खण्ड कर दिये। लेकिन, उस समय तक यह अमृत पी चुका था, अतः इसकी मृत्यु नहीं हुई। इसका सिर राहु कहलाया और इसका कबन्ध, केतु। यह माना जाता है कि राहु और केतु अब भी बदला लेने के लिए सूर्य और चन्द्रमा को ग्रसते हैं और इसे ही ग्रहण कहा जाता है।

लोक . आकाश, पृथ्वी और पाताल नामक तीन लोक अथवा उनमें कोई एक।

ल

लोकप लोकपति, लोकपाल . लोक के देवता। लोकपालों के नाम इस प्रकार हैं—इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु,कुबेर या सोम, शिव, ब्रह्मा और

शेष । कहीं-कहीं निर्ऋति के स्थान से सूर्य का उल्लेख होता है । इसी प्रकार, सोम के बदले ईशानी या पृथ्वी का उल्लेख भी मिलता है ।

व

वराह : विष्णु के अवतारों में एक । वराह या शूकर के रूप में विष्णु ने हिरण्यक या हिरण्याक्ष नामक असुर के द्वारा जल में डुबायी गयी पृथ्वी को अपनी दंष्ट्रा (दाढ़) पर रख कर ऊपर किया ।

वरुण समुद्र या जल के देवता ।

वाल्मीकि रामायण के रचयिता । आदिकवि के नाम से प्रसिद्ध । इनके विषय में एक कथा यह है कि यह पहले दस्यु या डकैत थे । एक बार इन्होंने सप्तर्षियों को लूटने के लिए पकड़ा । सप्तर्षियों ने इन्हें परिवार के लोगों से यह पूछने के लिए भेजा कि क्या वे इनके द्वारा किये जाने वाले पापों के भागी होंगे । जब घर के लोगों ने, जिनके लिए वाल्मीकि पाप कर्म करते आ रहे थे, पाप के भागी होने से इनकार किया, तब इनको बहुत ग्लानि हुई । लौटने पर सप्तर्षियों ने इन्हें उपदेश दिया और अपने उद्धार के लिए 'राम राम' जपने को कहा । अपढ़ वाल्मीकि 'मरा-मरा' जपने लगे और रामनाम का उलटा जाप कर भी जीवन्मुक्त ज्ञानी हो गये । मानस में इस घटना का संकेत किया गया है जान आदिकवि नाम-प्रतापू । भयेउ सुद्ध करि उलटा जापू ।। (बाल० १९)

विधाता, विधि विरंचि ब्रह्मा के नाम । दे० ब्रह्मा ।

विराध एक दैत्य, जिसका वध राम ने शरभंग के आश्रम के मार्ग से किया । यह पूर्वजन्म से तुम्बरु नामक गन्धर्व था जो कुबेर के शाप से दैत्य बन गया था । इसने वन में राम को देखा तो सीता को पकड़ लिया और राम लक्ष्मण के बाणों से व्याकुल होने के बाद उनको छोड़ा । राम लक्ष्मण के बाणों से लगातार बिंधने के बाद भी इसकी मृत्यु नहीं हुई, तो उन्होंने बाणों से भूमि में एक विशाल गड्ढा कर दिया और उसमें विराध को गिरा कर दबा दिया । विराध ने मरते समय उन्हें अपनी कथा सुनायी और राम ने इसका उद्धार किया ।

विष्णु : त्रिदेवों में एक जो विश्व के पालनकर्ता हैं । इनका लोक वैकुण्ठ है तथा इनकी पत्नी लक्ष्मी है । यह शार्ङ्ग नामक धनुष धारण करते हैं, इनके हाथ में सुदर्शन नामक चक्र है और इनका वाहन गरुड़ है । समय-समय, पृथ्वी के उद्धार के लिए यह अवतार धारण करते हैं जिनकी संख्या चौबीस है । इनके

अवतारो मे एक अवतार राम हैं। तुलसी राम को कहीं-कहीं विष्णु के अवतार के रूप में किन्तु मुख्यतः परब्रह्म के रूप में चित्रित करते हैं।

मानस म तुलसी ने विष्णु के लिए जिन नामों का प्रयोग किया है, वे हैं—हरि, श्रीपति श्रीनिवास, रमापति, रमानिकेत कमलापति दनुजारि, खरारि, शार्ङ्गपाणि, माधव मुकुन्द, वासुदेव आदि।

वेद हिन्दू-धर्म के सबसे पुराने और प्रमुख ग्रन्थ। इनकी सख्या चार है—ऋक्, साम, यजु और अथर्व।

वृन्दा दे० तुलसिका।

वृहस्पति देवताओं के गुरु और सभी विद्याओं के ज्ञाता।

व्याध वाल्मीकि के लिए प्रयुक्त। दे० वाल्मीकि।

व्यास पुराणों के रचयिता ऋषि। इनका एक नाम वेदव्यास भी है, क्योंकि इन्होंने वैदिक मन्त्रों का सकलन और विभाजन किया।

श

शक्र इन्द्र का एक नाम। दे० इन्द्र।

शारदा सरस्वती का एक नाम। दे० सरस्वती।

शिव त्रिमूर्ति (ब्रह्मा, विष्णु और महेश या शिव) में एक। शिव सृष्टि का सहार करते हैं किन्तु यह कल्याणकर्ता भी है। शिव मृगछाला या बाघम्बर धारण करते हैं। यह बिना वस्त्र के भी रहते है अत इन्हें दिगम्बर कहा गया है। गले में नरमुण्डों या कपालों की माला पहनने के कारण इनका नाम कपाली है। इनके शरीर में सर्प लिपटे रहते हैं अतएव इन्हें व्याली कहा गया है। इनकी देह श्मशान की विभूति राख) से रँगी रहती है। समुद्र-मन्थन से निकले विष का पान करने के कारण इनका कण्ठ नीला हो गया है। इनके सिर पर जटाएँ हैं, जिन पर दूज का चाँद विराजता है और जिनसे गंगा की धारा बहती रहती है। इनका वाहन वृषभ है और यह हाथ में त्रिशूल धारण किये हुए है। यह सती और पार्वती के पति हैं तथा गणेश और कार्त्तिकेय के पिता। इनका निवास कैलास पर्वत पर है। इनका प्रधान धाम काशी है।

शिव को परमेश्वर मानने वाला सम्प्रदाय शैव कहलाता है, जिसकी प्रतियोगिता बहुत समय तक विष्णु के उपासकों (वैष्णवों) से थी। मानस में इन्हे राम का परम भक्त बतलाया गया है तथा वहाँ यह रामकथा के वक्ताओं में है।

मानस में शिव के नाम है—गौरीश, गौरीपति, गिरिजापति, उमेश (पार्वती के पति); गिरीश, गिरिनाथ (पर्वत के स्वामी), कामरिपु कामारि, मनोजारि (कामदेव के शत्रु), त्रिपुरारि (तीन पुरियों का नाश करने वाले) पुरारि, वृषकेतु (वह, जिसकी

पताका पर वृषभ या साँड का चिह्न है) हर (हरण करने वाले) महादेव महेश, ईश भव विश्वनाथ रुद्र, शंकर और शम्भु।

शिवि प्रसिद्ध पौराणिक राजा। जब इन्होंने सौवाँ यज्ञ आरम्भ किया, तब इन्द्र ने उसमें बाधा डालनी चाही। इसके लिए इन्द्र ने बाज का रूप धारण किया और अग्नि ने कबूतर का। वह अग्नि रूपी कबूतर का पीछा करते हुए शिवि के यहाँ पहुँचे। कबूतर ने शिवि से आत्मरक्षा के लिए प्रार्थना की और बाज ने उसके मांस के लिए आग्रह किया। शिवि ने एक तराजू पर कबूतर को रख कर दूसरे तराजू पर उसके मांस के बराबर अपने शरीर का मांस रखना आरम्भ किया। कबूतर भारी होता गया और राजा ने अंत में अपने शरीर का सारा मांस काट कर रखने के बाद स्वयं अपने को हड्डियों सहित तराजू पर रख दिया।

शुकदेव वेदव्यास के पुत्र और महाज्ञानी ऋषि।

श्रुति वेद का पर्याय। दे० वेद।

शूकर विष्णु के वराह अवतार की ओर संकेत करने वाला शब्द। दे० वराह।

शेष शेषनाग पाताल में निवास करने वाले नागों या सर्पों के देवता जो कश्यप और कद्रू के पुत्र हैं। मही इनके फनों पर टिकी हुई है। यह क्षीरसागर में शयन करने वाले विष्णु की शय्या का काम करते हैं। मन्दराचल पर्वत में इनको रस्सी के रूप में लपेट कर समुद्र-मन्थन किया गया था।

मानस में इनके अन्य नाम हैं—सहस्रानन (हजार मुखों या फनों वाले) अहि (सर्प), अहिराज अहिनाह (सर्पराज) और अनन्त। लक्ष्मण शेषनाग के अवतार माने जाते हैं।

शैलकुमारी पार्वती का एक नाम। दे० पार्वती।

स

सती दक्ष प्रजापति की पुत्री और शिव की पत्नी। दक्ष प्रजापति के यज्ञ में आत्मदाह करने के बाद इनका जन्म पार्वती के रूप से हुआ।

मानस में इनके अन्य नाम हैं—दक्षकुमारी और भवानी।

सनकादि ब्रह्मा के चार मानसपुत्र जिनके नाम हैं—सनक सनन्दन सनातन और सनत्कुमार। ये बालवेश में रहने वाले चिरंतन ब्रह्मचारी हैं। ये परम ज्ञानी और प्रभुभक्त हैं।

सरस्वती ब्रह्मा की पुत्री और पत्नी। इनका वाहन हंस है। यह वाणी और विद्या की देवी हैं। यह कवित्व की प्रेरक है तथा बुद्धि को प्रभावित करती हैं।

मानस में सरस्वती के अन्य नाम हैं—वाणी गिरा भारती शारदा और विधात्री।

सहस्रबाहु कार्तवीर्य नामक राजा, जो दत्तात्रेय के आशीर्वाद से एक हजार भुजाएँ पाने के कारण सहस्रबाहु कहा जाने लगा। इसने परशुराम के पिता जमदग्नि का वध किया। परशुराम ने इसका बदला सहस्रबाहु के पुत्रों के वध द्वारा चुकाया और उन्होंने इसकी भुजाएँ काट डाली।

स्मृति धर्मशास्त्र। स्मृतियों में मनुस्मृति, याज्ञवल्क्यस्मृति आदि ग्रन्थ बहुत प्रसिद्ध हैं।

सिद्धि तप या योग द्वारा प्राप्त अलौकिक शक्ति। सिद्धियों की संख्या आठ है। उनके नाम हैं—अणिमा, महिमा गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व और वशित्व।

सुमेरु (मेरु) जम्बूद्वीप के बीच में अवस्थित सोने का पर्वत, जिसका विस्तार चौरासी योजन है और जिस पर ब्रह्मा का निवास (ब्रह्मलोक) है। इसका पूर्वी भाग उजला पश्चिमी भाग काला उत्तरी भाग लाल और दक्षिणी भाग पीला है।

सुरगुरु देवताओं के गुरु, अर्थात् बृहस्पति। दे० बृहस्पति।

सुरतरु दे० कल्पवृक्ष।

सुरधेनु दे० कामधेनु।

सुरपति, सुरेश सहस्राक्षी, सहस्रनयन इन्द्र के विविध पर्याय। दे० इन्द्र।

ह

हिरण्याक्ष एक दैत्य, जो हिरण्यकशिपु का भाई था। इसने पृथ्वी को खींच कर जल के नीचे पाताल में डुबा दिया। विष्णु ने वराह का अवतार ले कर इसका वध किया और पृथ्वी का उद्धार किया। मानस में हिरण्याक्ष का एक अन्य नाम हाटकलोचन है।

हिरण्यकशिपु शिव ने इस दैत्य की तपस्या से प्रसन्न हो कर इसे तीन लोकों का स्वामी बना दिया। यह विष्णु का विरोधी था, अतः अपने विष्णुभक्त पुत्र प्रह्लाद को यन्त्रणा देता था। विष्णु ने नृसिंह-अवतार ग्रहण कर इसका वध किया। दे० नृसिंह।

मानस में इसका एक अन्य नाम कनककशिपु है।

हनुमान् अंजनि और पवन (मरुत्) के पुत्र, जो बल, विद्या, बुद्धि और भक्ति के लिए प्रसिद्ध हैं। यह राम के परम सेवक हैं।

मानस में इनके अन्य नाम हैं—अंजनिपुत्र, पवनसुत, पवनकुमार, पवनतनय, मारुतसुत, समीरकुमार, वातजात और हनुमन्त।

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ-संख्या	पंक्ति संख्या	मुद्रित अशुद्ध रूप	शुद्ध रूप
९	१६	वेतिणी	त्रिवेणी
१०	१२	स्रोन	स्रोत
१३	१७	काय	कार्य
१८	८	विभक्ति	विभक्त
२५	१४	ये भी प्रसग	ये प्रसग भी
२७	१९	दृढ करता	दृढ करता
२९	१	असमजन	असमजस
३४	१०	रस के	रस का
३७	१६	चाहिए।'	चाहिए।'
४५	९	रूो इमी प इस, अर	रूप इस, इमी और
४७	१८-१९	कछू, कछ, कछक, कद्रक	कछु, कछु कछुक, कछुक
४८	८	जेहि	जेहि
	९	जेही	जेहो
	१४	जे	जे
	२७	वह	वह
५२	१७	अनुमार ।	अनुसार।
५३	१०	चन्द्र महि	चन्द्रमहि
२८	अन्तिम पंक्ति	२ छपा	२ छिपा
१२७	नीचे से दूसरी	च लोग	पच लोग
१७५	१४	आश्वसन	आश्वासन
२३१	नीचे से सातवी	अछता	अछूता